भारतीय चित्रकला का इतिहास

(प्राचीन)

डॉ० श्याम बिहारी अग्रवाल

एम. ए., डी. फिल., डी डी. पी (कलकत्ता)

डिप्लोमा इन पेन्टिंग एव डिप्लोमा इन फोटोग्राफी

दृश्य कला विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

रूपशिल्प प्रकाशन

12, चक (जीरोरोड) इलाहाबाद

प्रकाशक :
श्रीमती मीना अग्रवाल
रूपशिल्प प्रकाशन
12 चक (जीरो रोड),
इलाहाबाद 211 003
फोन : नं० 400169

प्रथम संस्करण : 1996

लेजर टाइप सेटिंग : लकी ब्रदर्स
1, पुराना कटरा, इलाहाबाद

मुद्रक : एडवास क्रिएटिव सर्विसेस, इलाहाबाद

Bhartiya Chitrakala Ka Itihash
(History of Indian Painting)
by
Dr. Shyam Bihari Agrawal, M A , D Phill
Published by
ROOPSHILP PRAKASHAN
12 Chak (Zero Road) Allahabad 211003
Phone 400169

पुरोवाक्

भारत की सभ्यता अत्यधिक प्राचीन एवं प्राणवान है। यहाँ की कला एवं संस्कृति ने अनेक शताब्दियो मे प्राच्य सभ्यता की एकता को स्थापित किया है। यहाँ अध्यात्म, धर्म, कल्पना और कला को सामाजिक समन्वय के घटकों के रूप में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। यही कारण है कि इस उप-महाद्वीप पर होने वाले धार्मिक सुधार एवं पुनर्जागरण भारत की सीमाओं से बाहर प्रसरित हुए जिसका प्रमुख वाहक चित्रकला रहा है। बैक्ट्रियाना से कम्बोडिया और जापान से जावा तक समस्त एशिया महाद्वीप पर भारतीय कला और दर्शन की क्रमिक धाराओ का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित किया जा सकता है। भारतीय कला की जीवन्तता और मानव मूल्यो को उत्प्रेरित करने वाले स्वरूप ने इसे सार्वभौमिक एवं सर्वजनीन बनाया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राचीन भारतीय चित्रकला का विवेचन इसी सन्दर्भ में की गई है। भारतीय चित्रकला मे अनुस्यूत वैदिक ऋषियों के चित्रकला सम्बन्धी नियमों एवं सिद्धान्तो की व्याख्या एक कलाकार के दृष्टिकोंण से प्रस्तुत कर उन्हें और अधिक उपादेय बनाने की पूरी कोशिश की गई है। प्राच्य कला विशेष रूप से चीन एवं जापान की चित्रकला का संक्षिप्त परिचय भारतीय सन्दर्भ में देकर हम अपने गरिमामयी अतीत की पुनर्विवेचना मे सक्षम हो सकते हैं। अत: उसका भी समन्वय इस ग्रन्थ मे किया गया है।

भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला से लेकर गुहा-मंदिरों की कलाकृतियों तक का विषद एवं सम्यक अध्ययन इस ग्रन्थ मे प्रस्तुत किया गया है जिससे कला अध्येयताओं को विशेष लाभ मिलेगा निश्चय ही यह ग्रन्थ कला-जिज्ञासुओ एवं कला-रसिकों के लिए ही लिखी गई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मेरे कला अध्ययन एवं अध्यापन के तीन दशकों का परिणाम है। भारत के प्राचीन कला केन्द्रों का सघन भ्रमण और उनके विधिवत् अध्ययन एवं अनुशीलन के बाद लिखे गये इस पुस्तक मे वहाँ की कलाकृतियों पर नवीन रूप से प्रकाश डाला गया है।

मैं उन सभी विद्वानों एवं कलामर्मज्ञों का आभारी हूँ जिनके महत्वपूर्ण विचारों को जानने के बाद इस पुस्तक का प्रणयन कर सका। पुस्तक में विवेचित महत्वपूर्ण कृतियो के रेखांकन मे मैंने उन कलाविदों की कृतियों का सहारा लिया है जिन्होने इन गुहा-मंदिरो की कलाकृतियों की प्रतिकृतियाँ बड़े परिश्रम एवं लगन से तैयार की थीं। इन केन्द्रो के अध्ययन के समय मैंने भी 2 3 रगीन प्रतिकृतियाँ बनाई थीं अत मै उनके कष्ट

सहनशीलता एवं कलानिष्ठा का सहज ही अनुमान लगा सकता हूँ। मैं अपने उन अग्रजो के प्रति अत्यधिक ऋणी हूँ।

मैं इस ग्रन्थ 'भारतीय चित्रकला का इतिहास' को आद्यान्त देना चाहता था लेकिन अपने छात्र-छात्राओ के हितो को ध्यान मे रखते हुए इसे तीन भागो में बाँट दिया है जो क्रमशः प्रकाशित होगी।

अन्त में, मै इस ग्रन्थ में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहयोग करने वाले उन सभी व्यक्तियों का आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं सहयोग से यह पुस्तक कला-रसिकों एवं अध्येयताओ तक पहुँच रही है।

डॉ० श्याम बिहारी अग्रवाल

दृश्यकला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
दिनाक : 1 जनवरी, 1996



अनुक्रमणिका





उसी को ....

जिसकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से

इतना कुछ सम्भव हो सका।



1

कला
(Art)

'कला' संस्कृत भाषा का शब्द है। 'कला' शब्द की व्युत्पत्ति विद्वानो ने अनेक प्रकार से की है। सस्कृत में 'कला' शब्द की सिद्धि 'कल्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ सख्यान है। 'सख्यान' शब्द की व्युत्पत्ति 'ख्या' धातु (जिसका अर्थ कथन, घोषणा करना या संवादन होता है) से न होकर 'चक्षिड् व्यक्तायां वाचि' से है जिसका अर्थ स्पष्ट वाणी में अभिव्यक्ति है।

मोनियर विलियम ने अपने प्रसिद्ध संस्कृत कोश में 'कला' की व्युत्पत्ति को संदिग्ध मानते हुए 'कल्' का अर्थ— करना, निर्माण या रचना करना, सम्पन्न करना (टु डू, मेक, एकम्प्लिश)[1] दिया है। यह अर्थ अधिक सरल और स्पष्ट है। कला शब्द का अन्य अर्थ— कलाति अर्थात् आनन्द देनेवाला भी होता है, 'कं आनन्द लाति इति कला'[2] इससे कला का यह सिद्धान्त स्पष्ट होता है कि 'कलाकृति इन्द्रिय-सुख का साधन है।'

कुछ प्रसगों मे 'कला' शब्द का अर्थ 'कलाकृति' भी होता है। इस अर्थ मे इस शब्द का निर्माण 'कल्' धातु से भाव-प्रक्रिया के अनुसार 'कल्यते अस्याम्' होता है। इस प्रकार 'कला' शब्द का अर्थ एक ऐसी कृति होती है, जो उस मानवीय क्रिया से उत्पन्न होती है, जिसके विशेष गुण ध्यानपूर्ण दृष्टि, संकलन एवं स्पष्ट प्रकटन हैं।

इस प्रकार 'कला' शब्द का अर्थ वह मानवीय क्रिया है जिसका विशेष लक्षण 'ध्यानदृष्टि से देखना', गणना अथवा संकलन करना, मनन और चिन्तन करना एव स्पष्ट रूप से प्रकट करना है इसलिए 'कला' शब्द ही स्वयं कलाकृतियों के उत्पादन के उन मूलभूत नियमों, संकलन, चिन्तन एव स्पष्ट अभिव्यक्ति, को बतलाता है। संकलन शब्द में कला के वास्तविक अर्थ का बीज विद्यमान है। संकलन का अर्थ है समीकरण—मानसिक स्तर पर चित्तवृत्तियों का समीकरण अथवा उनकी समाहिति, और भौतिक स्तर पर मूर्त उपकरणो का।

प्राचीन भारतीय साहित्य में कला के लिए 'शिल्प' और कलाकार के लिए 'शिल्पी' शब्द का ही अधिक प्रयोग होता था। 'कला' शब्द का प्रयोग ऋगवेद, शतपथ ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण, सांख्यान ब्राह्मण तथा अर्थववेद मे हुआ अवश्य है परन्तु इसका प्रयोग कार्य-कौशल, हुनर या शिल्प आदि के अर्थ मे नहीं है। प्राचीन साहित्य 'शिवस्वरूपविमर्शिनी' मे इसका प्रयोग ललित कला के अर्थ में हुआ है। क्षेमराज ने लिखा है :—

'कलयति स्वरूपमावेशयति वस्तुनि वा
तत्र-तत्र प्रमातरि कलनमेव कला।'

---

1 सस्कृत - इगलिश डिक्शनरी, आक्सफोर्ड, 1899।

2 सीताराम चतुर्वेदी काशी सं० 20 0 पृष्ठ 206

अर्थात् नव स्वरूपसंवित् वस्तुओ में या प्रमाता मे स्व को, आत्मा को परिमित करती है—इसी क्रम का नाम कला है।[1] 'कला' शब्द का प्रमाणित प्रयोग भरत के नाट्यशास्त्र मे दिखायी पडता है—

न तज्ज्ञानं, न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।[2] अर्थात् ऐसा कोई ज्ञान नहीं, कोई शिल्प नहीं, कोई विद्या नहीं, कोई कला नही.... ... ।

ज्ञान, शिल्प, विद्या से अलग कला का आशय भरतमुनि के लिए क्या था यह तो पता नहीं चलता लेकिन अनुमान यही लगता है कि भरत द्वारा प्रयुक्त 'कला' शब्द ललित कला (Fine Art) के लिए और शिल्प शायद उपयोगी कला (Useful Art) के लिए प्रयुक्त किया गया है।

कला के सम्बन्ध मे एवं उसके अर्थ-विकास में पाश्चात्य दृष्टिकोण भी कुछ इसी प्रकार है। कला का पर्याय 'आर्ट' प्राचीन लैटिन के 'आर्स' (Ars) शब्द से बना है, जिसका अर्थ 'बनाना', पैदा करना या यथास्थान रखना होता है। यह वह शारीरिक कौशल है, जिसका प्रयोग कृत्रिम निर्माण में किया जाता है।[3] इस शब्द का ग्रीक रूपान्तर 'TEXVN' या 'TECHNE' से भी यही अर्थ ध्वनित होता है, जिसका अर्थ नैपुण्य-विशेष है। 18वीं शताब्दी में शिल्प तथा कला का विभाजन उपयोगी एवं ललित कला के रूप में दिखायी पडने लगता है जो भारतवर्ष में परम्परा से चली आ रही है।

भारतीय कला के सम्पूर्ण विस्तृत अध्ययन के लिए आवश्यक है कि भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति के साथ मिलाकर उसे देखा जाय। इस प्रकार की सामग्री हमारे भारतीय साहित्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

संस्कृत साहित्य में विविध कलाओं का उल्लेख आरम्भ से ही मिलता है। वेदों में काव्य के अतिरिक्त संगीत (गीत-वाद्य-नृत्य) चित्र, शिल्प, वास्तु आदि प्रमुख कलाओं के अतिरिक्त अनेक उपयोगी कलाओं का भी स्थान-स्थान पर उल्लेख है। कला शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'ऋग्वेद' मे मिलता है—

यथा कलां यथा शफम् यथा ऋणं संनयामसि।

उपनिषदों में भी 'कला' शब्द का प्रयोग कई स्थलों पर हुआ है, जैसे— प्राचीदिक कला, दक्षिणादिक कला आदि। वैदिक ग्रंथों मे कला शब्द का प्रचुर प्रयोग दिखायी पड़ता है।

वैदिक युग में कलाकार समाज का सम्मानित सदस्य बन चुका था। ऋभुओ को उनकी रचना-कौशल के कारण देवत्व की प्रतिष्ठा प्रदान की गयी थी। उस समय काम (सम्पूर्ण प्रणय लीला) को प्रबुद्ध करने के लिए कला का प्रयोग होता था, किन्तु प्रस्तुत संदर्भ में 'कला' शब्द का प्रयोग बहुत बाद में हुआ जिसमें कला का अर्थ 'संस्कृति' के रूप में लिया गया है। यजुर्वेद के 30वें अध्याय में 64 कलाओं का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है, जिसे वात्स्यायन ने अपने 'कामसूत्र' मे निम्नानुसार व्यक्त किया है—

1 गीतम् (गाना)

2 वाद्यम् (बाजा बजाना)

---

1 डॉ० कुमार विमल : कला विवेचन, पृष्ठ 25।

2 नाट्यशास्त्र (1 113) सं० बटुकनाथ शर्मा

3 ब्रिटानिका, भाग–2, पृष्ठ 484

3 नृत्यम् (नाचना)
4 आलेख्यम् (चित्रकारी)
5 नाट्य (अभिनय करना)
6 विशेषकच्छेद्यम् (तिलक देने के लिए साँचे बनाना)
7 तण्डुलकुसुमावलिविकार (चावल और फूल आदि से चौक पूरना या अल्पना बनाना)
8 पुष्पास्तरणम् (पुष्पसज्जा)
9. दशनवसनांगराग: (वस्तु तथा शरीर के अंगों को रँगकर कलात्मक ढंग से सजाना)
10. मणिभूमिका कर्म (जडाऊ कार्य करना)
11. शयनरचनम् (शय्या रचना और बिस्तर लगाना)
12 उदकवाद्यम् (जलतरंग बजाना)
13 उदकघात: (जल क्रीड़ा)
14 चित्रयोगा: (दुर्लभ औषध का प्रयोग कर अवस्था परिवर्तन)
15. माल्यग्रंथनविकल्पा: (विभिन्न प्रकार के फूल गूँथना)
16 शेखरकापीडयोजनम् (केशसज्जा, जूड़ा बनाना तथा उसे पुष्पों से सजाना)
17 नेपथ्यप्रयोगा: (उचित वस्त्रालकार धारण करना)
18 कर्णपत्रमंग: (कान के आभूषण तैयार करना)
19. गन्धयुक्ति: (सुगन्धित द्रव्य (इत्र) बनाना)
20 भूषणयोजनम् (आभूषण तैयार करना)
21 ऐन्द्रजालयोग: (इन्द्रजाल करना)
22 कौचुमारयोग: (शरीर को हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर बनाना)
23 हस्तलाघवम् (हाथ की सफाई)
24 विचित्रशाकयूषभक्ष्यविकारक्रिया (तरह-तरह के साग-सब्जी बनाना)
25. पानकरसरागासवयोजनम् (विभिन्न प्रकार के पेय बनाना)
26 सूचीवानकर्याणि (कढाई, सिलाई की कला)
27 सूत्रक्रीडा (कशीदाकारी अथवा धागे का कार्य)
28 वीणाडमरूकवाद्यानि (तंत्र एवं चर्म वाद्य बजाना)
29 प्रहेलिका (पहेली)
30. प्रतिमाला (अत्याक्षरी)
31 दुर्वाचकयोगा. (कठिन पदों का अर्थ करना)
32. पुस्तकवाचनम् (ठीक ढंग से पुस्तक का पठन)
33 नाटकाख्यायिकादर्शनम् (नाटक एवं आख्यानों का श्रवण एवं दर्शन)
34 काव्य (समस्यापूर्ति)
35 (बेंत एव बाँस की पट्टियों से फरनीचर बनाना)

36 तक्षकर्माणि (सूत कातना)
37 तक्षणम् (बढईगीरी)
38 वास्तुविद्या (गृह-निर्माण कला)
39. रूप्यरत्न परीक्षा (मणियो और रत्नो की परीक्षा)
40 धातुवाद: (धातुओ को गलाकर मिलाना)
41 मणिरागाकर ज्ञानम् (रत्नो की पहचान करना)
42 वृक्षायुर्वेदयोगा: (उपवन लगाने की कला)
43. मेषकुक्कुटलावक युद्धविधि: (भेडा, मुर्गा और लावकों को लड़ाने
44. शुकसारिका प्रलापनम् (सुग्गा और मैना को पढ़ाना)
45 उत्पादने संबाहने केशमर्दने च कौशलम् (शरीर और सिर मे मालिश
46 अक्षर-मुष्टिका-कथनम् (सक्षेप मे कहने और जानने की कला)
47 म्लेच्छितविकल्पा: (गुप्त या विदेशी भाषा का ज्ञान)
48 देशभाषा विज्ञानम् (विभिन्न देश की भाषाओ का ज्ञान)
49 पुष्पशकटिका (पुष्पों से आकृति बनाना)
50 निमित्तज्ञानम् (शकुन ज्ञान)
51 यन्त्रमातृका (यत्र निर्माण)
52 धारणा मातृका (स्मरण शक्ति बढाना)
53 सम्पाठ्यम् (सही उच्चारण करना)
54 मानसी काव्यक्रिया (मौलिक काव्य रचना या आशु कविता करना)
55 अभिधानकोश छन्दोविज्ञानम् (कोश, छन्द आदि का ज्ञान)
56 क्रियाविकल्प: (वकालत करना अथवा तर्क द्वारा निर्णय पलटना)
57 छलितयोगा: (विभिन्न रूप धारण कर छल करना)
58 वस्त्रगोपनानि (फैन्सी ड्रेस, वस्त्र बदलकर विभिन्न रूप धारण करन
59 द्यूत विशेषा: (द्यूत विशेषज्ञ)
60 आकर्ष क्रीडा (आकर्षित करनेवाले कौतूहल करना)
61 बाल क्रीड़ाकानि (बच्चों को खिलाने की कला)
62 वैनयिकीनां विद्यानां ज्ञानम् (विनय तथा शिष्टाचार)
63 वैजयिकीनां विद्याना ज्ञानम् (विजय पाने की कला)
64 व्यायामिकीनां च विद्याना ज्ञानम् (व्यायाम करने की कला)

ये सभी चौंसठ कलाएँ नागरिको मे लोकप्रिय नहीं थीं। इनमे से कुछ लां
त्रकला, संगीत आदि, और अधिकाश कौशल थे जैसे प्रहेलिका, माला गूँथ
ारिको को इन कलाओ का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए ऐसा निर्देश भी दि
नाओ को जाननेवाले नागरिक सुसस्कृत कहे जाते थे और नगर जीवन की
गदान का विवेचन अपने आप में अत्यन्त स्पष्ट तथा निर्भ्रान्त

पूर्णरूपेण परम्परागत थी। इसी प्रकार चित्रकला की भी एक निश्चित परम्परा विद्यमान थी। उनका स्पष्ट कथन है—

पूर्वशास्त्राणि संहृत्य प्रयोगानुपसृत्य च।
कामसूत्रमिदं यत्नात् संक्षेपेण निवेशितम्॥

अर्थात् अपने पूर्ववर्ती शास्त्रो का संग्रह करके और शास्त्रोक्त विद्याओं के प्रयोग का अनुसरण करके (उन विद्याओ का कार्यत: किस प्रकार प्रयोग हो रहा है) तथा बडे यत्न से उनका सक्षेप करके मैंने इस कामसूत्र की रचना की है।

वात्स्यायन के उक्त कथन से यह भलीभाँति समझा जा सकता है कि चौसठ कलाओ में वर्णित आलेख्यम् (चित्रकला) का प्रचलन बहुत पहले से था और उसके कला नियम भी निर्धारित रहे होगे।

चित्रकला

स्मृति, भावना, आनन्द आदि को मूर्त रूप देना तथा समुचित रगों के उपयोग एव छाया-प्रकाश आदि के कौशलपूर्ण प्रयोग द्वारा उसमें सजीवता, भावाभिव्यक्ति और सादृश्य का बोध कराया जाना चित्र है।

अमरकोश में लिखा है—'चीयते इति चित्रम्'[1] (चित्रम्-चिनौति, चीयते वा। चि+का प्रत्यय) अर्थात् चित्रकार के चयन की स्वाभाविक परिणति करनेवाली अकृत्रिम षडङ्ग-माला ही चित्र है। 'शिल्परत्न' मे लिखा है— 'चित्र रति यत् चित्रम्' अर्थात् जो चित्र आनन्दित करता है वही वस्तुत: चित्र है और यह आनन्द 'रस' से उत्पन्न होता है—'रसो वै स:' यह आत्मा का सस्कार करता है—'आत्मानं संस्कुरुते' यह आत्मा अगर पट, भित्ति या फलक किसी पर भी चित्रित या अधिष्ठित रहता है तब एकमात्र वही चित्र है। आत्मा आत्मीयता के लिए व्याकुल रहती है। चारो ओर के वातावरण की आत्मीयता में अपने को प्रकट करने के लिए उसमें (आत्मा में) एक विशाल अभिव्यक्ति की वेदना या व्याकुलता उदित होकर निरन्तर कार्यरत रहती है। इस व्याकुलता के उदय होने पर उस चित्रकार की अभिव्यक्ति या रचना ही 'चित्र' है। यह रूप, प्रमाण, भाव, लावण्य, सादृश्य और वर्णिका भग के द्वारा प्रकट होती है।

चित्रकला के छह अंग (षडङ्ग)

भारतवर्ष मे चित्रकला की स्वस्थ परम्परा अति प्राचीन काल से विद्यमान थी। अजन्ता के चित्रो को देखकर इस बात की पुष्टि और अधिक हो जाती है कि भारतीय धर्म और समाज मे चित्रकला को विशिष्ट स्थान प्राप्त था और यदि चित्रकला का शास्त्रीय रूप विद्यमान था तो चित्रकला के नियम एवं विधि-विधान भी रहे होगे। चित्रविद्या के साथ चित्रकला के षडङ्ग का भी प्रचलन रहा होगा। इसलिए यशोधर पंडित ने कामसूत्र की टीका 'जयमगला' में 'आलेख्य' की टीका करते हुए निम्न श्लोक उद्धृत किया—

रूपभेदा: प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम्।
सादृश्य वर्णिकाभंग इति चित्रं षडङ्गकम्॥

अर्थात् रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्ययोजना, सादृश्य और वार्णिकाभग ये चित्रकला के छह अङ्ग हैं।

1. अमरकोश, तृतीयकाण्ड श्लोक 178

यशोधर पंडित जयपुर के अधिपति प्रथम जयसिंह के सभा-पंडित थे। उनका कार्यकाल 11-12वीं शती निश्चित होता है। उन्होने 'आलेख्य' की टीका मे जिन छह अङ्गों (षडङ्ग) का उल्लेख किया है वह निश्चय ही भारतवर्ष की चित्रकला मे सुदीर्घ परम्परा के रूप में विद्यमान रहा होगा जिसके आधार पर उन्होने इसे लिपिबद्ध किया।

भारतीय चित्रकला के पुनर्जागरण काल (Renaissance) के संस्थापक शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ टैगोर ने भारतीय चित्रकला को महिमामंडित करने के उद्देश्य से उक्त श्लोक की व्याख्या के रूप में एक विस्तृत निबन्ध 'भारत शिल्प के षडङ्ग' शीर्षक से प्रस्तुत किया जो 'भारती' पत्रिका में प्रकाशित हुआ और जिसका अनुवाद विश्व की विभिन्न भाषाओं में हुआ। इसका हिन्दी अनुवाद डॉ० महादेव साहा ने प्रस्तुत किया जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन की शोध-पत्रिका 'सम्मेलन-पत्रिका' के कला अंक मे प्रकाशित हुआ।

हमारा षडङ्ग, यशोधर के बहुत पहले प्राचीन काल से ही भारतीय शिल्पियों को सुविदित था क्योंकि हम देखते हैं कि ई० 479 से 501 के बीच चीन के शिल्पाचार्य शीहो (Hsieh Ho) ने चित्र के जो षडङ्ग (Six Canons) लिपिबद्ध किये वे हमारे षडङ्ग से बहुत-कुछ मिलते हैं। कहते हैं कि अमिताभ बुद्ध मूर्ति सर्वप्रथम चीनी शिल्पी ताई कुसी (Tai Kuei) ने 300 ई० मे बनाया। इससे इस सम्भावना को बहुत बल मिलता है कि बौद्ध शिल्प-पद्धति के साथ हमारे चित्र का षडङ्ग भी चीन पहुँचा।

प्राचीन सभ्यता के केन्द्र भारत एवं चीन के चित्रकला षडङ्ग में बड़ा साम्य है। इसे तुलनात्मक अध्ययन से भली-भाँति समझा जा सकता है। चीन का षडङ्ग इस प्रकार है—

1. Spiritual Tone and Life-movement (आध्यात्मिक भाव और जीवन छन्द)
2. Manner of brush-work in drawing lines (रेखांकन में तूलिका प्रयोग की विधि)
3. Form in its relation to object. (वस्तु के सापेक्ष आकार)
4. Choice of colour appropriate to the objects. (वस्तु के अनुरूप रंगों का चयन)
5. Composition and grouping (संयोजन एव समूहीकरण)
6. The copying of classic masterpieces. (उच्चकोटि की श्रेष्ठतम कृति की प्रतिलिपि)

—Sei-Ichi Taki, The Kokka, No 224

अन्य विद्वानो ने चीनी षडङ्ग का दूसरी तरह से अनुवाद किया। जैसे—

1. Rhythmic vitality (गतिमान प्राण-छन्द)
2. Anatomical structure (शारीरिक संरचना)
3. Conformity with nature (प्रकृति से समानुरूपता)
4. Suitability of colouring (वर्ण विन्यास या रगो की उपयुक्तता)
5. Artistic composition (कलात्मक सयोजन)
6. Finish (परिसज्जा या फिनिश)

—Giles, Introduction to history of Chinese Pictorial Art, p 24

इसी तरह हिर्थ (Hirth), बिन्यान (Binyon) तथा जापान के प्रसिद्ध शिल्पशास्त्री आकाकुरा (Okakura) ने चीनी षडङ्ग की अलग-अलग व्याख्या की है।

अवनीन्द्रनाथ टैगोर का कथन है चीन का षडङ्ग नाना मुनियों के नाना मत के कुहरे के अन्दर से किस प्रकार प्रकट होता है और देश काल पात्र भेद से वह किस प्रकार परिवर्तित

ओर परिवर्द्धित हो उठा है, वह यद्यपि हमारे देखने की वस्तु है और प्राच्य जगत् के दो महादेशों मे कौन-सा प्राचीनतर है, इसका भी निर्णय करना हमारा कर्तव्य है, फिर भी चित्र और उसके षडङ्ग के सम्बन्ध में जो स्वतंत्र चिन्तन और ध्यानादि वात्स्यायन के बहुत पहले से हमारे अदर प्रचलित हुआ था उसी का यथासम्भव विवेचन करना हमारा प्रधान लक्ष्य है।'

अवनी बाबू ने चित्रकला के छह अङ्गो की व्याख्या करने के पहले उनका अंग्रेजी अर्थ निरूपित किया जो इस प्रकार हैं—

1 रूपभेद — Knowledge of appearance
2. प्रमाण — Correct perception, measure and structure of forms.
3 भाव — The action of feelings on forms
4 लावण्य-योजना — Infusion of grace, artistic representation
5 सादृश्य — Similitudes
6 वर्णिकाभग — Artistic manner of using the brush and colours

ठाकुर महोदय और अन्य विद्वानों ने प्रत्येक अङ्ग की व्याख्या अपने-अपने तरीके से की है लेकिन उन विवेचनाओं का मूलमंत्र एक ही है। संक्षेप में चित्रकला के छह अङ्ग (षडङ्ग) इस प्रकार हैं—

1. रूपभेद

रूप अनन्त हैं। उनके विस्तार की कोई सीमा नही है। बच्चा पहली बार जब धरती माँ की गोद में आँख खोलता है तो वह रूप का ही दर्शन करता है। **'ज्योतिः पश्यति रूपाणि'** अर्थात् ज्योति से रूप का अनुभव होता है। मनुष्य के अन्दर की ज्योति, ब्रह्माण्ड की ज्योति सभी रूप का ही आराधन कर रहे है।

रूप के इस अनन्त भेद को कलाकार कैसे पहचानता है, यह उसके ज्ञान पर निर्भर करता है। **'ननु ज्ञानानि भिद्यन्तामाकारस्तु न भिद्यते।'** (पचदशी) वह ज्ञान ही है जो आकृति की वास्तविक विभिन्नता को अनुभव करता है।

रूप कहते हैं आकृति को। प्रत्येक मानव आकृति मे वय, समाज एव देश के अनुसार जो भिन्नता होती है, उनके रहन-सहन, पहनावा या बात-व्यवहार में जो अन्तर होता है; दुःख-सुख, उल्लास, प्रफुल्लता, दया, ममता, करुणा आदि मानवीय भावो की सृष्टि से उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में जिन भाव-भगिमाओ का अभ्युदय होता है इन्हीं सब का ज्ञान ही रूपभेद है। यह भेदाभेद कलाकार को ज्ञान चक्षु द्वारा प्राप्त होता है।

दूसरे शब्दों मे रूप के पहचान के दो माध्यम हैं। एक तो आँखों के द्वारा और दूसरा आत्मा के द्वारा। दृष्टि के द्वारा हम किसी लम्बी, छोटी, चौरस, गोल, मोटी, पतली, सफेद या काली आदि विविध आकार-प्रकार अथवा विभिन्न रंगों की वस्तुओं को ग्रहण करते हैं। किन्तु उस वस्तु या आकृति के भीतर जो व्यापक सौन्दर्य, अनन्त अलकृत और अपरिमित माधुर्य निहित है उसको देखकर नहीं, अनुमान कर, चिन्तन कर आत्मा के द्वारा पहचान सकते है। आगे चलकर हम एक वस्तु से दूसरे की तुलना कर रूपभेद को समझने लगते हैं।

मन की रुचि या दीप्ति को ———— बनाना ही रूप साधना है क्योंकि सौन्दर्य वस्तुगत नही बल्कि दृष्टिगत होता है और बाह्य दृष्टि भ्रमित हो सकती है इसलिए अन्तर्दृष्टि के द्वारा रूप को

पहचानकर, उसे रुचि के अनुकूल दीप्त करके ही एक कलाकार रूपभेद पर अधिकार प्राप्त कर सकता है।

रूपभेद मे मानव आकृति के लक्षण तथा अभिजात भी सम्मिलित है। लक्षण मे तात्पर्य हिन्दू सामुद्रिकी की उन विशेषताओं से है जिनके होने से मनुष्य राजा, महापुरुष, योगी, भोगी अथवा योद्धा इत्यादि होता है।

2. प्रमाण

प्रमाण कहते हैं मान, कद, कैंडा, सीमा अर्थात् वस्तु के ब्यौरे को। प्रमाण चित्रविद्या का वह अङ्ग है जिसके द्वारा चित्रित आकृति का मान (लम्बाई-चौडाई) निर्धारित किया जाता है जिससे उस आकृति या वस्तु में यथार्थता का बोध होने लगता है। वस्तु रूप के बारे में प्रमा या भ्रमविहीन ज्ञान प्राप्त करना प्रमाण का मुख्य कार्य है। प्रमा चित्रकार के अन्तःकरण का मापदण्ड है जिसके द्वारा वह सीमित एवं अनन्त दोनों को मापने मे सक्षम होता है। प्रमा से केवल दूरी-निकट को ही नहीं दिखाया जाता वरन् चित्रकार किस वस्तु को कितना दिखाये कि वह मनोहर एव मनभावन प्रतीत हो इसका भी निर्णय होता है। अतः प्रमाण केवल माप ही नही, प्रमातृचैतन्य है जो हमारे अन्दर और बाहर को परिमिति देता है—

मातुर्मानाभिर्निष्पत्तिनिष्पन्नम् मेयमेति तत् ।
मेयाभिसंगतम् तच्च मेयाभत्वम् प्रपद्यते ।।

प्रमाण के द्वारा हम मनुष्य, पशु-पक्षी आदि की भिन्नता और उनके विभिन्न भेदों को ग्रहण कर सकते हैं। पुरुष और स्त्री की लम्बाई में क्या अन्तर होता है, उनके समस्त अवयवों का समावेश किस क्रम एवं अनुपात मे होना चाहिए अथवा देवताओं और मनुष्यों के चित्रो के कद का क्या मान है ये सभी बातें प्रमाण के द्वारा निर्धारित होती हैं।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्र प्रकरण में विभिन्न मानव आकृतियो के नख से शिख तक का मान, ताल एव अंगुल मे सुनिश्चित किया गया है। इसके अतिरिक्त उन सभी मान, उपमान तथा क्षय-वृद्धि पर प्रकाश डाला गया है जिससे आकृति अपनी पूर्णता प्राप्त कर सके।

3. भाव

मानव मन अपने भावो के अनुकूल ही सासारिक अनुभवों को अपनी कृति में अभिव्यक्ति देता है। भाव ही कुछ अन्य स्थितियों के संयोजन से 'रसत्व' को प्राप्त होता है। अतः किसी भी कलात्मक अभिव्यक्ति मे भावों का बहुत बड़ा योगदान होता है। किसी कृति के निर्माण मे कलाकार का एक ही लक्ष्य होता है और वह है आनन्द प्राप्ति। रस इसी आनन्द का पर्यायवाची है। मनुष्य के सारे क्रिया-कलाप आनन्द (संतोष) प्राप्ति के लिए ही होते हैं। भाव (रस) किसी भी कलाकृति की आत्मा है जिसे अभिव्यक्ति देने के लिए कलाकार चित्रकला के अन्य अङ्गों का सहारा लेता है।

भाव कहते हैं आकृति की भङ्गिमा को, उसके स्वभाव, मनोभाव एवं उसकी व्यंग्यात्मक प्रक्रिया को। भारतीय चित्रकला में भावाभिव्यक्ति को बडा महत्व दिया गया है। भिन्न-भिन्न भावों की अभिव्यंजना से शरीर में भिन्न-भिन्न विकारो का जन्म होता है। भाव एक मानसिक प्रक्रिया है, जिसके लक्षण कायिक धर्मों के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। मन में जिस रस का जो भाव पैदा होता है उसी के अनुसार शरीर में भी परिवर्तन के लक्षण प्रकट होते है। शारीरिक अङ्गो के परिवर्तन द्वारा हृदय के भावों को दर्शित करने की प्राचीन चित्रों में अधिकता से देखने को मिलती है

चित्रसूत्रकार ने चित्र के लिए नौ रसो की व्यवस्था की है—

शृङ्गारहासकरुणवीररौद्रभयानकाः ।
वीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव चित्ररसाः स्मृताः ॥

इन नौ रसो के चित्रण के लिए किस प्रकार के भाव चित्र मे दिखाये जायँ इसका विस्तृत वर्णन भी दिया गया है।

अजन्ता के चित्रों में जो भावाभिव्यक्ति दिखायी पडती है उससे यह भलीभाँति सिद्ध होता है कि भारतीय चित्रकला भावप्रधान है।

4. लावण्य-योजना

लावण्य कहते हैं कान्ति, दीप्ति अथवा लुनाई को। लावण्य बाह्य सौन्दर्य का व्यंजक है। 'उज्ज्वल नीलमणि' में कहा गया है—

मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते॥

— उज्ज्वल नीलमणि

अर्थात् मोती की रूपराशि निष्प्रभ होती है यदि उसमें लावण्य की दीप्ति न हो। इसी प्रकार चित्र के रूप, प्रमाण और भाव सभी निष्प्रभ है यदि उनमे लावण्य की दीप्ति न हो।

रूपभेद, प्रमाण और भाव का जिस प्रकार चित्र पर एक बन्धन होता है उसी प्रकार लावण्य-योजना का भी बन्धन होता है। किन्तु वह सुकोमल, सुकुमार तथा सुनिश्चित सौन्दर्य बन्धन है जिसके द्वारा चित्र नयनाभिराम एव मनोहर बन जाता है।

भाव द्वारा कभी-कभी चित्र में रुक्षता आ जाती है जिसे लावण्य ही दूर कर सकता है। वह भाव का अवरोधक न होकर उसकी सुन्दरता एवं कान्ति को देदीप्यमान करता है। लेकिन लावण्य-योजना उचित रूप (मात्रा) में होनी चाहिए। अत्यधिक लावण्यता भी भाव को नष्ट कर देती है। अतः चित्रकार को भली-भाँति सोच-समझकर लावण्य का प्रयोग करना चाहिए। जिस प्रकार नमक के न रहने से भोजन का स्वाद फीका हो जाता है उसी प्रकार लावण्य के न रहने से भी रसास्वादन मे कठिनाई आती है।

लावण्य-चित्रण सुरुचिसम्मत, शुद्ध एवं संयत होता है इसलिए जैसे ही इसका प्रयोग होता है चित्र एक प्रकार की दीप्ति, कान्ति और आभा से जगमगा उठता है।

5. सादृश्य

सादृश्य का अर्थ है हूबहू, प्रतिरूप, सरूपता अथवा विचारो और आकृति में समानता।

चित्र काल्पनिक हो अथवा सत्य उसे ऐसा होना चाहिए कि देखनेवाला व्यक्ति तुरन्त पहचान ले। प्राचीन ग्रन्थों मे चित्रो द्वारा उनके बिम्ब के पहचान लिये जाने की चर्चा प्रायः आती है। किसी मूल वस्तु के साथ उसकी प्रकृति की समानता का नाम हो सादृश्य है। किसी रूप के भाव को किसी दूसरे रूप की सहायता से प्रकट कर देना ही सादृश्य है किन्तु सादृश्य दिखाते समय वस्तु की आकृति की अपेक्षा उसकी प्रकृति या उसके स्वधर्म के पक्ष का सादृश्य दिखाना अधिक उपयुक्त है। जिस वस्तु को हम चित्रांकित करते हैं उसमें यदि मूल वस्तु के गुण-दोष अविकल रूप से समाविष्ट न हुए हो तो वह वास्तविक कृति नहीं कही जा सकती। उदाहरण के लिए यदि हम कृष्ण का चित्र अंकित करना चाहें तो हमें देखना होगा कि उनमें ऐसी क्या क्या विशेषताएँ होनी चाहिए जो केवल कृष्ण में ही पायी जाती हैं

ऐसी अनेक बातें हैं जो सादृश्य द्वारा जानी जा सकती हैं। चित्र चाहे कल्पनाप्रसूत हो या वास्तविक किन्तु दर्शक उसको पहचानने में यदि भूल नहीं करता या किसी प्रकार की दुविधा में नही पड़ता तो वही चित्र शुद्ध कहा जायगा। ऐसा सादृश्य के द्वारा ही सम्भव है।

चित्रसूत्रकार ने चित्र में सादृश्य दिखाना ही चित्र की सबसे बड़ी विशेषता माना है। उसका कथन है—

चित्रे सादृश्यकरण प्रधान परिकीर्तितम्।

यही नही, वह यह भी कहता है कि चित्र का शुभ लक्षण यही है कि वह सजीव-सा साँस लेता हुआ-सा दिखे—

सश्वास इव यच्चित्रंतच्चित्र शुभ लक्ष्णम्।

शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ टैगोर ने पंचदशी का उल्लेख करते हुए लिखा है कि मस्तिष्क जब किसी वस्तु की आकृति के साथ प्रवाहित होता है तो इस प्रकार तदनुरूप हो जाता है जिस प्रकार पिघला हुआ ताँबा साँचे मे पहुँचकर इच्छित आकृति का बन जाता है। इस प्रकार चित्र मे आकृति और भावना दोनों का सादृश्य आवश्यक है।

6. वर्णिकाभंग

नाना वर्णों की सम्मिलित भगिमा को वर्णिकाभग कहते हैं। किस स्थान पर किस रंग का प्रयोग करना चाहिए तथा किस रग के समीप किसका सयोजन होना चाहिए ये सभी बाते वर्णिकाभग के द्वारा ही जानी जा सकती हैं। रंगो के भेद-भाव से ही हम वस्तुओ की विभिन्नता व्यक्त करने में समर्थ हो सकते हैं।

यद्यपि प्रमुख वर्ण पाँच प्रकार के माने गये हैं किन्तु उनके सम्मिश्रण से सैकड़ो उपवर्णों की सृष्टि होती है। प्रकृति, व्यक्ति, पशु, पक्षी, वृक्ष, लता आदि अनन्त प्रकार के चित्रो मे रंगो का किस भाँति उचित प्रयोग होना चाहिए, चित्रकार के लिए यह जानना परम आवश्यक है और इसका ज्ञान वर्णिकाभंग की साधना से ही हो सकता है। इसलिए वर्णिकाभंग चित्र के षडङ्गो मे सबसे कठिन साधना होती है।

रूप के भेदाभेद को नेत्रो द्वारा समझा जा सकता है। पमाण पर बिना तूलिका के ही अधिकार प्राप्त हो सकता है। भाव, लावण्य, सादृश्य को देख-समझकर जाना जा सकता है लेकिन वर्णिकाभग को तो तूलिका से ही पकड़ना होगा। यदि कलाकार तूलिका नही चला सकता तो सादा कागज कोरा ही रह जायगा। तूलिका पकड़ने मे हाथ जरा भी न काँपे और कलाकार की इच्छा बगैर एक बाल भर भी आगे न बढे। तूलिका को वश मे लाना एव वर्ण की सही पहचान निश्चय ही बड़ा कठिन कार्य है।

नाट्यशास्त्र मे कहा गया है—

वर्णानाम तु विधिम् ज्ञात्वा तथा प्रकृतिमेव च कुर्यादंगस्य रचनाम्।

वर्ण की विधि और प्रकृति को समझ करके ही आकृति बनानी चाहिए।

भारतीय चित्रकला की विशेषताएँ

भारतीय कलाकार अपनी कृतियो का सृजन अपने अन्त:करण की प्रेरणा से करता है। उसका मन यथार्थ की अपेक्षा कल्पना और अत:प्रेरणा से अधिक उद्भासित हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि वह धर्म आस्था और विश्वास से अत्यधिक प्रेरित रहा है। किसी भी यथार्थ मॉडल से दैवी स्वरूप को वैसे भी सम्भव नहीं है

भारतीय कलाकार अपनी अटूट और दुस्साध्य साधना के बल पर निराकार को साकार करने में सफल होता है। भारतीय कला की आध्यात्मिक भाव-भूमि कलाकार की कल्पना को सक्रिय कर उसे उस स्थान पर ले जाकर खडा करती है जहाँ वह सत्यम्, शिवम् एव सुन्दरम् स्वरूप का निर्माण कर अपनी कृतियो मे शाश्वत सत्य तथा अनन्त दीप्त पुज को समाहित करता है।

भारतीय चित्रकला मे धर्म के साथ लोकमत का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। लोक-जीवन की महती मान्यताओ को आत्मसात् कर कलाकार ने कला के आदर्श को और अधिक गौरव प्रदान किया। सनातन धर्म, बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म के अर्न्तगत अनेक लोक-कथाओं और लोक-विश्वासों के आधार पर यक्ष, नाग, गधर्व, वृक्षका, पृथ्वी, भगवती, अप्सरा और भूत-पिशाचो की पूजा-परम्परा को स्वीकार कर लोकजीवन मे धर्म को अधिक परिपुष्टि प्राप्त हुई । दूसरे शब्दो में अपने-अपने धर्म की लोकप्रियता के लिए ही उसने लोकमान्यताओं को ग्रहण किया।

भारतीय चित्रकला हमेशा धर्म की सहचरी रही है। धर्म के प्रत्येक कार्य-व्यापार मे चित्रकला का सक्रिय योगदान रहा। वैष्णव मत में चित्र-रचना को विशेष महत्त्व दिया गया और चित्र-दर्शन को भक्ति का एक अङ्ग बताया गया। बौद्ध धर्म में धर्म के व्याख्याता के रूप मे उसका समादर किया गया। यही नहीं, बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में उसने महनीय भूमिका अदा की। जैन धर्म के पोथी चित्रण में इसका सक्रिय योगदान रहा। भारतीय धर्म, लोकविश्वास और आन्तरिक अभिव्यक्ति को सार्वजनीन एवं सर्वकालिक बनाने के लिए इसने अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में कार्य किया। बौद्ध धर्म की मान्यताओ, विश्वासों और मतों को सुदूर देशो तक ले जाने का कार्य भारतीय कला ने ही संवहन किया।

भारतीय कलाकारों की सदैव से यह मान्यता रही है कि प्रतिकृति उतारने मे कोई मर्यादा या निपुणता नही है। उसने हमेशा मौलिक उद्भावनाओ से युक्त चित्र-निर्माण में रुचि दिखायी। यही कारण है कि कला के क्षेत्र में उसे विश्व मे श्रेष्ठतम सम्मान प्राप्त है। अजन्ता एव बाघ की कल्पनाप्रवण रचनाएँ विश्व की कलाकृतियों मे बेजोड़ हैं।

भारतीय कला मे प्रतीक चित्रण को बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त है। मानव अपने गोपन भावो को प्रतीकों द्वारा व्यक्त करता है लेकिन उसके ये गोपन भाव धर्म एवं नैतिकता से अनुप्राणित हैं। पश्चिम में मनुष्य अपनी तुच्छता का अनुभव कर महत्त्वपूर्ण शक्ति के प्रति आस्थावान् हुआ जबकि भारतवर्ष में धर्म मानव-स्वभाव की विचित्र गति का द्योतक है। यहाँ आत्मज्ञान को कल्याण का मार्ग बताया गया है और धर्म को समाज का अनुगामी मानते हुए आपस्तम्ब ने अपने धर्मसूत्र मे 'समय और रीति, जो सज्जनों को स्वीकार हो' उसे ही धर्म कहा। यहाँ धर्म का फल सुख है। आर्य धर्म ने समाज और धर्म को मिलाकर चलने की बात कही है। अत. हमारी कला में लोकतत्त्व, आस्था और विश्वास के प्रकटन में प्रतीकों की विशेष सहायता ली गयी। प्रतीक मन तथा बुद्धि की वस्तु है। मन तथा बुद्धि आत्मा के अनुयायी हैं। आत्मा चिरंतन सत्य है और इसी चिरंतन सत्य को भारतीय कला प्रतीक के सहारे व्यक्त करती है जो हमें परमानन्द का बोध कराती है।

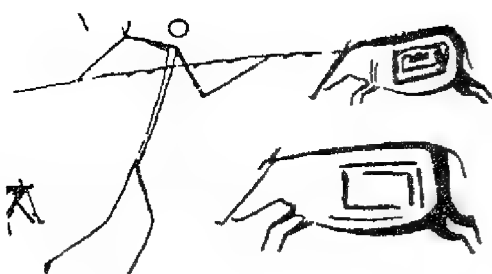
भारतीय कला में जो सर्वाधिक महत्त्व की बात दिखायी पड़ती है वह है मनुष्य के उल्लासमय जीवन में हर्ष और आनन्द के भाव जैसे फूट पड रहे हैं। प्रकृति के प्रत्येक कार्य-व्यापार में उल्लसित चेतना का संचरण हो रहा है प्रागैतिहासिक चित्रों से लेकर आज तक की भारतीय कलाकृतियों में मानव मन के उत्साह उत्प्रेरणा और आनन्द के भाव सर्वत्र विद्यमान हैं

इन कृतियो का सृजन मनुष्य के अन्दर उत्साह, उत्कर्ष एवं उन्नयन के भाव का जागृत करने के लिए किया गया है।

भारतीय कला में नैतिकता तथा आदर्श को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया। चित्रकला में क्या बनाना चाहिए तथा क्या नही बनाना चाहिए इस पर चित्र लक्षण ग्रन्थों मे विशद रूप से विवेचन हुआ है।

भारतीय चित्रकला रेखाप्रधान है जबकि अन्य पश्चिमी कला छाया प्रकाश और विचक्षणता पर विशेष बल देती है। रेखा गतिमय भाव और सूक्ष्म सौन्दर्य को प्रकट करने में समर्थ है जबकि छाया-प्रकाश मासलता, वासना और भावहीन रूप को प्रकट करता है। इसीलिए चित्रसूत्रकार ने कहा है—'**रेखां प्रशंसन्त्याचार्याः**' अर्थात् आचार्य चित्र की प्रशसा में रेखा को प्रधान गुण मानते हैं। भारतीय चित्रों में रेखाओ का बडा महत्त्व दिखायी पडता है। भारतीय कलाकार की तूलिका मे इतनी गति है कि थोडे-से ही प्रत्यावर्तन से समुचित प्रभाव व रूपरेखा उभरकर सामने आ जाती है।





2

प्रागैतिहासिक काल (Prehistoric Period)

मानव सभ्यता एवं संस्कृति के क्रमिक विकास के सम्यक् अध्ययन के लिए प्रागैतिहासिक चित्रो का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। प्रागैतिहासिक चित्रकला का अध्ययन आज से कुछ समय पहले विश्वस्तर पर प्रारम्भ हुआ है। इस विषय पर इतने साक्ष्य प्राप्त हो चुके है कि अब इसका अध्ययन स्वतन्त्र विषय के रूप में होने लगा है। ससार के विभिन्न अचलो में प्राप्त प्रागैतिहासिक चित्र मानव जाति के प्रारम्भिक जीवनयात्रा की विशद कहानी है जिनमें आदि मानव के उल्लासमय जीवन के आन्तरिक भावों की सफलतम अभिव्यक्ति दिखायी पड़ती है।

हिन्दी का प्रागितिहास (प्राक् + इतिहास) प्रीहिस्ट्री (Prehistory) का शाब्दिक अनुवाद है जिसका सर्वप्रथम प्रयोग सन् 1851 मे डैनियल विल्सन ने अपनी पुस्तक 'दी अर्कयोलाजी एण्ड प्रीहिस्टारिक एनाल्स आफ स्काटलैण्ड' में किया। उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध में मानविकी शास्त्र (Humanities) में इसे स्वतंत्र विषय के रूप मे सम्मिलित कर लिया गया और इस शब्द का प्रयोग इतिहास काल के पहले उस आदि काल के लिए किया गया जब मानव सभ्य होने की प्रक्रिया से गुजर रहा था। ऐतिहासिक काल अब केवल उतने मानव इतिहास के लिए कहा जाता है जहाँ तक विविध घटनाओं की निश्चित तिथियाँ प्राप्त होती हैं। प्रागितिहास एवं इतिहास के मध्य का एक और विभाजन है जिसे आद्यैतिहासिक काल (Protohistoric Period) कहते है। वस्तुतः यह इन दोनों के बीच की एक कडी है जो प्रागितिहास एव इतिहास को एक-दूसरे से जोडती है। आद्यैतिहासिक काल में लिखित प्रमाण उपलब्ध न होते हुए भी ऐसे यथेष्ट प्रमाण प्राप्त होते है जिनसे इसके इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। भारतवर्ष में सिन्धु घाटी की सभ्यता इसी आद्यैतिहासिक काल के अन्तर्गत आती है। इस सभ्यता के लोग यद्यपि एक चित्रलिपि का प्रयोग करते थे जो उनके मुहरों पर दिखायी पडती है लेकिन अभी तक उन्हें पढा नहीं जा सका है। अपनी इन्ही विशेषताओं के कारण हड़प्पा सभ्यता आद्यैतिहासिक काल के अन्तर्गत रखी गयी है।

मानव के उद्‌भव का इतिहास पृथ्वी के निर्माण एवं विकास से जुड़ा है जिसके अध्ययन के लिए भूतत्त्व विज्ञान (Geology), जीवाश्म विज्ञान (Palaeontology) एव नृतत्त्व शास्त्र (Anthropology) आदि विज्ञानों की सहायता ली जाती है। इसका इतिहास इतना प्राचीन है कि वर्षों में इसकी गणना हो ही नही सकती। अतः वैज्ञानिक भूतात्त्विक कल्पों (Geological Ages) से गणना करते हैं। निश्चय ही मानवेतर स्थिति से मानव सम (Homonid) तथा मानव (Homo safien) बनने में उसे कई कल्प लगे होंगे लेकिन हमारा अध्ययन मानव सभ्यता के उद्‌भव एवं विकास से जुड़ा है और पाषाणकाल मानव सभ्यता का आदिकाल माना गया है अतः हमे पाषाणकाल के कालक्रम को देखना होगा। विभिन्न विद्वानों ने सम्पूर्ण पाषाणकाल को कई भागों

मे बाँटा है। देश-काल के अनुसार शब्दावली में भी भिन्नता है। यहाँ हम यूरोपीय प्रागैतिहासिक शब्दावली के अनुसार भारतीय दृष्टिकोण से पाषाणकाल को निम्न कालक्रम मे रख सकते हैं :–

पाषाणकाल : कालक्रम

1 **पुरापाषाण काल** (Palaeolithic) 4,00,000 से 10,000 वर्ष पूर्व

इसे निम्न कालक्रम मे विभक्त किया गया है :

(i) पूर्व पुरापाषाण काल (Lower Palaeolithic) 4,00,000 से 1,00,000 वर्ष पूर्व

(ii) मध्य पुरापाषाण काल (Middle Palaeolithic) 1,00,000 से 40,000 वर्ष पूर्व

(iii) उत्तर पुरापाषाण काल (Upper Palaeolithic) 40,000 से 10,000 वर्ष पूर्व

2. **मध्य पाषाण काल** (Mesolithic) 10,000 से 4,000 वर्ष पूर्व

3. **नूतन पाषाण काल** (Neolithic) 4,000 से 2,500 वर्ष पूर्व

(विभिन्न देशों मे मध्य पाषाण काल का अंत तथा नूतन पाषाण काल का प्रारम्भ अलग-अलग समय में हुआ। उपर्युक्त कालक्रम भारत को ध्यान में रखकर दिया गया है।)

आदि मानव ने अपनी सुरक्षा एवं शिकार के लिए नाना प्रकार की वस्तुओं—पत्थर, लकड़ी, हड्डी आदि का प्रयोग किया होगा लेकिन पत्थर के अतिरिक्त अधिकांश वस्तुएँ अल्पकालिक हैं। प्रागितिहास के संदर्भ मे 'प्रस्तर उपकरण' शब्द का प्रयोग ऐसे पत्थरो के लिए किया जाता है जिसका प्रयोग आदि मानव ने किया। इन पत्थरो पर आदि मानव की कारीगरी (Human Workmanship) स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। अस्तु आकारगत समता के होते हुए भी हम उन पत्थरों को इसके अन्तर्गत नहीं रखते जिन्हें मानव ने न सँवारा हो या न इस्तेमाल किया हो। प्रागैतिहासिक मानव के अध्ययन के लिए उनके द्वारा प्रयुक्त प्रस्तर उपकरणों का अध्ययन एव विवेचन आवश्यक है। ये मानव मस्तिष्क के विकास के स्थूल प्रमाण हैं तथा प्रागैतिहासिक चित्रों की खोज के पहले इन्हीं के द्वारा उनके विकास की कहानी स्पष्ट होती है।

यहाँ की प्राचीन गुफाओं के उत्खनन से जो प्रस्तर उपकरण प्राप्त हुए हैं उनमे चॉपर (Chopper) एवं चॉपिंग (Chopping) विशेष महत्त्व रखते हैं। ये छोटे गोल पत्थरों से, एक या दो किनारों से फलक निकालकर बनाये गये हैं। इनका उपयोग मांस आदि को काटने के लिए होता रहा होगा। इस काल की सस्कृति के बारे में निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। इसके बाद की संस्कृति एश्यूलियन (Acheulian) कही जाती है जिसके अवशेष प्रचुर रूप से मिले हैं। इन प्रस्तर उपकरणों में हैण्ड-एक्स (Handaxe—लम्बे नुकीले व धारदार खोदने और छीलने के औजार), क्लीवर (Cleaver चौड़ी धारवाली कुदाल) मुख्य हैं और ये तकनीकी दृष्टि से विकसित हैं। इनकी सुडौल आकृति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एश्यूलियन (Acheulian) मानव के अन्दर सौन्दर्य-बोध का प्रस्फुटन हो चुका था। यह संस्कृति 3,00,000 वर्ष से 1,00,000 वर्ष तक पुरानी कही जा सकती है।

उपर्युक्त उपकरणो का चलन या उपयोग समाप्त हो जाने के बाद इनका स्थान फलक पर बने छोटे व पतले उपकरणों ने ले लिया जिनमें स्क्रेपर (Scraper—मांस काटने, खाल साफ करने व लकड़ी छीलने के औजार) और अस्त्राग्र या पॉइण्ट (Point—लकड़ी के अग्रभाग में बाँधकर भाले के रूप मे इस्तेमाल होनेवाला नोक) उपकरण मुख्य हैं। यह निएंडरथल मानव की मुस्तीरियन (Mousterian) संस्कृति जो यूरोप एवं पश्चिम एशिया में पायी गयी है के बहुत निकट है इसका काल 40 000 से 1 00 000 वर्षों के बीच माना गया है

इसके बाद की सस्कृति फ्रास एवं अन्य क्षेत्रो में प्राप्त ऑरिगनेशियन संस्कृति से साम्य रखती है। इसमें ब्लेड (Blade—लम्बे, पतले एवं समानातर धारवाले) उपकरणों का प्राधान्य है। तराशकर बनाये गये स्क्रेपर (Scraper) एवं (ब्यूरीन (Burin) धारवाले उपकरण अथवा तक्षणी) भी इसी काल के हैं। इसी पर्त में ढाँगदार भाले का अग्रभाग भी प्राप्त हुआ है जो अफ्रीका की अतीरियन सस्कृति के उपकरणों से मिलता-जुलता है। इस सस्कृति को आज से 40,000 से 10,000 वर्षों के बीच रखा जा सकता है। प्रागैतिहासिक शब्दावली मे इसे उत्तर पुरापाषाण काल के नाम से अभिहित किया गया है।

जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि प्रस्तर उपकरणो का अध्ययन हमें पाषाणकालीन मानव के विकास की थोड़ी-बहुत जानकारी देता है लेकिन प्रागैतिहासिक चित्रों ने मानव-विकास की जो कहानी कही है उसका रंग ही अलग है। वे आदिम मानव के आन्तरिक भावो की अभिव्यक्ति हैं अतः मानव सभ्यता की चित्रित झाँकी हमे यही देखने को मिलती है। इन चित्रों से आदि मानव के तत्कालीन जीवन पर प्रकाश तो पडता ही है, इनके द्वारा उनके कार्य-कलाप तथा रहन-सहन के तरीकों का भी ज्ञान होता है। मानव मन की कल्पना शक्ति कहाँ तक उडान ले सकी थी तथा गुहागृही मानव ने कितनी प्रगति की थी इन सभी का लेखा-जोखा इन शैल-चित्रों में स्पष्ट रूप से उभर आया है।

प्रागैतिहासिक चित्रों की सर्वप्रथम खोज

सर्वप्रथम संसार का ध्यान प्रागैतिहासिक चित्रो की ओर अल्तामीरा की चित्रमय गुफाओं की खोज के बाद आकृष्ट हुआ। इसके पहले भारतवर्ष मे अजन्ता शैल-चित्रों की खोज सन् 1819 मे हो चुकी थी जिसने सम्पूर्ण विश्व को अपने कलात्मक वैभव से चमत्कृत कर दिया था।

स्पेन में अल्तामीरा गुफा के प्रागैतिहासिक चित्रो की खोज नितान्त आकस्मिक एवं अप्रत्याशित रूप से सन् 1879 में हुई। एक शिकारी घोड़े पर सवार अपने कुत्ते के साथ सान्तिलाना के पास अल्तामीरा की ढलान की ओर बढ रहा था। उस समय वह बेफिक्री से आगे बढ़ रहा था क्योंकि उसका शिकार गायब हो चुका था। कुछ दूर इसी प्रकार आगे बढ़ने के बाद उसे घोडे के पीछे आ रहे कुत्ते ही आहट न मिली तो उसने पीछे मुड़कर देखा, कुत्ता गायब। शिकारी ने जोरदार आवाज लगायी। कुत्ते ने भौंककर जवाब दिया लेकिन शिकारी को लगा जैसे आवाज किसी खोह से आ रही है। डरते हुए वह आवाज की ओर बढा। उसे घनी झाड़ियों के पीछे छिपा हुआ पथरीला द्वार दिखायी पड़ा। शिकारी ने पुनः आवाज लगायी लेकिन गुफा में अन्दर तक घुसने की हिम्मत न हुई। तब तक कुत्ता दौड़ता हुआ आकर उसके पैरो पर लोटने लगा। अँधेरी गुफा में घुसना मुनासिब न समझ उसने अपनी राह ली। शिकारी ने कई जगह इस रहस्यमयी गुफा की चर्चा की लेकिन किसी ने इस पर ज्यादा ध्यान न दिया।

छह साल बाद मार्सेलीनो द सौतुओला (Marcelino de Sautuola) को इस गुफा की जानकारी एक मजदूर ने दी। मार्सेलीनो को पुराने इतिहास में बहुत रुचि थी इसलिए अपनी ही जमीन मे स्थित उस गुफा की खोज करने लगा लेकिन तब तक सालो की बरसात एवं बर्फ गिरने से उस गुफा का द्वार बंद हो गया था। वह निराश न हुआ और गर्मियों में वहाँ की जमीन साफ करानी शुरू की। सफाई के दौरान ही उसने ढलान पर भटी नाली-सा कुछ दिखायी दिया। वह उसे साफ कराने लगा।

कुछ वर्षों की सफाई एवं खुदाई के बाद गुफा के द्वार के पास का मलबा हट गया और सुरंग दिखायी पडने लगी मार्सेलीनो बड़ा प्रसन्न हुआ एक दिन वह अपनी नन्हीं लडकी मारिया के

साथ लैम्प लिये हुए गुफा के अन्दर घुसा। मारिया अपने पिता के कार्यों में बराबर दिलचस्पी लिया करती थी। दोनों आगे बढ़े। गुफा सैकड़ों गज गहरी थी। आगे चलकर लैम्प की रोशनी के आगे बढ़ती हुई मारिया की निगाह एक बार जैसे ही ऊपर गयी वह चिल्ला उठी, "पापा, मीर, तोरोस पिन्तादोसा" (पापा, उधर देखो वह साँड-साँड़)। मार्सेलीनो चौंका और सजग हो इधर-उधर देखने लगा। जब मारिया के इशारे की ओर नजर गयी तो वह आश्चर्यचकित रह गया। बगल की दीवार पर विशाल साँड़ सींगें नीचे किये हुए चित्रित था। यह चित्र संसार के आदि मानव द्वारा चित्रित किया गया था। उसने रोशनी आगे बढ़ायी तो भाँति भाँति के रंगों में अनेक आकृतियाँ चमक उठीं। दोनों अचरज से आकुल बाहर आये और चित्रों की रक्षा हेतु पहरा बैठा दिया।

मार्सेलीनो ने इस गुफा की खोज की सूचना पुरातत्त्व एवं इतिहास के पण्डितों के पास भेजना शुरू किया। संसार के कलाविद् अल्तामीरा जा पहुँचे और उन्होंने कहा कि ये चित्र संसार के सबसे पुराने चित्रों में से हैं जिन्हे आदि मानवों ने बनाया है। मार्सेलीनो की इस खोज ने विश्व की चित्रकला के इतिहास मे एक नया अध्याय जोड दिया।

विदेशी क्षेत्र के शैल-चित्र

उत्तरी स्पेन मे कैण्टेब्रिया (Cantabria) से पिरेन (Pyrenees) तक तथा पेरिगार्ड (Perigord) एव वेजर (Vezere) नदी की घाटियो मे लगभग 100 चित्र गुफाओं की शृखला मिली है। उनमे अल्तामीरा (Altamira), बर्सोण्डो (Basondo), कुवा डेल कास्टिलो (Cueva del Castillo), ला पेसीगा (La-Pasiega) हॉरनॉस डेला पेना (Hornos dela Pena), पिण्डाल (Pindal) एवं पेना द काउडेमो (Pena de Caudemo) नामक गुफाएँ शैलचित्रों के लिए विशेष उल्लेखनीय हैं।[1]

सन् 1929 में एम० सी० बर्किट एवं अबे० यच० ब्रुइल ने दक्षिण स्पेन के शैलचित्रों का विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया जिससे स्पेन के अल्तामीरा, कोगुल (Cogul) आदि 32 चित्रमय गुफाओ पर प्रकाश पडा। ये चित्र बास्क (Basque), सन्तांदर (Santander), अस्तुरिया (Asturias), ओल्ड कैसेल (Old Castile) एव अन्दालूसिया (Andalusia) क्षेत्रो में स्थित हैं।

यहाँ यह विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि अल्तामीरा के पशु-चित्र अफ्रीका के खोट्सा गुफा (Khotsa Cave) के पशु-चित्रों से बहुत अधिक साम्य रखते है तथा पूर्वी स्पेन के साल्तादोरा (Saltadora) गुफा की धनुर्धर आकृतियाँ बसूटोलैण्ड (Basutoland) की बोगाटी पहाड़ी (Bogati Hill) के शैल-चित्रो में अंकित योद्धाओं से मिलती-जुलती हैं। इस सभ्यता के बारे मे विद्वानो के बहुत-से मत प्राप्त हैं जिनमें से एक यूरोप एवं अफ्रीका के बीच सांस्कृतिक सम्बन्धों की कल्पना भी है।

स्पेन के ही तटवर्ती प्रदेश मे परपेल्लो (Perpello) एव मीनाटेडा (Minateda) की गुफाएँ शैल-चित्रो के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण हैं जहाँ अनेक शैलियों एवं प्रस्तरों मे चित्र अंकित हैं।

स्पेन की तरह ही फ्रांस में प्रागैतिहासिक चित्रों की विपुल सम्पदा प्राप्त हुई है। रीवियर Riviere) ने डॉरडांग (Dordogne) प्रदेश मे स्थित 'ला-माउथ केवर्न' (La mouthe Cavern) नामक गुफा का सन् 1895 में पता लगाया। इसी तरह 1896 मे 'पेर-नों-पेर' (Pair-non-Pair), 1901 मे 'फां-द-गां' (Font-de-Gaume) और 1908 में 'मार्सूलास' (Marsulas) के शैल-चित्र

1. एसेन हाटन ब्राड्रिक प्रीहिस्टारिक पेण्टिंग, पृ० 5

प्रकाश में आये लेकिन सबसे बड़ी उपलब्धि लास्को (Lascaux) के प्रागैतिहासिक चित्रों की खोज (1940) के बाद हुई। लास्को गुफा की खोज-कथा अल्तामीरा घटनाक्रम से कम रोचक नही है। सन् 1940 के पहली सितम्बर को पाँच लडके अपने कुत्ते के साथ सैर को निकले। अचानक उनका कुत्ता कही खो गया। उन्होंने आवाज लगायी। समीप के एक छेद से कुत्ते की आवाज सुनायी पडी और जब उन पाँचों ने छेद को चौडा किया तो वे चित्रित गुफा के अद्‌भुत ससार मे जा पहुँचे।

लास्को गुफा लगभग 20 मीटर लम्बी तथा 9 मीटर चौडी है जिसकी दीवार तथा ऊपरी छत पर अनेक गतिशील पशु-चित्र अंकित हैं। लास्को के चित्र अल्तामीरा के चित्रो से किसी प्रकार कम नहीं हैं। प्राचीनता की दृष्टि के लास्को के चित्र अल्तामीरा के चित्रों से प्राचीन हैं। सन् 1989 मे फर्नेण्ड विण्डेल्स (Fernand Windels) ने अपनी पुस्तक 'द लास्को केव पेंटिंग्स' में यहाँ के चित्रों के बारे में विस्तृत परिचय दिया है।

इसी तरह विश्व के कई भागो से प्रागैतिहासिक शैल-चित्रो की खोज के विवरण प्राप्त हुए है और विश्व के प्रागैतिहासिक कला-केन्द्रों की नित-नवीन खोज हो रही है। नये-नये शैल-चित्र प्रकाश में आ रहे है। इसी वर्ष (1995) में फ्रान्स की कुछ नयी चित्रित गुफाएँ प्राप्त हुई है जिनका विवरण दूरदर्शन द्वारा 19 जनवरी 1995 को प्रसारित किया गया था।

भारत में प्रागैतिहासिक चित्रों की खोज

भारतवर्ष मे प्रागैतिहासिक चित्रों की खोज के पहले ऐसे कई प्रमाण प्राप्त हो चुके थे जिनके द्वारा यह सिद्ध हो गया था कि ससार के सबसे प्राचीन आदि मानव यहाँ निवास करते थे। सर्वप्रथम मद्रास के निकट पल्लवरम् नामक स्थान से रावर्ट ब्रुश फुट ने 13 मई, 1863 को एक प्रस्तर उपकरण खोज निकाला। इसी समय मद्रास के निकट पूर्व प्रस्तर युग के एक कलापूर्ण शिला-खण्ड का पता लगा। इसी तरह जियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया के द्वारा अतरम्पक्कम् और नानवरम् नदियो के किनारे कँकड़ीले स्तर से पाषाणकालीन औजार खोज निकाले गये। सन् 1865 में ए० बी० वाइने ने हैदराबाद में गोदावरी के किनारे पैथान नामक स्थान से फासिल प्राप्त किया। इसी के बाद एच० एफ० व्लेनफोर्ड ने नर्मदा और गोदावरी घाटी के साक्ष्यों को देखने के बाद 1867 में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि भारतवर्ष में मनुष्य का अस्तित्व यूरोप से कहीं अधिक प्राचीन है।

इसके पश्चात् 1868 मे कैप्टन बीचिग और वेलेन टाइनवाल ने चक्रधरपुर में पाषाण-युग के अवशेष प्राप्त किये जो पूर्व पाषाण एव नव पाषाण काल दोनों के ही बताये जाते हैं। यहाँ से क्वार्ट्ज-स्क्रेपर (Quartz Scraper), फ्लिण्ट (Flint), पत्थर के नुकीले औजार, चाकू, खोदनेवाले लम्बे धारदार औजार तथा एक गोल पत्थर जिसके बीच में एक छेद है आदि प्राप्त हुए जिन्हें पूर्व पाषाण युग का माना गया है। इसके बाद सन् 1873 मे हैकेट महोदय ने नर्मदा नदी के किनारे भूत्रा नामक स्थान से एक हस्त-कुठार प्राप्त किया। इस तरह भारतवर्ष मे प्रागैतिहासिक दिशा मे अनुसंधान कार्य प्रारम्भ हुआ। ये सब कार्य अंग्रेज अधिकारियों द्वारा ही किये गये जो आये तो थे राज्य करने लेकिन अपने घुमक्कडी स्वभाव एवं खोजी-प्रवृत्ति के कारण हमारी प्राचीन सभ्यता एवं सास्कृतिक विरासत को उन्मीलित कर गये।

भारतीय शिला-चित्रो की खोज का प्रथम श्रेय भी इन्हीं विदेशी विद्वानों को ही जाता है भारतवर्ष के शैल चित्रो की ओर सर्वप्रथम ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय आर्चिबाल कार्लाइल

(Archibal Carlleyle) तथा जॉन काकबर्न (John Cockburn) को है। उन्होंने सन् 1880 मे कैमूर की पहाड़ियो के चित्रों का अलग-अलग परिचय दिया जो मिर्जापुर के निकट विन्ध्य क्षेत्र मे स्थित है। कार्लाइल की खोज का विवरण कहीं प्रकाशित न हो सका केवल उसकी सूचना 'प्रोसीडिंग आफ द एशियाटिक सोसाइटी आव बगाल' फरवरी 1883 पृष्ठ 49 पर दी गयी। काकबर्न की खोज की सूचना भी उसी पत्रिका के पृष्ठ 123 पर थी। लेकिन उसका विस्तृत विवरण सोसाइटी के जर्नल[1] मे प्रकाशित हुआ। ये चित्र घोड मंगर नामक शिलाश्रय मे मिले थे। उन्होंने इस लेख के साथ गैंडे के शिकार दृश्य की रेखानुकृति भी प्रकाशित की। इसके अतिरिक्त उन्होंने गैंडे के अन्य शैल-चित्र बुढ़ार परगना के रौप नामक गाँव के पास देखे तथा गैंडे के शिकार का दृश्य तथा बारहसिंगे आदि अनेक पशुओं के चित्र विजयगढ दुर्ग के समीप हरनी-हरना नामक गुफा मे देखे। लोहरी मे उन्हे लौह-फलक से युक्त चित्रित भाला तथा आखेट का दृश्य अकित मिला। जॉन काकबर्न की उपलब्धियाँ सोसाइटी पत्रिका के कई अंको मे प्रकाशित हुईं जिनमें मिर्जापुर जिले के प्रागैतिहासिक चित्रों के क्रमिक खोज का ब्यौरा है।

इन सबमे सबसे उल्लेखनीय सन् 1899 मे प्रकाशित काकबर्न का सचित्र लेख 'केव ड्राइग्स इन दी कैमूर रेंज, नार्थ-वेस्ट प्राविसेज',[2] है जिसमें भल्डरिया, लोहरी और लिखुनिया के चित्रो की अनुकृतियाँ भी दी गयी हैं। उन्होने इन चित्रो की प्राचीनता स्वीकार करते हुए कैमूर की दक्षिणी श्रेणी (सोन नदी के किनारे) के शिलाश्रयो के चित्रो को श्रेष्ठ बताया। उन्होंने बाँदा जिले के मर्कडी और मझावन, इलाहाबाद के खैरागढ़ परगना, मिर्जापुर, चुनार, पभोसा और चित्रकूट आदि क्षेत्रो में देखे गये चित्रो का उल्लेख अपने इस लेख मे किया है।

सन् 1892 में एफ० फॉसेट (F Fawcett) ने अपने एक लेख मे दक्षिण भारत के बेलारी के प्रागैतिहासिक शैल-चित्रो का परिचय दिया और सन् 1901 में अपने दूसरे लेख द्वारा उन्होने एडकल गुफा के खचित चित्रो का सचित्र विवरण प्रस्तुत किया।[3]

सन् 1902 में एच० फ्रैंक का सचित्र लेख इण्डियन एण्टीक्वेरी में प्रकाशित हुआ जिसमे उन्होंने लद्दाख के निचले भाग में प्राप्त शिलाश्रयो के शैल-चित्रो पर प्रकाश डाला जो एडकल के चित्रों के समान ही बने थे। पत्रिका के इस अंक में लेख के साथ चार चित्र-फलक प्रकाशित हुए। शेष चित्र पत्रिका के अगले अंक 1903 में पुनः प्रकाशित हुए।

1907 में बाँदा जिले मे नियुक्त आई० सी० एस० अधिकारी सी० ए० सिल्बेराड (C A Silberrad) का एक लेख प्रकाशित हुआ[4] जिसमें बाँदा क्षेत्र में काकबर्न द्वारा देखे गये स्थानो से भिन्न अनेक नये स्थलों का उल्लेख किया। उन्होंने कुरियाकुण्ड, करपटिया, मलवा, सरहट नामक स्थानों के आस-पास के शैल-चित्रों का विवरण प्रस्तुत किया और उन स्थानों का उल्लेख किया जहाँ इस प्रकार के चित्रो के होने की सूचना उन्हें प्राप्त हुई थी। अपने लेख मे उन्होंने दो रेखाचित्र भी दिये जिनमें से एक घोडो को लेकर पैदल चलते हुए आदमियों का और दूसरा बिना पहिये की बैलगाडी का था।

'इम्पीरियल गजेटियर' 1909 ई० के अंक में कार्लाइल द्वारा खोजे गये कैमूर क्षेत्र के शैल-चित्रों की पुनः समीक्षा की गयी। उन्हें नव पाषाण काल का बताया गया और 3000 वर्ष से

---

1 जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बगाल, 1883, वाल्यूम 52, पार्ट 2, न० 1, पृष्ठ 56।

2. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बगाल, 1899, पृष्ठ 89।

3. इण्डियन एण्टीक्वेरी वाल्यूम XXX 'नोट्स आन रॉक कार्विंग्स इन द एडकल केव वाइनाड' 1901 पृष्ठ 409

4. प्रोसीडिंग्स ऑफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, वाल्यूम VIII 1907

अधिक प्राचीन अनुमानित किया गया। इसी तरह मिर्जापुर के 1911 ई० के गजेटियर में यहाँ की चित्रमय गुफाओ को आदिमानव का सर्वप्राचीन निवास बताया गया है।

सन् 1910 ई० मे सी० डब्ल्यू० एण्डर्सन द्वारा सिंघनपुर के महत्त्वपूर्ण शैल-चित्रों की खोज ऐतिहासिक घटना के रूप मे हुई। एण्डर्सन महोदय ने अपने सहयोगी सी० जे० वेल्डिंग के साथ रायगढ से लेकर मंद नदी तक का सर्वेक्षण किया। इसी समय उन्हें छोटी-छोटी गुफाओं और शिलाश्रयों पर आदिकालीन चित्र अंकित मिले। उन्होने इस स्थान का कई बार सर्वेक्षण किया और वहाँ से महत्त्वपूर्ण सामग्री एकत्र किया। 1915 ई० मे पर्सी ब्राउन महोदय स्वयं उनके साथ गये और वहाँविस्तृत सर्वेक्षण किया। एण्डर्सन महोदय का शोध-लेख 'जर्नल आफ बिहार एण्ड उडीसा रिसर्च सोसाइटी' के सितम्बर 1918 के अक में 16 चित्र-फलको के साथ प्रकाशित हुआ[1] जिससे विश्वव्यापी स्तर पर सिंघनपुर के शैल-चित्रो की ओर विद्वानों एवं इतिहासकारों का ध्यान आकृष्ट हुआ।

सन् 1917 ई० में कलामर्मज्ञ पर्सी ब्राउन ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन पेण्टिग' के प्रथम सस्करण मे प्रागैतिहासिक चित्रकला को भारतीय चित्रकला के इतिहास के साथ प्रारम्भ मे सन्तुलित रीति से जोड दिया। इस अध्याय में उस समय तक प्राप्त प्रागैतिहासिक चित्रों का पूर्ण विवरण क्रमबद्ध रूप से दिया जिसमे एण्डर्सन की खोज का विशेष उल्लेख किया। उन्होने भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रो से विदेशी चित्रो की तुलना करते हुए आशा व्यक्त की कि इन चित्रों के अनुशीलन एव परिशीलन से भारतीय चित्रकला के क्रमिक विकास पर प्रकाश पड़ेगा और मानव सभ्यता की गुत्थियाँ सुलझेगी।

एण्डर्सन महोदय के लेख से भारतीय विद्वान् भी इस ओर आकृष्ट हुए। सर आशुतोष मुखर्जी के निर्देश पर पंचानन मित्र (कलकत्ता विश्वविद्यालय), श्री मनोरंजन घोष (पटना सग्रहालय) के साथ रायगढ गये। जाने से पूर्व उन्होंने एण्डर्सन महोदय से मिलकर यथेष्ट सूचना अर्जित कर ली थी। पंचानन मित्र ने इस क्षेत्र के शैल-चित्रो का विस्तृत विवरण अपनी पुस्तक 'प्रीहिस्टारिक इण्डिया' (1923) मे प्रकाशित करवाया। इस पुस्तक में उन्होंने उन चित्रो का भी विवरण दिया जो एण्डर्सन महोदय की दृष्टि में न आ सके थे। विशेष रूप से कंगारू सीन का उल्लेख किया जो आस्ट्रेलिया में पाये जाते हैं उन्होंने चित्रों की अनुकृति पर बल दिया।

उक्त पुस्तक के प्रकाशन के दो वर्ष पहले होशंगाबाद के डिप्टी कमिश्नर ने पुरातत्त्व विभाग के केन्द्रीय वृत्त के तत्कालीन सुपरिण्टेण्डेण्ट पं० हीरानन्द शास्त्री से आदमगढ क्वैरी के पास वाले चित्रमय शिलाश्रयों के निरीक्षण-परीक्षण के लिए आग्रह किया। उन्होंने श्री मनोरंजन घोष को इस कार्य हेतु 1922 में भेजा और इस प्रकार पहली बार होशगाबाद के शिला-चित्रो का अध्ययन हुआ।

1926 ई० में 'दी इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली' के दिसम्बर अंक में श्री अजित घोष का एक लेख 'कम्परेटिव सर्वे आफ इण्डियन पेण्टिग' शीर्षक से प्रकाशित हुआ जिसमें प्रागैतिहासिक चित्रों की समीक्षा की गयी है।

1931 ई० में श्री अमरनाथ दत्त की 'ए फ्यू प्रीहिस्टॉरिकल रेलिक्स एण्ड दी राक पेण्टिग आफ सिंघनपुर, रायगढ़ स्टेट, सी० पी० (इण्डिया)' पुस्तक प्रकाशित हुई। श्री दत्त 1917 मे

---

1 जर्नल आफ बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी सितम्बर 1918 वाल्यूम 4 पार्ट 3 राक पेंटिग्स आफ सिंघनपुर पृष्ठ 298 306

सिघनपुर के शैल-चित्रो को देख चुके थे और उनकी एक लेखमाला 'हितवाद' में 1927 ई० मे प्रकाशित हुई थी और इसी लेखमाला को व्यवस्थित कर उन्होंने इसे पुस्तक रूप मे प्रकाशित किया। पुस्तक में सिघनपुर के शैल-चित्रो की छायानुकृतियाँ तुलनात्मक सामग्री के साथ प्रस्तुत की गयी हैं और उन पर मुक्त मन से टिप्पणी भी की गयी है।

1932 ई० में पटना संग्रहालय के संग्रहालयाध्यक्ष राय साहब मनोरंजन घोष ने एक सचित्र अध्ययन 'राक पेण्टिग एण्ड देअर ऐण्टिक्विरीज ऑफ प्रिहिस्टॉरिक एण्ड लैटर टाइम्स' शीर्षक से प्रस्तुत किया जो 'मेम्बायर्स आफ आर्कियालॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया' के 24वें अंक मे प्रकाशित हुआ। इस शोध-लेख मे उन्होंने रायगढ़ से लेकर होशंगाबाद तक के विस्तृत क्षेत्र की प्रचुर सामग्री सयत, सतुलित और तथ्यपरक ढंग से प्रस्तुत की। उनका 28 फलको में सिघनपुर, होशगाबाद और मिर्जापुर के बहुसंख्यक शैल-चित्रो के फोटोग्राफ एव अनुकृतियो के माध्यम से तुलनात्मक एवं शोधपरक अध्ययन पुरातात्त्विक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

पचमढी क्षेत्र के शैल-चित्रो को प्रकाश मे लाने का कार्य सर्वप्रथम डॉ० जी० आर० हण्टर (Dr G R Hunter) ने किया। पचमढी भारतीय फौज का सुप्रसिद्ध आवासगृह रहा है और जब डी० एच० गार्डन लेफ्टिनेण्ट कर्नल के रूप मे यहाँ आये तो पुरातत्त्व की ओर उनकी सहज प्रवृत्ति सक्रिय हो उठी और उन्होंने अपनी पत्नी एव सहयोगियों की सहायता से यहाँ के शैल-चित्रो का विस्तृत सर्वेक्षण किया। इसी आधार पर उन्होने 'द रॉक पेण्टिग्स ऑफ महादेव हिल्स' प्रस्तुत किया। उन्होंने कई अन्य लेख भी प्रस्तुत किये जो 1939 से 1940 के मध्य प्रकाशित हुए। गार्डन अपने पूर्ववर्ती सभी शोधको की तुलना में अधिक सजग और संयमित रहे हैं।

इसके बाद अमलानन्द घोष ने पंचमढी क्षेत्र के कुछ अन्य स्थानो के चित्रों को खोज निकाला और उन्होने 1948 में 'प्रीहिस्टाटिक एक्सप्लोरेशन इन इण्डिया' शीर्षक से एक लेख प्रस्तुत किया।

हैदराबाद क्षेत्र के शैल-चित्रों का प्रथम परिचय एफ० आर० आलचिन (F R Allchin) के 'डेवलपमेण्ट आफ अर्ली कल्चर्स इन द रायचूर डिस्ट्रिक्ट' और फिर गार्डन के साथ संयुक्त रूप मे लिखे गये उस लेख से मिलता है जो 1955 ई० के 'मैन' पत्रिका में 'रॉक पेण्टिग्स एण्ड इनग्रेविंग्स इन रायचूर हैदराबाद' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

1958 में प्रागैतिहासिक चित्रों पर दो पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। पहली पुस्तक डी० एच० गार्डन की 'प्रीहिस्टॉरिकल बैकग्राउण्ड आफ इण्डियन कल्चर' थी और दूसरी पुस्तक ए० एच० ब्राड्रिक की 'प्रीहिस्टॉरिक पेंण्टिग्स' आयी। दोनो विद्वानो ने अपने-अपने तरीके से विषय-वस्तु पर सम्यक् विचार किया।

सन् 1958 में श्री विष्णुधर वाकडकर ने भीम-बैटका के प्रागैतिहासिक चित्रों का पता लगाया। इसके बाद उन्होने मध्य प्रदेश के अनेक शिलाश्रयों को खोज निकाला। श्री वाकड़कर ने इलाहाबाद जिले के चितरोहा रेलवे स्टेशन (इलाहाबाद-कटनी लाइन) के समीप दो चित्रयुक्त शिलाश्रयों का पता लगाया।[1]

इसी तरह उत्तर प्रदेश के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र चमोली (गढ़वाल) दलबन्द एवं लखुउदयार (अल्मोडा) के शिलाश्रयों से आदिमानव द्वारा अंकित चित्रों की खोज हुई।

1 इण्डियन ए रिव्यू 966-67 पृष्ठ 68

अभी हाल ही (1995 ई०) में नेवादा क्षेत्र (बिहार) से 14 चित्रित शैलाश्रयो की खोज हुई

भारतवर्ष के प्रागैतिहासिक-चित्रों के केन्द्र

लेह क्षेत्र (लद्दाख) Leh Region (Laddakh)

1 ससपोल 2 फार्क नौली

जम्मू-कश्मीर क्षेत्र Jammu-Kashmir Region

1 कारगिल 2. बुर्झाहोम 3 वैष्णो देवी

शिवालिक क्षेत्र (पंजाब) Shivalik Region (Punjab)

1 शिवालिक पहाड़

गढ़वाल क्षेत्र (उ० प्र०) Garhwal Region (U.P.)

1 चमोली

अल्मोड़ा क्षेत्र (उ० प्र०) Almora Region (U.P.)

1 दलबद 2. लखूउदयार

फतेहपुर सीकरी क्षेत्र (उ. प्र.) Fatehpur Sikri Region (U.P.)

1. फतेहपुर सीकरी (पश्चिम) 2. पटसर 3. भिन्सोर 4 भद्रौली 5 मदनपुर 6. चुडियाली 7. रसूलपुर

बरेली क्षेत्र (उ० प्र०) Bareilly Region (U.P.)

1 बरेली

इलाहाबाद क्षेत्र (उ० प्र०) Allahabad Region (U.P)

1. चन्दातरी 2 चन्दावा (कोराँव) 3 लोसकोनगढ 4 कोशकन गढ 5. लखाहार 6. खैरागढ 7 चितहोरा (इलाहाबाद-कटनी लाइन) 8. दरिया

अहिरोरा रोड (उ० प्र०) Ahirora Region (U.P.)

1 लिखुनिया 2 कोहबर 3 भल्डरिया 4 माहदरिया 5. विजयगढ़

मिर्जापुर क्षेत्र (उ० प्र०) Mirzapur Region (U.P.)

1. थर-पत्थर 2. विंढम 3. लकहट पथरी 4. संगलाना 5. सीता पथरी 6 लोहरी 7 चर्वां 8. कबरा 9 लखतर 10. लटेनी 11. खोड़हवा

सोनभद्र क्षेत्र (राबर्ट्सगंज) उ. प्र. Sonbhadra Region (U.P.)

1 पंचमुखी रोप 2 कण्डाकोट 3 विजयगढ 4 ढोकवा 5. लिखुनिया 6 घोड-मगर 7 सोरहो घाट 8 मानकलान 9. सोनभद्र

भैसोर क्षेत्र (उ० प्र०) Bhaisor Region (U.P)

1 बघई खोर 2 मुरहना पहाड़ 3. बग्गा 4 लतबेदिया 5 मुखदरी 6 बेडिया 7. चन्मन्वा 8. मुनि बाबा की खोह 9 छपरिया 10 लिखुनिया 11. भल-भलैया 12 मिर्चहिया 13. खड़ी पथरी

वाराणसी क्षेत्र (उ० प्र०) Varanas Region (U P)

1 **मैरगढ** 2 गलीशाहपुर

बांदा क्षेत्र (उ० प्र० एवं म० प्र०) Banda Region (U.P. & M.P.)

1. इतर पहाड 2. मर्कडी 3 कालिन्जर फार्ट 4. सरहट 5 चित्रकूट 7. करपटिया 8. मझावन 9 अमवा 10. उलदन 11. कुरियाकुण्ड 12 13 अबारकन 14. बिजौर 15 पथरी कोटा 16. पचम नगर 17 बरगढ

रीवां-सतना क्षेत्र (म० प्र०) Riwa-Satna Region (M.P.)

1. हनुमना 2 गड्डी 3 भैसडा 4 कन्दो 5 कार्परिया 6 7 कुसियारघाट 8. वेतस कुमार 9. दिलीघाट

छतरपुर-पन्ना क्षेत्र (म. प्र.) Chhatarpur—Panna Region (M.P.)

1 देवरा (विजयवार तहसील) 2. पाण्डवन बरात्र 3 लाल पुतरिया 4 कुण्ड 5 मझपहाड़ 6 तपकनिया 7 हाथी दौला 8. पुतरिहाऊ पहाडी पाथर 10 कल्याणपुर बिलाडी 11 जटा शकर 12. नवगावाँ 13 बिजौर

मोहना क्षेत्र (म० प्र०) Mohana Region (M.P)

1. ककाली माता टीकला 2 चोरपुरा

शिवपुरी क्षेत्र (म० प्र०) Shivapuri Region (M.P.)

1 जलप्रपात 2 अभयारण्य 3 आमझरी 4. महादेव

पहाड़गढ़ क्षेत्र (म० प्र०) Pahargarh Region (M P.)

1 आमझीर नाला 2 छप्रेटा 3 कोलेया 4. परेवा 5. नरेरा 6 भदेकड़ छत्र नाला 8 लिखी छाज

रामगढ़ (सरगुजा) क्षेत्र (म०प्र०) Ramgarh Region (M.P.)

1. रामगढ़

सागर क्षेत्र (म० प्र०) Sagar Region (M.P.)

1. रामगढा 2 ग्वारी 3 गौरदांत 4 मुण्डी 5. भैराखो 6 आब 7 आबचन्द दक्षिण 8 बरोदा 9. पिपरिया शेखपुर-शिवगृह 10 11 गीतापुर 12. मैहर 13 गुर्जापहाड़ 14 रतनगढ़ 15 नयविली 16 17 उदैपुरा 18 बीलाधाटी 19 चितौली 20. रनवीर

रेहली क्षेत्र (म०प्र०) Rehali Region (M.P.)

1 गीतापुर 2. मगरिया 3. सागर गड्ढा

हीरापुर क्षेत्र (म० प्र०) Hirapur Region (M.P.)

1. बुंदेला बाबा की गुफा

रूपनाथ क्षेत्र (म० प्र०) Roopnath Region (M.P.)

1. सुहास 2 अमरगढ़ 3. हर्तुलेवा 4 अमगवाँ

राहतगढ़ क्षेत्र (म० प्र०) Rahatgarh Region (M.P.)

1 राहतगढ़ किला 2. गुर्जादहाड़

दमोह क्षेत्र (म० प्र०) Damoh Region (M P)

1 फतेहगढ

दतिया क्षेत्र (म० प्र०) Datiya Region (M.P.)

1 दरबा 2 बदौनी

ग्वालियर क्षेत्र (म० प्र०) Gwalior Region (M.P.)

1 दौलतपुर 2 भाऊ साहब की समाधि 3 ग्वालियर पश्चिम 4 गुप्तेश्वर

रामपुरा क्षेत्र (म० प्र०) Rampura Region (M.P.)

1 रामपुरा 2. केवड़ा कुण्ड 3 चौरासीगढ़ 4 केदारेश्वर 5 कुणा

भानपुरा क्षेत्र (म० प्र०) Bhanpura Region (M.P.)

1. सीता खडी 2 कनीरिया कुण्ड 3 इंदरगढ 4 बिल्ली खो 5 सीता खो 6 गेब साहब 7 राम कुण्ड 8 रामगढ 9 मोड़ी पूर्व 10 मोडी उत्तर 11 रेवालकी 12. कवला उत्तर 13 कवला दक्षिण 14 सुजानपुरा 15 मालासेरी 16 खिलचीपुरा 17 गोलम्बा नाला 18 गांधी सागर-3 19 गाधी सागर-6 20 चतुर्भुजनाथ 21 चीवर नाला 22. ताखाजी 23 हिंगलाजगढ 24 हरिगढ 25 चवरिया देह 26 नरसिंह झर 27 दातला 28 ऐरिया 29. नहारसिंगी

कुकड़ेश्वर क्षेत्र (म० प्र०) Kukareshwar Region (M.P.)

1 नाताजी

रतनगढ़ क्षेत्र (म० प्र०) Ratangarh Region (M.P.)

1 गोराबाबाजी 2 रतनगढ़ किला 3 जीरन उ० प्र० डीकेन

जावद क्षेत्र (म० प्र०) Javad Region (M.P.)

1. सुखानन्द पश्चिम 2 सुखानन्द उत्तर

जाट क्षेत्र (म० प्र०) Jat Region (M.P.)

1. ग्वालियर किला 2 जाट किला 3 केवडाकुण्ड 4 सीतापुर

दीवानगंज क्षेत्र (म० प्र०) Diwanganj Region (M.P.)

1 सगोना 2. हलाला 3 महुवा खेडा 4 सतधारा 5 खेजड़ा 6 जमुनिया 7. कयामपुर 8. नाहरखेडा 9. कुलाइया 10. बरजोरपुर 11. दीवानगंज 12. अम्बाडी 13. भदभदाघाट 14. गीदगढ

नरसिंहगढ़ क्षेत्र (म० प्र०) Narsingh Region (M.P.)

1 पार्वती तट 2 कोटरा बिहार 3 वाली टील 4 चिडिया टील 5 भँवर 6 महादेव 7 हिंगलाज माता 8 भैंसारोल 9 काक शिला

बेरसिया क्षेत्र (म० प्र०) Bersia Region (M.P.)

1 पंचमढ़ी 2 पिपलिया जुन्नार देव 3 अहमदपुर 4 हुललू मठ

उदयपुर क्षेत्र (म० प्र०) Udaipur Region (M.P.)

1. उदयपुर (पहाड़ी) पूर्व

नरवर क्षेत्र (म० प्र०) Narvar Region (M.P)

1 पुतरी करार 2 नरवर उत्तर

रायसेन क्षेत्र (म० प्र०) Raisen Region (M.P.)

1 हाथी टोल (दक्षिण, पश्चिम) 2 गड़रिया मामा 3 गोविन्दपुरा 4 हरिपुरा 5 घटला 6 घाट (दक्षिण, पूर्व, पश्चिम) 7 रतनपुर बूढ़ा 8 रामछज्जा 9. महादेव पानी 10 चुड़ैलन की दाँत 11 आमखो 12 इमलाता 13 रायसेन 14 अम्बा 15 दीवानगंज 16 घाट पिपलिया 17 हिरनखेड़ा 18 कनखेरा कलाँ 19 सबई कुल्हाडिया 20 मुस्कानाबाद 21. नागोरी 22 नरखेड़ा 23 रतनपुर 24 सतधारा 25. सतकुण्डा 26 गोपालपुर 27 बरखेड़ा इत्यादि।

पनगवाँ क्षेत्र (म० प्र०) Pangawna Region (M.P.)

1 अली 2 पनगवाँ

खरवई क्षेत्र (म० प्र०) Kharvai Region (M.P.)

1. खरवई पूर्व 2. खरवई पश्चिम 3. खरवई दक्षिण 4 महादेव गुफा 5 सतकुण्डा 6 बिलखरिया

भोपाल क्षेत्र (म० प्र०) Bhopal Region (M.P.)

1 मनवाभान उत्तर 2 मनवाभान दक्षिण 3 मनवाभान पश्चिम 4 लाल घाटी शिव मंदिर 5 मेडिकल कालेज घाट 6. शहद कराड़ 7. भदभदा 8 धरमपुरी 9 श्यामला पहाडी दक्षिण 10 श्यामला पहाडी पश्चिम 11 श्यामला पहाड़ी उत्तर

राजाबाँधा क्षेत्र (म० प्र०) Rajabandha Region (M.P.)

1 डिगडिगा 2 राजाबाँधा 3 बोधाखो 4 फिरंगी चबूतरा 5 गणेश घाटी 6 लाल घाटी

चील दाँत क्षेत्र (म० प्र०) Cheeldant Region (M.P.)

1. दोण्डि दाँत 2 चील दाँत 3 कथोटिया 4 कोटा कराड 5 लाडी बाइं

भीम बैठका क्षेत्र (म० प्र०) Bhimbaithaka Region (M.P.)

1. मुनि बाबा की खोह (जोन्द्रा) भीम VII 2. महादेव झिरी-भीम VI B 3 गौतमपुरा (उत्तर-पश्चिम) VI A 4. गौतमपुरा (उत्तर-पूर्व) V F 5. गौतमपुरा (पूर्व) V E 6 गौतमपुरा (दक्षिण) V D 7. लाखा ज्वार पश्चिम V A 8. लाखा ज्वार V B 9 लाखा ज्वार V C 10 लाखा ज्वार IV A 11 लाखा ज्वार IV B 12. लाखा ज्वार IV C 13. लाखा ज्वार IV D 14 लाखा ज्वार IV E 15. भीमबैठका III A 16 भीम-बैठका III B 17. भीमबैठका III C 18 भीमबैठका III D 19 भीमबैठका III E 20. भीमबैठका III F 21 भीमबैठका III G 22. पण्डापुर-विनायका II A 23 पण्डापुर-विनायका II B 24 पण्डापुर-विनायका II C 25 पण्डापुर-विनायका II D 26. पण्डापुर-विनायका II E 27 पण्डापुर-विनायका II F 28 पण्डापुर-विनायका II G 29 पण्डापुर-विनायका II H 30 विनायका-कारीतलाई I A 31. विनायका-कारीतलाई I B

जावरा क्षेत्र (म० प्र०) Javara Region (M.P.)

1. बाकिया 2. इमलावा कराड़ 3 लीलझिरी 4 बाघराज 5. जावरा पूर्व 6 जावरा उत्तर 7 जावरा पश्चिम 8. बागवानी

कोलार घाटी क्षेत्र (म० प्र०) Kolar Ghati Region (M.P.)

1 महादेव 2 इमलाना 3 महादेव कोलार 4 पण्डार की कराड

गिन्नोरगढ़ क्षेत्र (म० प्र०) Ginnorgarh Region (M.P.)

1 गन्नोरगढ़ किला 2 केसलवारा घाट 3 देलावाडी 4 नहार खोरा 5 चूना पानी 6 सेमरी कोटकू

सलकनपुर क्षेत्र (म० प्र०) Salkanpur Region (M.P.)

1. बोरी 2 सलकनपुर पश्चिम 3. सलकनपुर पूर्व

सारूमारू क्षेत्र (म० प्र०) Sarumaru Region (M.P.)

1 सारू मारू 2 मऊ 3 तलपुरा 4 उचाखेड़ा 5 खान दावद की कोठी 6 जोशीपुर 7 वँया की पहाडी 8 पानगुराडिया 9 पीली करद

बुदनी होशगाबाद क्षेत्र Budni Hoshangabad Region

1 आदमगढ 2. बजारीमाता 3 जोशीपुर 4 बड़ी दाँत 5 छोटी दाँत

खटपुरा क्षेत्र (म० प्र०) Khatpura Region (M.P.)

1 बाघझरी 2. डोटा 3 शाहगज घाट

अकोला क्षेत्र (म० प्र०) Akola Region (M P.)

1 पनझर 2 अमरगढ 3 नीलझरी 4 आमझरी

चिकलोद क्षेत्र (म० प्र०) Chiklod Region (M.P.)

1. तलेडी 2 हरिपुरा 3 उग्दन 4 मारूटोला 5 पहाड खेड़ी 6 लाडी 7 चमरिया 8 चिकलोद पश्चिम 9 चिकलोद दक्षिण 10 भूरी टेकरी 11. डोनावाला 11 बिनजो

भोजपुर क्षेत्र (म० प्र०) Bhojpur Region (M.P.)

1 चचारे वाली टोल 2 मोतिया काफ 3 इमलिया 4 भोजपुर 5 माताजी

साँची क्षेत्र (म० प्र०) Sanchi Region (M.P.)

1 साँची 2 नागोरी 3 माची 4. घाट पीपल्या मुरेल ।

विदिशा क्षेत्र (म० प्र०) Vidisha Region (M.P.)

1. उदयगिरि 2 नीम खेड़ा 3 बाँस खेडा 4 अहमद खेडा 5 गोदर मऊ

राधोगढ़ क्षेत्र Radhogarh Region

1. राधोगढ़ किला

गुना क्षेत्र (म० प्र०) Guna Region (M.P.)

1. गोबन 2 ननोद

पूर्व निमाड़ क्षेत्र (म० प्र०) Nemad (Eastern) Region (M.P.)

1. चण्डीगढ 2. घाटक 3. बिजापुरा

सिवनी मालवा क्षेत्र (म० प्र०) Sivani Malva Region (M.P.)

1 बीररानी 2 बूढीमाई

बेतूल क्षेत्र (म० प्र०) Betoo Region (M P)

(12 मील पूर्व एक स्थान)

चुर्णागुण्डी क्षेत्र Churnagundi Region

1 चूर्नागुण्डी 2. घनियार खाल्

पंचमढ़ी क्षेत्र (म० प्र०) Panchmadhi Region (M.P.)

1 बाजार गुफा 2. निम्बु भोज 3 महादेव 4 महादेव (दक्षिण) 5 डोरोथी द्वीप 6 माण्टेरोजा 7 अप्सरा विहार 8 जम्बू द्वीप 9 रजत प्रपात 10 शिरोच्छेदी गुफा 11. मोरो देव 12 माण्डा देव 13 बनिया बेरी 14 बडा महादेव 15 मेथ्यू द्वीप 16 सोनभद्र 17 लश्करिया 18 झालाई 19. इमली खो 20 बी-नाला 21 चित्रलेखा

बोरी क्षेत्र (म० प्र०) Bori Region (M P.)

1 बोरी 2. काजर

तामिया क्षेत्र (म० प्र०) Tamiya Region (M.P.)

1 तामिया 2. सोनभद्र

छिन्दवाड़ा क्षेत्र (म० प्र०) Chhindvada Region (M.P.)

1 ममिया 2. घाट

नरसिहपुर क्षेत्र (म० प्र०) Narsinghpur Region (M.P.)

1 बरमान घाट 2 बरमान घाट उत्तरी पहाडी 3 उमरिया उत्तर 4 सकाला घाट 5 मृगननाथ का टोला 6 छिन्दवाडा घाट 7 बिजौरी

जबलपुर क्षेत्र (म० प्र०) Jabalpur Region (M.P)

1. मदन महल 2. गट्टा खेड़ी 3 झीझारी

कटनी क्षेत्र (म० प्र०) Katni Region (M.P.)

1 हनुमन उत्तर 2. हनुमान दक्षिण

डोंगरगढ़ क्षेत्र Dongargarh Region

1. डोंगरगढ

जशपुर क्षेत्र Jashpur Region

1. जशपुर पूर्व

बस्तर क्षेत्र (म० प्र०) Bastar Region (M.P.)

1 गुपान्सर

बिहार क्षेत्र (बिहार) Bihar Region (Bihar)

1 नवादा 2 शाहाबाद 3 चक्रधरपुर 4 बेला 5 सुदामा 6. लोमश 7. रामाश्रय 8. विश्वझोपड़ी 9 गोपी 10 चाण्डील

कन्यादह क्षेत्र (राजकोट जिला, राजस्थान) Kanyadah Region (Rajsthan)

1 कन्यादह 2. कपिलधारा 3. कामधात 4 गरेडा महादेव 5. गेपनाथ 6 नहार सिगीमाता 7. चम्बु दाँत

दर्रा क्षेत्र (राजस्थान) Darra Region (Rajsthan)

1 दर्रा घाट 2 कालाजी की कुई 3 टपनिया महादेव 4 आमझिरी नाला

कोटा क्षेत्र (राजस्थान) Kota Region (Rajsthan)

1 अधर शिला 2. प्रताप सागर 3 भैंसोरगढ़ 4 चामली नाला 5 प्रताप सागर घाटी 6 हरिश्चन्द्र बाँध 7 जावरा कलाँ 8 रावत भाटा 9 कुशलगढ 10 नगर डूँगर

गगरोण क्षेत्र (राजस्थान) Gagaron Region (Rajsthan)

1 गगरोण संगम 2 कालीसिंध घाटी 3 राजपुरा 4 मण्डावर 5 पवाँसा 6 बोरदा 7 रत्ता देवी 8. कोटरा 9. करब की खाई

भानपुरा Bhanpura Region

1 इंदरगढ 2 बिल्ली खो 3 झीता खो 4 सीता खड़ी 5 कनीरिया कुण्ड 6 गेब साहब 7 राम कुण्ड 8. रामगढ 9 मोडी पूर्व 10 मोडी उत्तर 11 चतुर्भुज नाथ 12 चीवर नाला 13 तारबाजी 14 हिंगलाजगढ़ 15 हरिगढ़ 16 चवरिया देह 17. नरसिंह झर 18 दौंतला 19 ऐरिया 20 नहार सिंगी 21. रेवालकी 22 कवला उत्तर 23 कवला दक्षिण 24 सुजानपुरा 25 माला सेरी 26. खिलचीपुरा 27 गोलम्बा नाला 28. गांधी सागर-3 29 गांधी सागर-6

छोटी सावड़ी क्षेत्र (राजस्थान) Chhoti Savadi Region (Rajsthan)

1 भँवर माता 2. महादेव

चित्तौड़ क्षेत्र (राजस्थान) Chittaur Region (Rajsthan)

1. किला पूर्व 2. किला दक्षिण 3 भैरा का खेडा 4. पंचडल

अजमेर क्षेत्र (राजस्थान) Ajmer Region (Rajsthan)

1. अजमेर पश्चिम पहाडी 2. मुनि की गुफा 3. पुष्कर रोड

आबू क्षेत्र (राजस्थान) Abu Region (Rajsthan)

1 टॉड रॉक 2. आबू पश्चिम

इडर क्षेत्र (गुजरात) Edar Region (Gujrat)

1. इडर

पचमहल क्षेत्र (गुजरात) Panch Mahal Region (Gujrat)

1. सेहराटलू 2. तारसंग 3. रैना

सावरकन्या क्षेत्र (गुजरात) Savar Kanya Region (Gujrat)

1 गम्भीरपुर 2 उडेर 3. लुतोदा 4 सतवाडा 5 रिबिया 6 चेलवाड़ा 7 सगतल्ला 8 नालू 9. सन्तरनपुर 10 पंचमहल

चाँदा क्षेत्र (महाराष्ट्र) Chanda Region (Maharastra)

1. रामगिरि 2. चादा नदी सेतु

उड़ीसा क्षेत्र (उड़ीसा) Orissa Region (Orissa)

1 सुन्दरगढ 2 चक्रधरपुर 3 घाटशिला 4 विक्रम खोल 5 पाखन पथक पाथेर

बादामी क्षेत्र (कर्नाटक) Badami Region (Karnatak)

1. बादामी किला 2 बादामी दक्षिण-पूर्व 3 मालगती 4. तालपूर्व
5 राम गुडीवार 6 सीतल फड़ी 7 तटकोटी

पट्टदकल क्षेत्र (कर्नाटक) Pattadakal Region (Karnatak)

1 तिमुप गुड्डू 2 अरेगुड्डा 3. हिरेगुड्डा

बेल्लारी क्षेत्र (कर्नाटक) Bellary Region (Karnatak)

1 बेल्लारी 2. कुपगल्लू 3. टेक्कल कोटा 4 संगनकल्लू

कुरनूल क्षेत्र (आन्ध्र प्रदेश) Kurnool Region (A.P.)

1 बेतम चर्ला 2 मुचर्ला 3 चिन्तामानी गवी 4 पेड्डा परवल्बडडी गवी
5 कनवमडकल्लबुग्गा 6. ऋट्ट माता 7 किरेगुड्डा 8 हेनेगल गल्गी 9. हसन रोड
10. एरामलाई 11 सिडुलागवलू

चित्रदुर्ग क्षेत्र (कर्नाटक) Chitradurga Region (Karnatak)

1 चित्रदुर्ग 2 जेट्टिया 3. रामेश्वर 4. हर्लापुर 5. मलापुर 6. नारायण पेठ 7. मन्वी

रायचुर क्षेत्र (कर्नाटक) Rauchur Region (Karnatak)

1 रायचुर 2. कुरगुड्ड

अडोनी क्षेत्र (आन्ध्र प्रदेश) Adoni Region (A.P.)

1. अडोनी 2 बलचकर 3 ओडीकड्डा

तिरुपति क्षेत्र (आन्ध्र प्रदेश) Tirupati Region (A.P.)

1. तिरुपति 2 रेशायल्ली 3. खोबा

वारंगल क्षेत्र (आन्ध्र प्रदेश) Warangal Region (A.P.)

1 वारंगल 2 काजीपेर 3. हसन पर्टी

तमिलनाडु क्षेत्र Tamilnadu Region

1 बालटुर 2 मलपेट्टी 3 बलया रोड 4 गुडियापट्टम

उत्तरी केरल क्षेत्र North Keral Region

1. एडक्कल

भारतवर्ष में उन सभी क्षेत्रो मे चित्रित शैलाश्रय मिलते है जहाँ पर प्राकृतिक रूप से निर्मित शैलाश्रय उपलब्ध हैं। इस प्रकार से विन्ध्य मालाओं का सम्पूर्ण क्षेत्र सतपुड़ा, अरावली तथा दक्षिण भारत के पर्वतीय क्षेत्र जहाँ पर मानव रहता था अथवा विचरण करता था उन सभी स्थलों पर उसके द्वारा निर्मित चित्र उपलब्ध होते हैं।

प्रस्तुत विवरण में मात्र स्थल-विशेष का निर्देश किया गया है। एक एक-स्थल पर चित्रित शैलाश्रयों का समूह मिलता है जिनकी सख्या अलग-अलग है। सभी का विस्तृत विवरण देना अभी सम्भव नही है क्योंकि शैलाश्रयों का गणना का कार्य अभी भी पूर्ण नहीं हुआ है



मिर्जापुर क्षेत्र के शैल-चित्र

भारतवर्ष मे प्रागैतिहासिक चित्रो की सर्वप्रथम खोज मिर्जापुर क्षेत्र मे हुई है। आर्चीबल कार्लाइल तथा जॉन काकबर्न ने सन् 1880 मे इसी क्षेत्र के कैमूर (कैमोर) पहाडियो से प्रागैतिहासिक चित्रो को खोज निकाला था। इन लोगो ने यहाँ के चित्रो का उल्लेख बहुत संक्षिप्त रूप मे किया है। काकबर्न ने अपने लेख मे भल्डरिया, लोहरी और लिखुनिया इन तीन स्थानो को समाविष्ट किया है। उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि मिर्जापुर, चुनार, पभोसा एव चित्रकूट आदि स्थानों पर भी उन्होने गुफा चित्र देखे हैं। उनके कथनानुसार सर्वश्रेष्ठ चित्राकन कैमूर की दक्षिणी श्रेणी, जो सोन नदी पर झुकी हुई है, के शिलाश्रय में हुआ है। गुफाओ के समीप प्राप्त होनेवाले पाषाणास्त्रो का भी उन्होने उल्लेख किया है।

मिर्जापुर क्षेत्र के प्रागैतिहासिक चित्रों का कई स्थानों पर उल्लेख है। इम्पीरियल गजेटियर (1909) में कार्लाइल के शोध का विवरण देते हुए यहाँ के शैल-चित्रों को नवपाषाण काल का अनुमानित किया जो कम-से-कम 3000 वर्ष पूर्व के बताये गये हैं। मिर्जापुर के डिस्ट्रिक्ट गजेटियर में मिर्जापुर के इतिहास का उल्लेख करते हुए यहाँ पर प्राप्त होनेवाली चित्रमय गुफाओ को सर्वप्राचीन मानव निवास-स्थल बताया गया है।

राय साहब श्री मनोरजन घोष ने मिर्जापुर के प्रागैतिहासिक चित्रो के नये क्षेत्र का पता लगाया। उन्होने छातु ग्राम के समीप वाली लिखुनिया से अपना सर्वेक्षण प्रारम्भ कर विजयगढ तक के ही शैल-चित्रो का अध्ययन प्रस्तुत किया जिसमे लिखुनिया, कोहबर आदि के चित्रों को खोज निकाला और बहुत-से चित्रो की अनुकृति करवाया। इस खोज में काकबर्न वाला क्षेत्र नही था।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डॉ० राधाकान्त वर्मा (सम्प्रति ए० पी० एस० विश्वविद्यालय रीवा के प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष) ने मिर्जापुर के पाषण-युगीन संस्कृतियो पर प्रस्तुत अपने शोध-प्रबन्ध मे यहाँ के प्रागैतिहासिक चित्रो का पहली बार व्यवस्थित एव सचित्र परिचय दिया।

सन् 1967 में डॉ० जगदीश गुप्त ने अपनी पुस्तक 'प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला' मे भारतवर्ष के प्रागैतिहासिक चित्रो का सचित्र विवरण प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ में उन्होंने मिर्जापुर के शैल-चित्रों के खोज का सम्पूर्ण विवरण दिया है। उन्होंने यहाँ के स्थानो का स्वयं सर्वेक्षण किया तथा उसके बारे में अनेक स्थान पर अपने विचार प्रस्तुत किये है।

इसके बाद उत्तर प्रदेश के पुरातत्त्व विभाग द्वारा मिर्जापुर जिले के शिलाश्रयों का सर्वेक्षण किया गया। जिन स्थानों पर शिलाश्रय पाये गये उनमें ढोलकिया पहाड़, जटवा पहाड़, चिरहिया पहाड और सामदेवी का पहाड (अहिरौरा) क्षेत्र मुख्य हैं। अहरौरा से आठ किलो मीटर दूर बैरामपुर स्थान है। उसी के पास सामदेवी पहाड़ के शिलाश्रय में अनेक शैल-चित्र प्राप्त हुए हैं जिनमें दौडते हुए जानवर, पशु, पक्षी, सूर्य चतुर्भुजाकार टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। यही पर एक बैल का चित्र है तथा एक पशु के शिकार का चित्र है जिसे धनुष द्वारा छोड़े गये बरछे के समान तीर से आहत किया गया है। ये चित्र लाल गेरू के रंग से चित्रित किये गये हैं।

मिर्जापुर के संयुक्त क्षेत्र में अनेक प्रागैतिहासिक शिलाश्रयों एवं गुफाओं को खोजा गया है जहाँ से शैल-चित्र प्राप्त हुए हैं। मिर्जापुर के इस संयुक्त क्षेत्र को तीन भागो में विभक्त किया जा सकता है

. **सोनभद्र (जिला) क्षेत्र**—पंचमुखी रोप, कण्डाकोट, लिखुनिया, भसौली, ढोकवा, र, सोरहोघाट, मानकलान।

. **मिर्जापुर क्षेत्र**—थर-पत्थर, विंढम, लकहट पथरी, संगलाना, सीतापथरी, लोहरी, चवॉ, लखतर, लुटेनी, खोड़हवा।

अहिरौरा रोड—लिखुनिया, कोहबर, भल्डरिया, महडरिया, विजयगढ़।

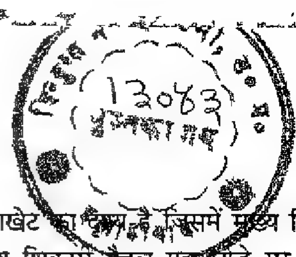
पर्युक्त क्षेत्रो मे एक सौ से अधिक शिलाश्रय तथा गुफाएँ प्राप्त हुई है जिनमे आदि मानव त्रकला के उत्कृष्ट प्रमाण सुरक्षित हैं। कडाकोट पहाड़ के समीप लिखुनिया गुफा में सांभर खेट का दृश्य है जिसमे शिकारी के हाथ में भाले को काँटेदार चित्रित किया गया है। यह प्रस्तरयुगीन भाले का एक रूप है। यहीं पर बारहसिंगे के आखेट के दो दृश्य भी गहरे कत्थई रग से चित्रित है। पशु चित्रण मे ज्यामितीय आपूरण भी मिलता है। यहीं छत के बीच अंकित शिकारी के हाथ मे ढाल एव भाला है जो भैंसे का सामना कर रहा है। उसी स्थान पर दो ऐसे भी चित्र अंकित हैं जिनमे शिकारी रस्सी के फदे के सहारे शिकार करते हुए दर्शाये गये हैं। बडे पक्षी के आखेट का दृश्य भी महत्त्वपूर्ण



ं अलंकरणयुक्त एक पशु का चित्र है जो कलात्मक है। दो आदि मानव परस्पर लडते र व्यक्ति जाते हुए, माता-शिशु एवं लोकनृत्य का दृश्य आदि मानव की सराहनीय कि हैं। इसी क्षेत्र के सोरहोघाट जानेवाले मार्ग पर एक विशाल शिलाश्रय की छत पर गे के आखेट का दृश्य न्यूनतम रेखाओं मे अंकित है, यहीं गतिशील हाथी का चित्र है जो लग आकार का है।

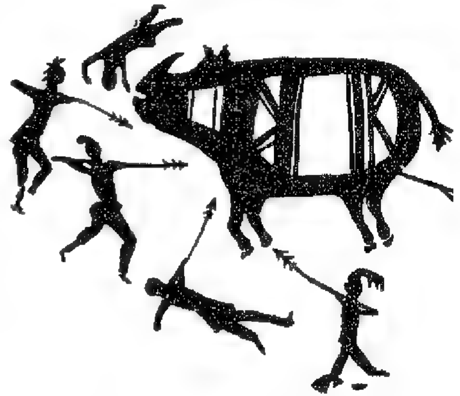
गरई और भल्डरिया नदी के संगम से भल्डरिया नदी की ओर तीन मील दूर एक शिलाश्रय से आखेट का एक दृश्य प्राप्त होता है जिसमे शिकारी भाले से बारहसिंगों पर प्रहार कर रहे हैं। शिकार का पीछा करते हुए कुत्तों को भी अंकित किया गया है। यही के एक शिलाश्रय से गेरुए रंग में अंकित घायल सुअर का सुप्रसिद्ध चित्र है जिसमे घायल पशु की पीडा मुखर हो उठी है





प्रागैतिहासिक काल

छातु ग्राम के समीप लिखुनिया-1 मे हाथी के साथ आखेट का दृश्य है जिसमें मुख्य शि हाथी पर सवार है और आगे एक जंगली हाथी है। अन्य शिकारी पैदल-एक घोड़े पर तलवार, तीर-धनुष आदि लिये चल रहे है। साथ में शिकारी कुत्ता भी है। यह चित्र प्रस्तर यु बाद का लगता है। इसी के पास कोहबर की गुफा मे एक धनुर्धर तीन पशुओं को आह गर्व से खड़ा है। यहीं पर बडे पक्षियो के पकड़ने का एक दृश्य भी अंकित है। दो प्रतिद्वन्द्वी आपस में लड़ते हुए चित्रित किया गया है। अन्य बहुत-से चित्र इन गुफाओं में स्थान-स्थान प्राप्त होते हैं जिनसे प्रागैतिहासिक मानव के कार्य-व्यापार पर प्रकाश पड़ता है।



विजयगढ दुर्ग के समीप घोडमंगर गुफा में गैंडे के शिकार का दृश्य अकित है जिसमे गैंडे ने एक शिकारी को अपने सींग से आगे की ओर उछाल दिया है। अन्य शिकारी लकड़ी एवं पत्थर के योग से बने प्रस्तर-युगीन भाले से गैंडे पर प्रहार कर रहे हैं। यहाँ की गुफा मे अन्य बहुत-सी आकृतियाँ प्राप्त होती हैं जिनमें तीन आदमियो को लाल, पीले तथा सफेद रंगों में चित्रित किया गया है। यहाँ सुअर, गैंडा, बारहसिगा तथा हिरन आदि पशुओं को भी चित्रित गया है।

बसौली ग्राम (जिला सोनभद्र) से कुछ दूर ढोकवा महारानी के एक शिलाश्रय की छ साही के आखेट का दृश्य है। इसी क्षेत्र के रौप के मुख्य शिलाश्रय मे पक्षी के आखेट का दृ जो ज्यामितीय आकारों में निर्मित हैं।

लोहरी शिलाश्रय में बाघ का सामना करते हुए एक साहसी आदमी जलती मशाल से करता हुआ चित्रित है। बाघ की मुद्रा आक्रामक न होकर पालतू है।

मिर्जापुर क्षेत्र से प्राप्त होनेवाले प्रागैतिहासिक चित्रों से पूर्वी देशों की प्राचीन सभ्यत क्रमिक विकास पर प्रकाश पडता है। यहाँ अनेक क्षेत्रो मे गुहा-गृही मानव के निवास का लगा है जहाँ उनके द्वारा निर्मित चित्र सँजोये हुए हैं। इस क्षेत्र मे अधिकांश चित्र गेरू, हि कोयले या सफेद दुधिया रंग से बनाये गये हैं। मिर्जापुर के एक पिकनिक स्पाट विण्ढम के शिलाश्रयों में प्रागैतिहासिक चित्र अंकित हैं।

मिर्जापुर क्षेत्र के शिला-चित्रो की प्रथम खोज के 115 वर्ष पूरे हो चुके हैं। शोधार्थियो ने इस क्षेत्र के बहुत-से नवीन शिला-चित्रो को खोज निकाला है और न जाने अभी भी प्रकृति के अंचल में छिपे होंगे क्योंकि यहीं से नहीं अन्य अनेक भागों से नित खोजों के समाचार प्राप्त होते रहते हैं जिनसे आदि मानव के क्रिया-कलापो, रहन-सहन, व्यापारों तथा उनकी प्रगति की गति का बोध होता रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस ओर और ध्यान देने की है इस क्षेत्र में ससार के मानचित्र में अपने को सिद्ध करने के लिए जहाँ एक ओर खोजी प्रवृत्ति के की है वहीं दूसरी

इन शैल-चित्रो की सुरक्षा की व्यवस्था भी करनी होगी जिससे ये अचानक काल-कवलित न हो जायँ। हमे देखना होगा कि काकबर्न तथा कार्लाइल द्वारा देखे हुए चित्रो में से आज कितने बच गये हैं और जो बचे हैं वे आधुनिक सभ्यता की मार से कितने दिन और बच सकते हैं।

इलाहाबाद क्षेत्र के शैल-चित्र

सबसे पहले काकबर्न महोदय ने इलाहाबाद के खैरागढ़ परगना के दक्षिण भाग के शैल-चित्रो की सूचना दी थी। इसके बाद बहुत दिनों तक इस क्षेत्र मे कोई खोज नही हुई।

वाकडकर महोदय ने इलाहाबाद जिले के चितरोहा रेलवे स्टेशन (इलाहाबाद-कटनी लाइन) के समीप दो चित्रयुक्त शिलाश्रयों का पता लगाया।[1] इसके पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रो० जी० आर० शर्मा ने इलाहाबाद से 34 कि० मी० दूर दक्षिण-पश्चिम कोराँव (मेजा तहसील) के पास चन्दातरी, चन्दावा, दरिया, कोशकनगढ़ और लखाहार स्थानो से शैल-चित्र एवं प्रागैतिहासिक महत्त्व के पाषाणास्त्रो को खोज निकाला।[2] यहाँ के शिलाश्रयो के रँगे हुए चित्रो में नृत्यरत मानव आकृतियाँ, बाघ, जगली सुअर, नीलगाय, हाथी, घोड़े, हिरन और कई तरह के प्रतीक चिह्नो का अंकन प्रभावशाली है।

उत्तर प्रदेश के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र के शैल-चित्र

कुमायूँ के क्षेत्रो में सर्वप्रथम लखूउदियार स्थान से शैल-चित्र प्राप्त हुए है। यह स्थान अल्मोडा से 21 कि० मी० उत्तर-पूर्व स्थित है। लखूउदियार का अर्थ एक लाख गुफा होता है और सचमुच यहाँ कई सौ गुफाएँ प्रकाश मे आयी हैं। यह क्षेत्र सुएल नदी के ढलान पर है। यहाँ नृत्य करती हुई बहुत-सी मानव आकृतियाँ पायी गयी हैं। इसके अतिरिक्त काँवर ढोनेवाले मनुष्य, टोकरी लिये हुए मनुष्य, बकरी के समान पशु तथा आलेखन प्राप्त हुए हैं। अधिकाश चित्र गहरे लाल रंग से बनाये गये हैं लेकिन ये चित्र धूमिल पड़ गये हैं।[3]

यहीं सुएल नदी के किनारे अल्मोड़ा से बीस कि० मी० दूर दलबन्द गाँव के पास दो शिलाश्रय पाये गये हैं।[4] इन शिलाश्रयो में जानवर एवं मनुष्य की आकृतियाँ अंकित हैं। इस तरह के शैल-चित्र पहली बार देखे गये हैं। मानव आकृतियाँ पतली छड़ी की भाँति अंकित की गयी हैं। एक स्थान पर एक मनुष्य पत्थर छू रहा है। दूसरे स्थान पर दो व्यक्ति मृत पशु को घसीट रहे हैं।

अलखनन्दा नदी के दाहिने किनारे पर चमोली (गढवाल) से 8 कि०मी० उत्तर-पश्चिम दिशा में एक शिलाश्रय को गढवाल विश्वविद्यालय के प्रो० के० जी० नौटियाल ने खोज निकाला है। यह शिलाश्रय 10 मीटर ऊँचा है। इन शैल-चित्रों में भी मानवाकृतियाँ छड़ी के आकार की बनायी गयी हैं जो गहरे लाल रग से बनी हैं। इनमें दो मानव आकृतियाँ बड़े आकार में बनी है जो पशु एव मानव समूह के साथ खड़ी हैं। पशुओं में हिरन एव लोमडी का आकार मिलता है। इस तरह के चित्र-युक्त शिलाश्रय गढ़वाल क्षेत्र में पहली बार पाये गये हैं।

---

1 इण्डियन आर्क्योलॉजी, ए रिव्यू ; 1966-67, पृ० 68।
2 इण्डियन आर्क्योलॉजी, ए रिव्यू , 1969-70, पृ० 37।
3 'सम न्यूली डिस्कवर्ड पेण्टेड रॉक शेल्टर्स इन कुमायूँ रीजन', यशोधर मठपाल, आर्क्योलॉजिकल स्टडीज़, भा० क० भवन, 1986।
4 कुमायूँ के शैल-चित्र 'डी० पी० अग्रवाल एम० जी० जोशी' मैन एण्ड एन्वायरमेण्ट, वाल्यूम-11

सिघनपुर (रायगढ़) के शैल-चित्र

सिघनपुर के महत्त्वपूर्ण शैल-चित्रो की सर्वप्रथम खोज सन् 1910 ई० मे एण्डर्सन महोदय ने किया। अपने सहयोगी सी० जे० वेल्डिग के साथ रायगढ़ से माँद नदी तक सर्वेक्षण कार्य करते हुए उन्हें छोटी-छोटी गुफाओ और शिलाश्रयो में प्रागैतिहासिक चित्र अंकित दिखायी दिये। उन्होने इस स्थान का कई बार सर्वेक्षण किया और वहाँ से महत्त्वपूर्ण सामग्री एकत्रित की। सी० डब्ल्यू० एण्डर्सन महोदय का शोध-लेख 'जर्नल ऑफ बिहार एण्ड उडीसा रिसर्च सोसाइटी' के सितम्बर 1918 के अक मे 16 चित्र-फलको के साथ प्रकाशित हुआ।

गवर्नमेण्ट कालेज ऑफ आर्ट एण्ड क्राफ्ट, कलकत्ता के प्राचार्य पर्सी ब्राउन सन् 1915 ई० मे एण्डर्सन महोदय के साथ सिघनपुर के शैल-चित्रो को देखने गये। उन्होंने अपनी पुस्तक 'इण्डियन पेण्टिग' के प्रथम संस्करण (1917 ई०) मे प्रागैतिहासिक चित्रकला को भारतीय चित्रकला के इतिहास के साथ प्रारम्भ मे ही संतुलित रूप से जोड दिया। 'प्रारम्भिक युग' शीर्षक प्रथम अध्याय के अन्तर्गत उन्होंने उस समय तक प्राप्त प्रागैतिहासिक चित्रो का पूर्ण विवरण क्रमबद्ध रूप से दिया। इस प्रकार यह विषय चित्रकला के इतिहास का अभिन्न अंग बन गया।

एण्डर्सन महोदय के लेख से भारतीय विद्वान् भी इस ओर आकृष्ट हुए। सर आशुतोष मुखर्जी के निर्देश पर कलकत्ता विश्वविद्यालय के श्री पंचानन मित्र एव पटना सग्रहालय के श्री मनोरंजन घोष सिघनपुर गये। प्रो० पचानन मित्र ने एण्डर्सन द्वारा देखे गये चित्रों के अतिरिक्त अन्य चित्रो का विस्तृत विवरण अपनी पुस्तक 'प्रीहिस्टॉरिक इण्डिया' (1923 ई०) मे प्रस्तुत किया।

इसके बाद श्री अमरनाथ दत्त की पुस्तक 'ए फ्यू प्रीहिस्टॉरिकल रेलिक्स एण्ड द राक पेण्टिग ऑफ सिघनपुर, रायगढ स्टेट, सी० पी० (इण्डिया)' सन् 1931 ई० मे प्रकाशित हुई जिसमे उन्होंने व्यवस्थित रूप से सिघनपुर के शैल-चित्रों का सचित्र विवरण प्रस्तुत किया। इसके बाद कई प्राच्य-विदो ने यहाँ आकर कार्य किया और कबरा पहाड आदि के नये चित्रो को खोज निकाला। सन् 1967 मे डॉ० जगदीश गुप्त ने अपनी पुस्तक 'प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला' मे इस क्षेत्र के चित्रों पर पुन: प्रकाश डाला।

उपर्युक्त सभी विद्वानो ने यहाँ के सुविख्यात शैल-चित्रों का इतना विशद वर्णन प्रस्तुत किया है कि जो इन स्थानों पर नही जा सका है वह भी इनकी स्थिति एवं चित्रो के विषय में बहुत-कुछ अनुमान लगा सकता है।

सिघनपुर चावरथल पर्वत शृंखला के तल पर बसा एक गाँव है जो मध्यप्रदेश के रायगढ रियासत के छोटी माँद नदी के पूर्व की ओर स्थित है। यह गाँव नहरपाली रेलवे स्टेशन से लगभग 5 कि० मी० दूर स्थित है। शैलचित्र पहाडी के ऊपर की ओर स्थित शिलाश्रयों में प्राप्त होते हैं। यहीं पास मे दो गुफाएँ भी हैं जिनमे चित्र खोजे गये परन्तु दिखायी नही पडे। सुविख्यात प्रधान शिलाश्रय इन्ही गुफाओं के पास हैं जो त्रिभुजात्मक है। इसके दायें-बाये पार्श्व लगभग 35 फीट हैं तथा प्रवेश-द्वार 60 फीट से ऊँचा है। यह स्थान गुफा से ज्यादा शिलाश्रय ही प्रतीत होता है। इस शिलाश्रय के दोनो पार्श्वों पर चित्रांकन मिलता है।

सिघनपुर शिलाश्रय में विशालकाय महिष के आखेट का समूहाकन अत्यधिक प्राचीन माना जाता है। इसमे आखेटक डंडे अथवा प्रस्तर भाले का प्रयोग करते हुए दिखाया गया है। पास ही में जगली सुअर के आखेट का दृश्य भी है जो सजीव है इस दृश्य को सर्वप्रथम

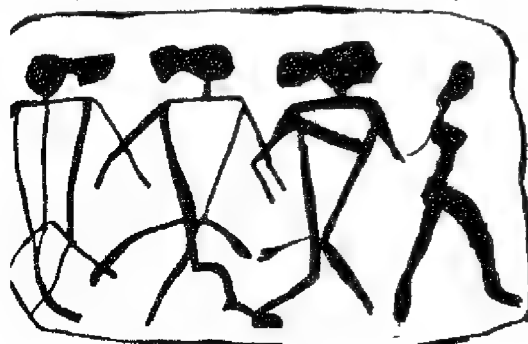
एण्डर्सन द्वारा लक्षित किया गया था तथा बाद मे प्राय. सभी ने इन आकृतियों को अपने लख अथवा पुस्तकों के साथ प्रकाशित किया। एक दूसरे रोचक दृश्य मे एक मानव आकृति एक बडे



पक्षी को पकडे हुए है जिसके पीछे एक सर्प जैसी आकृति है। दत्त महोदय ने इसे नग्न स्त्री और ग्लिप्टोन (Glyptodon) नामक अप्राप्य पशु बताया है। तीसरी आकृति को पूँछ के सहारे खडा हुआ सर्प बताया है। एक अन्य स्थान पर पशु एव मानवाकृतियो का अकन दिखायी पड़ता है जिसमे बारहसिगे का चित्रण स्पष्ट है।

सिंघनपुर के शैलाश्रय के एक स्थान पर मत्स्य-कन्या (Mermaid) का अंकन दिखायी पडता है जिसे कुछ लोग शैलीबद्ध मानवाकृति ही मानते है। सबसे ऊपर वाले प्रमुख शिलाश्रय मे कपिमानव (Ape-man) का चित्र मिलता है जो मनुष्य के आदिम अवस्था को व्यक्त करता है। यहीं गतिशील मानवाकृतियाँ दिखायी पडती है जिनमे ज्यामितीय तत्त्व द्रष्टव्य है। यहाँ अनेक प्रतीकात्मक एवं अन्य आकृतियाँ भी चित्रित है जिन्हे मनोरंजन घोष ने अपने मोनोग्राफ मे प्रकाशित किया है।

रायगढ क्षेत्र में सिंघनपुर के बाद कबरा पहाड दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान है जो रायगढ नगर से लगभग 15 कि॰ मी॰ दूर मजरापाली ग्राम के निकट स्थित है। यहाँ शिलाश्रय चितकबरी सफेद चट्टान के निचले भाग में है। पत्थर के इसी कबरेपन के कारण इसे कबरा पहाड़ कहा जाता है। यहाँ विशाल शिलाश्रय मे शिकार दृश्य का चित्रांकन बडा सहज एवं स्वाभाविक है। अनेक पशु एव मानवाकृतियों का अकन भी यहाँ दिखायी पड़ता है। एक दृश्य मे चीते के शिकार का मनोरंजक दृश्य है जो लाल गेरू से चित्रित है। यहीं लाल गेरू के रंग से पूरित वराह का चित्र है जो अपने रूप-विन्यास में अद्भुत है। यही पर पुरातन छिपकली जाति के जीवो का अकन भी दिखायी पड़ता है। शिलाश्रय की दीवार पर अकित एक घेरे में चार गतिशील मानव आकृतियो



का रेखाकन बडा मोहक है। ये आकृतियाँ एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए नृत्यरत है। यहीं पर कुछ विचित्र प्रकार के चिह्न आलिखित मिलते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक प्रागैतिहासिक चित्र मिलते हैं जो आदि मानव के जीवन एवं उनके कार्य-व्यापार पर प्रकाश डालते हैं।

रायगढ़ क्षेत्र मे खैरपुर, करमागढ़, नवागढ तथा बौतालदा आदि स्थानों पर भी शैल-चित्र प्राप्त हुए हैं और बहुत-से क्षेत्र अभी भी अछूते हैं। इस क्षेत्र की विशेष सम्भावनाएँ हैं। सम्भव है कुछ नये शिलाश्रय अथवा गुफाएँ प्रकाश मे आयें जहाँ अन्य प्रागैतिहासिक चित्र मिलने की सम्भावनाएँ दिखायी पडती हैं। क्योंकि यह क्षेत्र वन्य प्रदेश है जहाँ छोटी छोटी पहाडियाँ अवस्थित हैं जिनमें आदि मानव के निवास स्थल सहज ही खोजे जा सकते हैं

होशंगाबाद (आदमगढ़) के शैल-चित्र

भारतवर्ष में प्रागैतिहासिक चित्रित शैलाश्रय अधिकांश रूप में मध्यप्रदेश में ही पाये गये हैं। यह क्षेत्र भूतात्त्विक गोडवानालैण्ड का प्रमुख भाग है जो इस पृथ्वी का अत्यन्त प्राचीन स्थल माना जाता है। मध्यप्रदेश मे पंचमढी से लगभग 75 कि० मी० दूर नर्मदा नदी के किनारे होशंगाबाद स्थित है। इस नगर से 5 कि० मी० दूर एक छोटी-सी पहाड़ी है जिसे आदमगढ़ कहते हैं। इसी पहाडी के ऊपरी भाग मे एक दर्जन से अधिक शृखलाबद्ध विशाल शिलाश्रय पाये जाते हैं जहाँ आदिम प्रकृति के चित्र पाये गये है। यहाँ के शिलाश्रय प्राकृतिक हैं और कभी आदि मानव के शरण-स्थल रहे होंगे।

1921 ई० में यहाँ के डिप्टी कमिश्नर होशगाबाद की सूचना एव आग्रह पर केन्द्रीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के सुपरिण्टेण्डेण्ट पं० हीरानन्द शास्त्री ने श्री मनोरजन घोष को होशंगाबाद के शिलाश्रयों के सर्वेक्षण के लिए प्रेरित किया। श्री मनोरंजन घोष 1922 मे वहाँ गये और इस प्रकार होशंगाबाद (आदमगढ) के प्रागैतिहासिक चित्रो का ज्ञान हुआ।

आदमगढ़ शिलाश्रय नं० 10 से एक महामहिष का चित्र प्राप्त हुआ है जो दोहरी बाह्य रेखा द्वारा चित्रित किया गया है और इसे भरा नहीं गया है। यह विशाल चित्र 8 फीट लम्बा है। महिष के चित्र में उसकी आँख भी बनायी गयी है। इस चित्र को पूर्व मध्य पाषाणकाल का माना जा सकता है। इसी काल का एक दूसरा चित्र विशाल हाथी का है जो 4 फीट लम्बा है। यहीं पर बहुचर्चित एवं सुप्रसिद्ध 'जिराफ ग्रुप' का चित्र है। भारत के किसी अन्य भाग में जिराफ का चित्र नहीं मिलता। क्या कभी यहाँ जिराफ पाये जाते थे ? इस सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा ऊहापोह है। चित्र के आगे वाला पशु जिराफ से बहुत साम्य रखता है। उसके पीछे जिस पशु को अंकित किया गया है और उस पर एक शिकारी सवार है वह भी जिराफ से बहुत-कुछ साम्य रखता है। कुछ लोग इसे लम्बे गर्दन वाला घोडा भी कहते हैं। सवार को शस्त्र फेंकते हुए दिखाया गया है। नीचे एक योद्धा अस्त्र-शस्त्र अपने पीठ पर लिये चलते हुए दिखाया गया है। ऊपर एक शिकारी शिकार का पीछा करते हुए चित्रित है।



शिलाश्रय नम्बर 10 के दाहिने निचले भाग मे चार धनुर्धर आखेटकों का अंकन दिखायी पडता है जो शिकारोपरान्त उल्लास से नृत्य कर रहे हैं। प्रत्येक के बायें हाथ में धनुष तथा दायें हाथ मे दो-दो तीर हैं परन्तु आगे वाले व्यक्ति के हाथ में एक ही तीर है। इस तरह यह आभास होता है कि अगले व्यक्ति ने ही अपने एक तीर से पशु वध किया होगा। आहार प्राप्ति की खुशी में वे चारों उल्लास से नृत्य कर रहे हैं। यहीं निचले भाग मे गेरुए रंग में एक शिकारी को भाला लिये हुए पेड की डाल पर चित्रित किया गया है। उसके भाले का फल नीचे की ओर है जिससे व्यंजित होता है कि वह पेड़ पर चढकर शिकार कर रहा है। यहीं पर एक महिष का चित्र भी है पास ही में अनेक योद्धाओं के चित्र हैं जो ढाल तथा अन्य अस्त्र लिये हुए हैं अश्वारोही



शिकारी के दृश्य भी अंकित है। यहाँ कई स्तर में चित्रकारी की गयी है। कुछ चित्र पीले रंग से बने हैं जबकि शेष चित्र गेरू से बने है।

प्रमुख शिलाश्रय पर जंगली पशु की आकृति चित्रित है जो पिछले पैर की ओर से महिष तथा आगे से जंगली सुअर जैसा प्रतीत होता है। शिलाश्रय नं० 2 पर ऊँचे सींग वाले भैंसे का चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसका शरीर खड़ी धारियों से आपूरित है। सींगो की ऊँचाई सिंधु घाटी के सीलों पर बने पशु की याद दिलाता है। शिलाश्रय नं० 4 पर गहरी लाल रेखाओं में एक विचित्र मानवाकृति के नीचे विशालकाय मयूर अंकित है। चित्र सरल रेखाओं मे रोचक है। यहीं योद्धाओं का चित्र भी अंकित है जिनकी कमर मे तलवार बँधा है तथा हाथ मे डंडा जैसा कोई अस्त्र है। चित्र प्रभावशाली है।

शिलाश्रय नम्बर 6 पर मटमैले रंग में एक धनुर्धर का चित्र है जिसके केश खुले हैं तथा कटि पर बहुत अल्प वस्त्र है जो उड़ रहे है। यहीं सफेद वर्ण मे अनेक चित्र बने हैं । लाल रंग मे एक घुड़सवार भी चित्रित है।

आदमगढ के अन्य शिलाश्रयो मे भी वन्यजीवो और उनके शिकारियो के चित्र मिलते है। कुछ शिकारियो को घोड़े पर सवार दिखाया गया है जिनकी प्राचीनता असंदिग्ध है।

भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा होशंगाबाद क्षेत्र के इन शिलाश्रयो के नीचे भूमि मे खुदाई कर प्रस्तरयुगीन सामग्री प्राप्त की गयी है जिनसे यहाँ पर शरण लेने वाले आदि मानव के अनेक रोचक तथ्य प्रकाश में आये हैं।

आर० बी० जोशी और एम० डी० खरे को होशंगाबाद के आदमगढ़ शिलाश्रय से उत्तर पुरापाषाण काल से पूर्व की सामग्री प्राप्त हुई है। यहाँ मध्य पाषाणकाल का अवशेष भी प्राप्त हुआ है। आदमगढ से जो अवशेष प्राप्त हुए है उनके आधार पर उनकी तिथि 5500 ई० पूर्व रखी गयी है।

पंचमढ़ी क्षेत्र के शैल-चित्र

पंचमढी (मध्य प्रदेश) क्षेत्र की महादेव पर्वत-मालाओ के शैल-चित्रों को प्रकाश मे लाने का प्रथम श्रेय डॉ० जी० आर० हंटर को है। उन्होंने 1932 ई० में 'कांग्रेस ऑफ दि प्री एण्ड प्रोटो हिस्टॉरिक साइन्सेज' मे दिये गये वक्तव्य मे यहाँ के शैल-चित्रों का परिचय दिया। यह स्थान भारतीय फौज के रहने का सुप्रसिद्ध आवास-गृह रहा है। जब यहाँ लेफ्टिनेण्ट कर्नल होकर आये तो उन्होंने अपनी अभिरुचि के अनुसार अपनी पत्नी एवं सहयोगियों के साथ इस क्षेत्र का विस्तृत सर्वेक्षण किया और पद्रह से अधिक शिलाश्रयों और गुफाओ की छानबीन कर अनेक शैल-चित्रो का परिचय अपने विभिन्न लेखों के द्वारा दिया। पहली विज्ञप्ति 'इण्डियन केव पेण्टिंग' के नाम से 1935 में 'आइपेक' में प्रकाशित हुई। इसके बाद अन्य लेख भी प्रकाशित हुए लेकिन इस क्षेत्र के शैल-चित्रों के बारे मे विस्तृत विवरण 'द रॉक पेण्टिंग ऑफ महादेव हिल्स' शीर्षक लेख में प्रकाशित हुआ जिसके साथ शैल-चित्रों के 51 रेखाचित्र भी दिये गये थे। इस तरह से पचमढी क्षेत्र के शैल-चित्र प्रकाश में आये।

इसके बाद अमलानन्द घोष ने पचमढी के कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण स्थलो के चित्रों को खोज निकाला जिनकी चर्चा उन्होंने अपने लेख 'प्रीहिस्टॉरिक एक्सप्लोरेशन इन इण्डिया' मे किया जो सन् 1948 में प्रकाशित हुई। इसके बाद अनेक लोगों ने यहाँ के प्रागैतिहासिक स्थलो का सर्वेक्षण किया जिसमें महादेव पर्वत के चारों ओर अवस्थित शिलाश्रयों एवं गुफाओं से अनेक नवीन चित्र खोज निकाले गये पचमढी में चित्र बाजार गुफा निम्बुभोज महादेव महादेव

दक्षिण, डोरोथी द्वीप, माण्टेरोजा, अप्सरा बिहार, जम्बूद्वीप, रजत प्रपात, शिरोच्छदी, बनिया बेरी, बडा महादेव, मेथ्यूद्वीप, लश्करिया इमलीखो, बोनाला, चित्रलेखा, मोरोदेव, मांडादेव, बोरी, तामिया सोनभद्र, झालई आदि स्थानों पर प्राप्त हुए हैं।

पंचमढ़ी में पाँच गुहाएँ पत्थरों को काटकर बनायी गयी हैं जिनके बारे में मान्यता है कि कभी ये पाण्डवों के वनवासकालीन निवास-स्थल थे। ये गुफाएँ प्राकृतिक नहीं हैं और न ही यहाँ कोई शैल-चित्र प्राप्त होते हैं। इन्ही पाँच गुफाओं के आधार पर इस स्थान का नाम 'पंचमढी' पड़ा। पंचमढ़ी पहुँचने के लिए कटनी-जबलपुर रेलवे लाइन पर इटारसी के पास पिपरिया स्टेशन पर उतरना पड़ता है तथा वहाँ से 32 मील मोटर द्वारा ऊँचाई पर चढकर यहाँ पहुँचते है। पचमढ़ी के आस-पास अनेक दुर्गम घाटियाँ, भयावह खाइयाँ और नाले है जिनमें बहुसख्यक शिलाश्रय एवं गुफाएँ मिलती हैं।

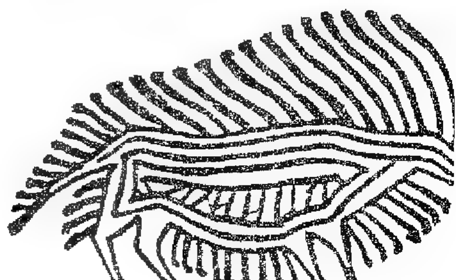
पंचमढी के गुफाओं एवं शिलाश्रयो से जो प्रागैतिहासिक चित्र प्राप्त होते हैं उनमें मुख्यरूप से पशु तथा आखेट दृश्य के अतिरिक्त आदि मानव के क्रिया-कलापों के चित्र मिलते हैं। यहाँ से नृत्य, वादन, सशस्त्र युद्ध, युग्म आदि दृश्य भी प्राप्त होते हैं। यहाँ बाजार केव मे एक बकरी का बडा चित्र है।

पुतरीलेन के अन्त में माड़ादेव गुफा की छत पर विशालकाय चीते के आखेट का दृश्य है। दो पुरुष भाले के साथ निर्भीक चीते के सामने खड़े हैं और पास ही खड़ा बालक चीते को आश्चर्य से निहार रहा है। यहीं मटमैले सफेद रग से शिकार के हाके का दृश्य अंकित है। एक अन्य दृश्य में स्त्री-पुरुष सयुक्त रूप से शिकार करते हुए दिखाये गये हैं जिनके हाथ मे आदिकालीन अस्त्र गुगली बूम रैंग (Boomerang) है। दो पशु पास ही में अंकित हैं। यहाँ अन्य बहुत-से चित्र उपलब्ध हैं।



इमली खोह शिलाश्रय मे सौ से अधिक चित्र अंकित हैं जिनमे एक दृश्य में पाँच धनुर्धर मिलकर बैल का शिकार कर रहे हैं। बैल ने एक शिकारी को अपनी सींगों से उछाल दिया है और उसके हाथ से धनुष-बाण छूट गया है। एक दूसरे दृश्य में महिष के आखेट का दृश्य है जो बहुत धूमिल है। यही पर अनेक पशु-चित्र एवं मानवाकृतियाँ भी दिखायी पड़ती हैं।

जम्बूद्वीप नाले में स्थित शिलाश्रय में काँटेदार जीव साही (Porcupine) और उसको देखता हुआ मानव मटमैले सफेद रंग में अंकित है। चित्र अपनी लयात्मक रेखाओं के कारण विशेष आकर्षक है। माण्टेरोजा के एक शिलाश्रय में अंकित आखेट दृश्य मे हठात् शेर के सामने आ जाने के कारण शिकारी हतप्रभ हो गये है। सिह के समीप एक बकरी दिखायी गयी है। लगता है बकरी सिंह को आकृष्ट करने के लिए बाँधी गयी है। डोराथीडीप (भ्रान्तनीर) गुफा में छद्‌ममुखी मानव आकृतियाँ धनुर्धर



रथवाही आकृतियाँ विशेष आकर्षक है। ज्यादातर चित्र सफेद रंग में अंकित है। कुछ मे लाल बाह्य रेखा खीची गयी है। बनियाबेरी नामक 50 गज लम्बी गुफा मे सगर्भा गाय का चित्र विशेष प्रभावशाली है। यहाँ क्रीडा-नर्तन आदि के अनेक चित्र अंकित हैं।

पंचमढ़ी के विभिन्न शैलाश्रयो तथा गुफाओ में पशु के झुण्ड-के-झुण्ड चित्रित किये गये है। इसी के साथ दैनिक जीवन के चित्र जैसे गाय को चराते हुए तथा शहद इकट्ठा करते हुए मनुष्यो का अंकन विशेष उल्लेखनीय है। विषय-वस्तु तथा अंकन-पद्धति के अनुसार यह कहा जा सकता है कि यहाँ के चित्र परवर्ती हैं। पंचमढ़ी क्षेत्र शिला-चित्रों की उपलब्धि की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

भीमबैठका के शैल-चित्र

भीमबैठका मध्य प्रदेश के विन्ध्य पर्वत श्रेणी मे स्थित है। भीमबैठका एक पहाड़ी का नाम है जो गोहरगंज तहसील और रायसेन जिले मे स्थित है। यह भोपाल से 45 कि० मी० दक्षिण-पूर्व और होशंगाबाद से 30 कि० मी० उत्तर-पश्चिम में है। भीमबैठका अर्थात् भीम के बैठने का स्थान जिसके सम्बन्ध में मान्यता है कि महाभारत काल में यहाँ कभी पांडवों ने निवास किया होगा। जो भी हो, लेकिन यह स्थान प्रागैतिहासिक मानव का वास्तविक निवास-स्थल रहा होगा इसमें कोई संदेह नहीं है।

प्रकृति के विशाल प्रांगण में प्राकृतिक गुफाओं का अद्भुत संसार भीमबैठका के दोनों ओर बसा हुआ है जिसमें कभी प्रागैतिहासिक मानव ने प्राकृतिक आपदाओ के समय शरण लिया होगा और बाद मे सुरक्षित समझ उसमे निवास करने लगा होगा। आदि मानव के ये ध्वंसावशेष आज भी उस युग की मुखर कहानी कहते हैं। भीमबैठका के दोनो ओर छोटी-बडी 600 से भी अधिक गुफाएँ हैं जो 10 कि० मी० क्षेत्र मे फैली हुई हैं। इन गुफाओ मे से लगभग 475 गुफाओ में न जाने कितने प्रागैतिहासिक चित्र बने हुए हैं जो आदि मानव की कलात्मक धरोहर हैं।

इन चित्रों का सर्वप्रथम पता लगाने का श्रेय श्री विष्णु श्रीधर वाकडकर (विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन) को है जिन्होंने 1958 ई० में इस क्षेत्र को खोज निकाला। उन्होने यहाँ की गुफाओं का वर्गीकरण एवं नामांकन अपने सहयोगियों के साथ किया। 1972 ई० मे विक्रम विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व विभाग एवं सागर विश्वविद्यालय द्वारा संयुक्त रूप से उत्खनन कार्य किया गया और इसके एक वर्ष बाद डेकन कालेज, पूना तथा लोक कला संग्रहालय, बासल (स्विटजरलैण्ड) के सहयोग से विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा व्यापक स्तर पर उत्खनन कार्य और शैल-चित्रों का सर्वेक्षण करवाया गया। गुफाओ के अन्दर तथा आस-पास के उत्खनन से भारी मात्रा मे पुरातात्त्विक अवशेष मिले हैं जिनसे पता चलता है कि यहाँ मनुष्य समूचे प्रागैतिहासिक काल में बराबर रहता रहा होगा।

यहाँ 500 वर्गमील के क्षेत्र में 30 पर्वतश्रेणियाँ अवस्थित हैं जिनकी समुद्र-तल से ऊँचाई 1365 फीट (410 मीटर) से 2000 फीट (600 मीटर) तक है। इन्हीं के ऊपर एक ट्रिगनोमेट्रिक स्टेशन स्थापित किया गया था जहाँ गत शताब्दी में सर्वेक्षण किये गये थे। इन पर्वतश्रेणियो की शिलाएँ बलुआ पत्थर की हैं। यहाँ के पत्थर बहुत ही सख्त एवं भारी हैं। इन्हीं शिलाओं में अनेक शिलाश्रय देखने को मिलते हैं। इन शिलाश्रयों की दीवारें और ऊपरी छत क्वार्टजाइट सैण्ड

स्टोन श्रेणी के हैं।[1] शिलाश्रय पहाड़ी के निचले स्थल से लेकर सबसे ऊँची चोटी तक देखने को मिलते हैं।

विद्वानों का मत है कि प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य यहाँ एक हजार वर्ष तक लगातार निवास करता रहा होगा।[2] इस युग मे मानव ने प्रस्तर उपकरण (अस्त्र-शस्त्र) बनाये जिनकी शैली एवं तकनीक मे बराबर बदलाव आता रहा। ये प्रस्तर उपकरण इन गुफाओ मे पानी एव हवा द्वारा किये गये जमाव के नीचे दब गये और सुरक्षित रह गये। लेकिन शकर तिवारी का कहना है कि यह जमाव पानी और हवा के कारण नहीं, बल्कि प्राकृतिक रूप से पत्थरो के चिटकने और टूटने से हुआ है। अन्य विद्वानो का मत है कि यह जमाव पुरातात्त्विक नहीं, बल्कि प्राकृतिक (नेचुरल इण्ट्राफारमेशनल डिपाजिट) रूप से निर्मित है। यहाँ से प्राप्त पाषाण उपकरण प्रागैतिहासिक काल को चार संस्कृतियो का प्रतिनिधित्व करते हैं।

भीमबैठका की सबसे बाद की संस्कृति को मध्यपाषाण काल कहा जा सकता है जिनके बहुत सारे उपकरण प्राप्त हुए हैं। इस संस्कृति के उपकरण अपने आकार-प्रकार तथा प्रविधि की दृष्टिकोण से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वास्तव मे यह आदि मानव के रहने के प्राचीनतम स्थल हैं जहाँ उनके द्वारा प्रयुक्त औजार एवं हथियार अपने मूल स्थान में ही दबे रह गये। प्रागैतिहासिक सस्कृति का इतना लम्बा एव अविच्छिन्न इतिहास अन्य स्थानों में दुर्लभ है।

भीमबैठका की गुफाओं एवं शिलाश्रयों मे पायी जानेवाली चित्रकला से इस स्थान का महत्त्व बहुत अधिक है। संसार मे कहीं भी एक साथ एक ही स्थान पर इतनी बडी संख्या में चित्रित गुफाएँ नहीं मिली है। यहाँ प्राप्त होनेवाले चित्रो की एक खास बात यह दिखायी पडती है कि जिन स्थानों पर प्रागैतिहासिक मानव के रहने के अवशेष अधिक मात्रा मे उपलब्ध हुए हैं उन स्थानों पर ये चित्र कम पाये गये है। इसके विपरीत जहाँ प्रागैतिहासिक अवशेष नहीं मिलते वहाँ शैल-चित्र सबसे पुराने और अधिक संख्या मे प्राप्त हुए है।[3] यह स्वाभाविक भी है क्योंकि मनुष्य की अभिव्यक्ति एकान्तिक होती है।

भीमबैठका में प्राप्त होनेवाले शैल-चित्र अधिकतर गुफाओं की दीवारों तथा उनकी छतो पर बने हुए दिखायी पड़ते हैं। ये चित्र कुछ ऐसे भी स्थानो पर दृष्टिगत होते हैं जहाँ उन्हें बनाने के लिए बैठने या खड़े रहने के लिए उचित जगह नहीं है। उस समय आदि कलाकारो नें उन्हे कैसे बनाया होगा इसकी कल्पना भी कठिन है और लोगो के अलग-अलग मत प्राप्त होते हैं। गुफाओं के छत पर बने चित्र, जो केवल पीठ के बल लेटकर ही बनाये जा सकते हैं, कैसे बनाये गये होंगे, यह कहना कठिन है। मेरा अनुमान है कि आदि मानव ने इन स्थानों पर बाहर से ले आकर लकडियाँ आदि एकत्रित की होगी। ये स्थान एक तरह से उनके भण्डार-कक्ष रहे होंगे। लकड़ियों आदि के संग्रह से एक स्वाभाविक मचान बन गया होगा। इस प्रकार उन पर चढकर या लेटकर अपने एकान्तिक क्षणों में उन्होंने इन चित्रो को बनाया होगा।

इन गुफाओं एवं शिलाश्रयो में अनेक ऐसे स्थल मिले हैं जहाँ प्रागैतिहासिक कलाकारो ने पुराने चित्रों के ऊपर ही नये चित्र बना दिये हैं। इस प्रकार पुराने चित्र दब गये हैं। अतः बहुत

---

1 रॉक आर्ट ऑफ इण्डिया, सम्पादक के० के० चक्रवर्ती 'एक्सकैवेशन ऐट भीमबैठका-ए टी- असेसमेण्ट, शकर तिवारी, पृ० 150।

2 'भीमबैठका : प्रीहिस्टारिक मैन एण्ड हिज आर्ट इन सेण्ट्रल इण्डिया' डॉ० वी० एन० मिश्र 1977 ई०।

3. मैन एण्ड एवं वाई० वाल्यूम 3 1979 राक आर्ट ऑफ पृष्ठ 2 रीजन सेण्ट्रल इण्डियस वी० एस० मिश्र

प्रयत्न करने पर ही पुराने चित्रो की रूपरेखा समझ में आती है। इस प्रकार चित्रों के कई स्तर है और कई परते हैं जिन्हे समझना, अनुकृति करना कठिन होता है लेकिन इनकी सापेक्ष प्राचीनता निर्धारित करने में सुगमता भी होती है। इस आधार पर चित्रों को कई श्रेणियों अथवा शैलियों मे विभक्त किया जा सकता है जिनके तुलनात्मक अध्ययन से इनके रचना-काल का निर्धारण बहुत-कुछ सम्भव हो सकता है। चित्रों की विषय-वस्तु तथा यहाँ से प्राप्त उत्खनन सामग्री के समग्र अध्ययन से काल-निर्धारण में सुविधा हो सकती है। रेडियो कार्बन पद्धति द्वारा तिथि का निर्धारण विदेशों मे हुआ है जिसके आधार पर यहाँ के चित्रों को भी देखा जा सकता है।

इन चित्रो का मोटे तौर पर काल-निर्धारण करने पर मध्य पाषाणकालीन चित्रो का समय हम आज से 15,000 व 5,000 वर्षों के बीच रख सकते है। इसी प्रकार ताम्र पाषाण काल के चित्रो को आज से 5,000 व 3,000 वर्ष के मध्य रख सकते हैं। इसके बाद के चित्रो को प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के अन्तर्गत रख सकते हैं जो 3,000 व 1,800 वर्ष के मध्य मे आते हैं। सबसे बाद के चित्र उत्तर ऐतिहासिक काल के कहे जा सकते हैं जो 1800 से 800 वर्ष पहले तक के माने जा सकते हैं। यहाँ से प्राप्त अधिकांश चित्र मध्य पाषाण काल के हैं। यद्यपि इन चित्रों के काल-निर्धारण का हमारे पास कोई अचूक मापदण्ड नहीं है फिर भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टिकोण से ऐसा किया जा सकता है। वैसे एक कलाकार के लिए इस सदर्भ मे ज्यादा उलझना बेमानी है।

भीमबैठका से प्राप्त होनेवाले अधिकतर चित्र लाल (इण्डियन रेड) अथवा सफेद रगो मे बने है। कही-कही हरे व पीले रगों का प्रयोग भी दिखायी पडता है जो आस-पास से प्राप्त होनेवाले खनिज रंग हैं। रग के टुकड़े को पत्थर पर घिसकर रग तैयार किये जाते थे जिन्हे जल या चरबी के माध्यम में मिलाकर चित्राकन किया गया होगा। यहाँ प्राप्त होनेवाले शैल-चित्र वर्षा, धूप, हवा आदि के कारण धूमिल पड़ गये हैं अथवा लगभग पूरी तरह से मिट गये है। कई स्थानो पर तो ये इतने फीके पड़ गये हैं कि पत्थर पर पानी डालने के बाद ही ये उभरते है। समय के लम्बे अन्तराल के कारण ये चित्र इन पत्थरो पर स्थायी हो गये हैं जिन्हें पानी से नही मिटाया जा सकता।

यहाँ प्राप्त होनेवाले चित्रो की विषय-वस्तु से मध्य पाषाणकालीन मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश पडता है। तत्कालीन पशु-जीवन तथा मनुष्य के कार्य-व्यापार के बारे में इन चित्रों द्वारा सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है। इन चित्रो मे पशुओं का प्राधान्य है क्योंकि वे आदि मानव के जीवन के प्रमुख अग थे और बहुत-कुछ इनका जीवन उनके ऊपर निर्भर था। पशुओ मे हाथी, गैंडा, भालू, जगली सुअर, चीता, जगली गाय, नीलगाय, साँभर, बैल, भैंस, बंदर एव हिरन आदि प्रमुख है। ये पशु ज्यादातर झुडो मे ही दिखायी पड़ते हैं। शिकार के दृश्यों की बहुतायत है जिनमे से कुछ चित्रो मे शिकारियो के मुख पर मुखौटा है। मानव-जीवन के क्रिया-कलापवाले चित्रों मे मानव शरीर रचना यथार्थवादी नही है और न ही बहुत कलात्मक होने का आग्रह ही दिखायी पडता है। ये चित्र आदि मानव की स्वान्त: सुखाय कृतियाँ हैं और बड़े ही सहज एव स्वाभाविक भाव से इनकी रचना हुई है। पशुओ के चित्रो मे सजीवता एवं गति का सफल अंकन हुआ है। भीमबैठका के एक दृश्य मे पशुओं के एक झुंड को ऊँची चट्टान से गिरते हुए दिखाया गया है। ऐसा लगता है कि पशुओ को खदेड़कर उन्हें ऊँची चट्टान से गिराकर शिकार की प्रथा का विकास हो चुका था।

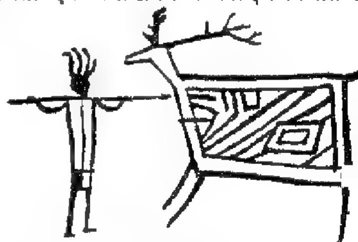
पाषाण काल के बाद चित्रों मे उतनी सहजता एवं स्वाभाविकता नही मिलती। पशु आन्तरिक भाग को भरने का प्रयास किया गया है। ज्यामितीय आकृतियाँ एवं आड़ी- लकीरों का अकन इस समय की चित्रकला की विशेषता है। ऐतिहासिक काल के चि लोककला का प्रभाव अधिक है। घुड़सवार, जुलूस, नृत्य, वाद्ययंत्रों को बजाते हुए मनु अकन विशेष प्रभावशाली है।

भीमबैठका की चित्रावली एक दीर्घकालीन लोककला की छवि प्रस्तुत करती है मानव के सरल जीवन, वनवासी रूप एव मानव मन की सहज अभिव्यक्ति मुखर हुई है।

भोपाल क्षेत्र के शैल-चित्र

भोपाल क्षेत्र नर्वदा के प्रवाह से बनी कटानों, बेतवा के तटवर्ती पथरीले भू-भाग तथ पर्वतमालाओ मे बनी प्राकृतिक गुफाओ और शैलाश्रयों से पर्याप्त समृद्ध है तथा इसका सबसे अधिक विस्तृत है। भीमबैठका को इस क्षेत्र से अलग करने के बाद भी इस क्षेत्र मे से ऐसे स्थान हैं जहाँ प्रागैतिहासिक चित्र भरपूर रूप से प्राप्त होते हैं।

भोपाल होशगाबाद सड़क पर मडीदीप से बिनेका के चारो ओर 50 कि० मी० क्षेत्र की पर्वतमालाओं में हजारो शैलाश्रय छिपे पडे हैं। प्रो० शकर तिवारी ने इमलाना से डिगडि के पूरे क्षेत्र का सर्वेक्षण किया है। इस क्षेत्र मे चमरिया, डोनावाला, जावरा, फिरगी, गणे काटोरिया, लाड़ीबाई, चीलटोग, बाखिया, बागबानी, राजाबांधा, बाघराज, इमलाना, म महादेव, डिगडिगा आदि के शैल-चित्र अपनी विविधता एव अनोखेपन के लिए विख्यात ह हैं। इन शैल-चित्रों मे शिकार के दृश्य, हाथी, शेर, जंगली भैंसा, गाय, बैल, सुअर, हिरण खरगोश, कछुआ तथा तीर-कमान एवं भाला लिये हुए मानवाकृतियाँ चित्रित हैं। यहाँ अलंकृत रूपाकन के साथ घोडे, बंदर, कुत्ते, साँप आदि का चित्रण भी दिखायी पडता है।



भोपाल के आस-पास का स्थान पहाडियों से घिरा हुआ है। बैरागढ़ पर्वतश्रेणियो शिलाश्रय पाये गये हैं जिनमें चित्र बने हैं। भोपाल नगर मे स्थित मनवामान की टेकरी गुफा मंदिर की छत पर अनेक प्रागैहासिक चित्र बने हैं जिसमे आखेट दृश्य एव पुष्पालक दृश्य है। ये चित्र हलके गहरे गेरू से बनाये गये हैं। इसी के आगे लगभग 3-4 कि० म पहाडी पर गुफानुमा शिलागार की भित्तियो पर कुछ अस्पष्ट-से चित्रांकन लक्षित किये जा हैं। बेतवा नदी के उद्गम स्थल भदभदा के शिलाश्रयों में भी अनेक पशु एव मानवाकृ चित्र अकित हैं।

भोपाल क्षेत्र के धरमपुरी के शिलाश्रय मे भी अनेक रेखाचित्र अंकित है। एक स्थ केन्द्रीय विकराल महिष पर आक्रमण करते हुए कई योद्धा चित्रित हैं। एक योद्धा काँटेदा से ऊपर से आक्रमण कर रहा है। पीछे से एक योद्धा भाले से आक्रमण कर रहा है। व धनुर्धर भी अंकित है। इस चित्र मे केन्द्रीय महिष के अतिरिक्त अन्य वन्य पशुओं का दिखायी पड़ता है।

भोपाल के निकट बैरागढ़ पर्वतश्रेणियों में कई शिलाश्रय पाये गये हैं जिनमें चित्र और पाण्डे ने भोपाल के आस पास 30 चित्रित शिलाश्रयों का पता लगा

भीमबैठका से 12 कि० मी० दक्षिण चूनापानी और चिकलौद के पास चित्रित शिलाश्रय पाये गये हैं जिनमें पशु, पशु-शिकार तथा पर्व मनाते हुए मानव आकृतियाँ चित्रित हैं।

रायसेन क्षेत्र के शैल-चित्र

मध्य प्रदेश के रायसेन जिले अनेक स्थानों से चित्रित गुफाएँ और शिलाश्रय प्राप्त होते हैं। राम छज्जा स्थान के चारों ओर रीछननाला के दक्षिणी किनारे पर अनेक शिलाश्रय हैं जिनमें चार शिलाश्रय में चित्र बने हैं। ये चित्र विभिन्न प्रकार के जानवरो के हैं जिनमे सुअर, गैंडा, हिरन, हाथी और चीता आदि देखने को मिलते हैं। कुछ पशुओं के चित्र मे गर्दन के ऊपर बड़े-बडे बाल दिखाये गये हैं तथा उनके पैर छोटे बनाये गये हैं।

रायसेन-भोपाल मार्ग पर रायसेन से 16 कि० मी० दक्षिण-पश्चिम खरवई से 50 से ऊपर चित्र-युक्त शिलाश्रय पाये गये है। सतकुण्डा मे 20 चित्रित शिलाश्रय पाये गये है। यह स्थान रायसेन से 27 कि० मी० दक्षिण-पश्चिम है। रायसेन-साँची मार्ग पर रायसेन से 7 कि० मी० दूर घटला और गोपालपुर नामक स्थान पर चित्रयुक्त शिलाश्रय पाये गये हैं।

रायसेन जिले के अम्बार स्थान मे कई चित्रित शिलाश्रयों का पता चला है। इसके अतिरिक्त, दीवनगज, घाट पिपलिया, हिरन खेडा, बट खेडा, कनखेरा-कलान, सबई कुल्हड़िया, मुस्कानाबाद, नागोरी, नरखेड़ा, रतनपुर, सतधरा, सतकुण्डा आदि स्थानों के शिलाश्रयो से आदि-मानव द्वारा निर्मित चित्र प्राप्त होते हैं जिनमें नृत्य, आखेट, युद्ध आदि के दृश्य चित्रित हैं। ये चित्र लाल गेरू और सफेद दुधिया मिट्टी से बनाये गये हैं।

मध्य प्रदेश के अन्य क्षेत्र

भारतवर्ष में अब तक 150 से अधिक क्षेत्रो में प्रागैतिहासकि चित्रो की खोज की गयी है। शैल-चित्रों की केन्द्र-सूची में बहुत-से क्षेत्रों को सयुक्त कर एक ही केन्द्र में रख दिया गया है क्योकि अलग-अलग इनकी गणना सम्भव नही हो सकी। इन सभी केन्द्रो मे आधे से अधिक क्षेत्र मध्य प्रदेश में स्थित हैं। इन क्षेत्रों की विस्तृत जानकारी देना विस्तार-भय के कारण सम्भव नहीं है फिर भी कुछ केन्द्रों की सूचना इस प्रकार है—

सीधी जिले के सोन तट के कैमूर पर्वतश्रृंखला मे माँची शैलाश्रय से अनेक चित्र प्राप्त हुए हैं। इसी जिले के बड़रम गाँव के निकट कोहबरवा घाट, बीछी गाँव के निकट धौलागिरि पर्वत के कोहबर तथा गोरा पहाड़ के कोहबर के शैलाश्रयों में घटना प्रधान चित्रण का बाहुल्य है। यहाँ बन भैंसा, तीर धनुष लिये हुए मानव, उछल-कूद करते हुए मानव समूह आदि के अकन प्राप्त होते हैं। यहाँ चौकोर, त्रिभुज तथा डमरूनुमा चिह्न भी बने हैं।

ग्वालियर से चालीस मील दक्षिण चोरपुरा (जिला शिवपुरी) के पास दस शिलाश्रय चित्रो से युक्त प्राप्त हुए हैं। वाकडकर महोदय ने लगभग 100 चित्रित शिलाश्रयों को चम्बल घाटी क्षेत्र से खोज निकाला है।

रीवाँ से 36 मील दूर ईतर पहाड़ से 10 चित्रित शिलाश्रय श्री एस० आर० राव ने खोज निकाला। यहाँ अधिकांशतः आखेट और मछली पकड़ने के दृश्य हैं। पशुओ मे जगली भैंसा, गैंडा तथा हिरन का चित्रण मुख्य है।

गुना जिला के नानोद के पास कई शिलाश्रय प्राप्त हुए हैं जहाँ सुअर, हिरन, जंगली साँड़ के आखेट का दृश्य चित्रित है। यहीं धोबन स्थान से भी कई शिलाश्रयों का पता चला है जहाँ हाथी, साँड़ तथा हिरन आदि पशुओं का चित्रण हुआ है।[1]

1. इण्डियन ... ए रिव्यू, 1975-76 पृ० 77

विदिशा जिले मे अहमदपुर स्थान के पास कई शिलाश्रयों को श्री महेश्वरी दयाल खरे ने खोज निकाला है जहाँ आखेट करते हुए तथा प्रसन्नता से नाचते-गाते मानवाकृतियो का चित्रण हुआ है। ये चित्र लाल, पीले, श्वेत तथा हरे रग से बने है। यहीं नीमखेड़ा के पास 20 चित्रयुक्त शिलाश्रय पाये गये हैं। यहाँ हिरन का शिकार, धनुर्धारी मानवाकृतियाँ तथा पशुओं का चित्रण प्राप्त होता है।[1]

रीवाँ जिले के हनुमना नामक स्थान पर 72 चित्रित शिलाश्रयो का पता चला है। यहाँ नृत्य, शिकार और पशु आकृतियों के अलावा युद्ध दृश्य भी चित्रित है।[2]

शहडोल से 30-31 कि० मी० उत्तर-पश्चिम गजबाही गॉव के निकट लिखनमाडा स्थान मे ज्यामितीय रेखाओं से घिरी कई आकृतियाँ प्राप्त हुई हैं।

बस्तर के भिजनार नामक स्थान पर 34 शिलाश्रय पाये गये हैं। सिहोरा मे तीन चित्रयुक्त शिलाश्रय पाये गये हैं।

इसी तरह बहुत-से अन्य ऐसे स्थान हैं जहाँ प्रागैतिहासिक चित्र प्राप्त होते हैं। मध्य प्रदेश इस क्षेत्र मे सबसे सम्पन्न राज्य है जहाँ शैलाश्रयों का बाहुल्य है।

आन्ध्र क्षेत्र के शैल-चित्र

आन्ध्र प्रदेश मे कर्नूल जनपद के बेतमचर्ला कस्बे के निकट मुच्चातलाचितामनु गवी और वीलासरगम की गुफाओ से प्रागैतिहासिक महत्त्व के अस्थिपजर, पत्थर के औजार तथा शैल-चित्र वाली सस्कृति का पता चला है। वीलासरगम की गुफाओ में प्राप्त हड्डी के उपकरणो और आभूषणो की पहली सूचना ब्रसफूटे ने लगभग 100 वर्ष पूर्व दी थी। इन्ही गुफ़ाओ के पास बाकल्लू से लगभग 4 कि० मी० दूर कनवमडकल्ल बग्गा के मनोरम स्थल से 1 कि० मी० दूर दुधिया रंग की गिरि शृंखलाओं मे प्रकृति निर्मित दर्जनों उथली गुफाओ मे पाषाणकालीन शैल-चित्र प्राप्त हुए हैं जिनका विवरण डॉ० यशोधर मठपाल ने 'दिनमान' के सितम्बर 1980 के अंक मे दिया है।

पश्चिम की ओर खुले एक शिलाश्रय मे गेरुए रग के ज्यामितीय आलेखन इसके छत पर बने दिखायी पडते हैं और खड़े शिलापट पर मोटी रेखाओं में बहुत सारी आकृतियाँ बनी हैं। लम्बा चोगा पहने तथा अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये एक मनुष्य की आकृति बाड के पास खडे हुए चित्रित किया गया है। तीसरे शिलाश्रय में हाँक देकर पशु को भगाते हुए तीन आदमियों का चित्र हैं। बड़ा शिकारी सिर पर सीगों का मुखौटा पहने हुए है। चौथे शिलापट पर एक विशालकाय पशु का सामना करता हुआ एक आदमी गेरुए रग से चित्रित है। एक अन्य स्थान पर तीन लहरदार रेखाओं के समीप तीन मानव उमंग मे थिरकते हुए दिखायी पडते हैं। उत्तर की ओर आगे एक अन्य शिलाश्रय में दो सुन्दर पशु आकृतियाँ प्राप्त होती हैं। एक भागती हुई गाय की ओर लपकते हुए तेंदुए का अकन बहुत ही प्रभावपूर्ण है। इसके बाद मैदानी भाग के कुछ आगे शिलाश्रय में दीर्घश्रृंगी वृषभों और हिरणो की सुन्दर आकृतियाँ बनी हुई हैं जिनके पूरे शरीर मे रग भरा गया है। यहाँ मोर तथा कुत्ते की आकृतियाँ भी अंकित हैं। इन शिलाश्रयो में लम्बे सींगो और बड़े उदर वाले भागते हुए पशु का अंकन बड़े सहज रूप में हुआ है।

---

1 इण्डियन ए रिव्यू 976 77 पृ० 58
2. इण्डियन ए रिव्यू 1978 79 पृ० 98

आन्ध्र प्रदेश मे कर्नूल, बेतमचर्ला, मुचर्ला चिन्तियानी, अडोनी, बलचकर, ओडीकड्डा तिरुपति, रेशापल्ली, खोबा, वारगल, काजीपेट, हसन पर्ती आदि स्थानो के गुफाओ और शैलाश्रयों में प्रागैतिहासिक चित्रों का पता चला है।

दक्षिण भारत मे **बेलारी** स्थान की गुफाओ मे प्रागैतिहासिक चित्र प्राप्त होते है। यहाँ शिकार का दृश्य तथा जादू के विश्वास के अनेक चिह्न अकित हैं।

इसी तरह वाईनाड के **एडकल** शैलाश्रय मे जादू विश्वास के अनेक प्रतीक अंकित किये गये हैं। यहाँ मनुष्य को सिर पर कुछ पहने हुए चित्रित किया गया है।

प्रागैतिहासिक शैल-चित्रों का महत्त्व एवं विशेषताएँ

मनुष्य जन्म से ही कलाकार है। वह किसी-न-किसी माध्यम से अपने भावो को व्यक्त करने का रास्ता तलाश कर लेता है किन्तु अन्य माध्यमो से चित्राकन का माध्यम अधिक स्थायी माध्यम है जिससे मनुष्य की उदय बेला का इतिहास लिखा गया है। सहस्रों वर्ष प्राचीन प्रागैतिहासिक काल की कलाकृतियों से यह तो प्रमाणित हो ही चुका है कि मनुष्य मे चित्रण की प्रवृत्ति उस समय से है जब वह जंगलो मे नंगा घूमा करता था तथा जगली फल-फूल या जानवरो का शिकार कर उन्हे कच्चा ही खाया करता था और अपनी क्षुधा शात करता था।

दुरूह वन्य जीवन से संघर्ष करता मानव जब कभी एकान्त गुफाओ मे शरण लेता था तो उसकी सहज मानवीय भावनाएँ उद्दीप्त हो उठती थीं और वह अभिव्यक्ति के लिए बाध्य हो उठता था। उस समय उसके पास अभिव्यक्ति का यही सरल एव सार्वजनीन माध्यम था। वह अपने गुहा-गृहों की प्राकृतिक दीवार पर प्राकृतिक रंगो से रेखांकन कर न केवल अपनी आत्मतुष्टि करता था वरन् अपनी बात को दूसरे तक पहुँचाने मे सक्षम होता था। मनुष्य अभिव्यक्ति के लिए बाध्य होता है और किसी-न-किसी रूप मे अपने भावों की अभिव्यक्ति का रास्ता तलाश लेता है। प्रागैतिहासिक मानव के लिए यह सहज माध्यम था।

मानव सभ्यता ने अब तक कितनी प्रगति की है इसका ठीक-ठीक इतिहास विश्व की आदिम कलाकृतियो को देखकर ही भलीभाँति जाना जा सकता है। मानव हृदय की चेष्टाओ और प्रकृतियों को विशद रूप में प्रकट करने के लिए मनुष्य ने जिन ललित कलाओ का सहारा लिया उनमें चित्रकला ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसलिए संसार भर मे आदिम मनुष्य या वनवासी गुहा-गृही मनुष्य के अकित चित्र मिलते हैं। इनका सिलसिला उस समय से चलता है जब वह धातुओ का व्यवहार तक न जानता था और कडे पत्थरों के अनगढ़ शस्त्रों एव औजारों से काम लेता था।

आदि मानव के क्रमिक विकास के बारे मे हमें जो कुछ जानकारी मिलती है वह उनके द्वारा बनाये गये चित्रो से या उनके द्वारा निर्मित पत्थर और धातु के औजार बनाने की कला से मिलती है। निश्चय ही ललित कला और उपयोगी कला का भेद भी यहीं से प्रारम्भ हो जाता है। जब वह स्वान्तः सुखाय आराम के क्षणो में गुफाओं अथवा शिलाश्रय की दीवारों पर चित्र बनाता था तो उसकी मनोभावों की अभिव्यक्ति होती थी और जब वह पत्थरो को औजार के रूप में गढ़ता था या उसे पात्र के रूप में तैयार करता था तो वह उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी। यही तो ललित कला और उपयोगी कला में भेद है। लेकिन ये दोनों मानव जीवन के अभिन्न अग के रूप में हमेशा से साथ साथ रहे हैं

प्रागैतिहासिक काल के इन गुहा-गृही मानव द्वारा निर्मित चित्रो को देखकर ओर उनका अध्ययन कर हम उनके बारे में बहुत-कुछ जानने में सक्षम होते हैं। उनके कार्य-कलाप, उनकी गतिविधियों का सारा इतिहास इन्हीं चित्रो मे निहित है।

आदि मानव मूल रूप से आखेटक था और यही मानव आदिम चित्रकार भी था। वह शिकार कर अपनी उदर क्षुधा की पूर्ति करता था। अपनी शारीरिक सुरक्षा के लिए प्राकृतिक गुफाओं मे शरण लेता था। इस कार्य में अपने सजातीय स्त्री-पुरुषो का सहयोग भी उसे मिला होगा। अपनी तथा अपने से जुड़े लोगो की सुरक्षा के लिए और अधिक निरापद प्राकृतिक शरण-स्थल की खोज की होगी और वह एक छोटे समूह में वहाँ रहने लगा। पारिवारिक भावना का शुभारम्भ इन्हीं प्रकृति प्रदत्त घरों में हुई होगी। हिंसक पशुओं से अपने परिवार की सुरक्षा और उनके लिए भोजन व्यवस्था का दायित्व इस परिवार के वरिष्ठ सदस्यो ने अपने कर्तव्य के रूप मे लिया होगा। निरीह पशुओं को पालने के लिए परिवार के छोटे सदस्यों ने प्रेरित किया होगा। इस प्रकार एक कुटुम्ब की भावना के रूप में मानव सभ्यता ने जन्म लिया।

शिकार के लिए जानेवाले सदस्यो ने अन्य सदस्यों को शिकार की योजना, शिकार से प्राप्त अनुभव व उस भयानक एवं हिंस्र पशु के बारे मे चित्र बनाकर समझाया होगा और उनसे दूर रहने के लिए चेतावनी दी होगी। इस प्रकार तत्कालीन आदि मानव ने अपने विचारों एव भावनाओं को चित्र द्वारा मुखरित किया होगा।

यही चित्रकला भाषा के विकास की मूल स्रोत भी थी। आदि मानव ने अपनी भावना को व्यक्त करने के लिए चित्र बनाये यह निर्विवाद सत्य है। चित्र बनाने के बाद उसने अपने समूह के सदस्यों को एकत्रित कर उसे दिखाया और अधिक समझाने के उद्देश्य से कुछ उच्चारण किया अथवा उसके अलग-अलग भाग के लिए कुछ शब्दों (आवाज) का प्रयोग किया। उदाहरण-स्वरूप उसने एक जंगली महिष का चित्र बनाया और उसे दिखाकर 'हू' शब्द का प्रयोग किया। अब जब कभी वह 'हूँ' शब्द बोलता तो उसके परिवार के सदस्य चौकन्ने हो जाते और उनके आँख के सामने चित्रित जगली महिष का आकार नाच उठता। एक दिन उनके गुहा-गृह के बाहर 'हू' आ जाता है। परिवार के छोटे सदस्य उसे पहचान लेते हैं और वे 'हू' 'हू' चिल्ला उठते है। परिवार के वरिष्ठ सदस्य बचाव के लिए और उसके शिकार के लिए दौड पड़ते हैं। परिवार के छोटे और अशक्त सदस्य अपने दूसरे साथियों को सरल चित्र बनाकर उस 'हू' के बारे मे बताते हैं। इस प्रकार 'हू' के लिए एक चित्र-लिपि का आविष्कार हुआ। इसी प्रकार अन्य शब्दों का अर्थ बना और फिर उसकी चित्र-लिपि तैयार हुई। जहाँ तक मैं समझता हूँ भाषा और लिपि का विकास इसी प्रकार हुआ होगा।

आदि मानव द्वारा बनाये गये चित्र उनके उल्लासमय जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन चित्रो में जो सर्वाधिक महत्त्व की बात दिखायी देती है वह है उस युग का उल्लासमय जीवन। पशु-पक्षी, बाघ, शिकारी, योद्धा, कलाकार आदि में हर्ष तथा आनन्द के भाव फूट रहे हैं। मुक्त जीवन बिताने की सभी मे आकांक्षा है। सभी में स्वच्छदता, माधुर्य, मार्दव और अपरिमित स्फूर्ति दिखायी देती है। सभी अपने से बलवान् और हिंस्र पशु के आखेट से उल्लसित हैं और खुशी से नाच-गाकर झूम रहे हैं। सभी भरपेट भोजन प्राप्ति के लिए आनन्दित हैं। अपनी इस विजय पर उन्हें अपार सुख और संतोष है। यही सब भाव समस्त भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रों में परिलक्षित होते हैं

प्रागैतिहासिक काल के चित्रों में तत्कालीन जन-जीवन और संस्कृति की अनेकताओं के दर्शन होते है। ये चित्र विषय, शैली तथा सामग्री की दृष्टि से उस समय के जनजीवन और उनके कार्य-व्यापार के जीते-जागते चित्र हैं जो आदि मानव की मुखर कहानी कहते हैं और उनके क्रमिक विकास की व्याख्या करते है।

प्रागैतिहासिक चित्रो में जो प्रतीकात्मकता लक्षित होती है वह निश्चय ही उस समय के मानव के आस्था व विश्वास की कहानी कहती हैं। ज्यामितीय एवं आलंकारिक आलेखन प्राय: किसी लोक-परम्परा से जुड़े हैं जो किसी एक क्षेत्र मे विशेष 'पैटर्न' के रूप में दिखायी पड़ते हैं। जादू, टोना, टोटका आदि के प्रतीक चिह्न के रूप मे भी इनका अंकन हो सकता है। मांगल्य पूजा के चिह्न, जैसे स्वस्तिक, त्रिशूल, चक्र, त्रिकोण आदि का चित्रण इसी भाव-भूमि पर हुआ है।

आदि मानव द्वारा निर्मित चित्र यद्यपि उच्चकोटि के नहीं कहे जा सकते लेकिन मानव मन की आन्तरिक भावनाओं को व्यक्त करने मे पूर्ण रूप से सक्षम है। इन चित्रों को आज के मापदण्ड से मूल्यांकित करना उचित न होगा। ये चित्र स्वान्तःसुखाय बनाये गये हैं जिसमें स्वाभाविकता और सहजता स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। शारीरिक रचना की दृष्टि से उन्हें भोड़ा कहा जा सकता है लेकिन अल्प रेखांकन के द्वारा जो आकृतियाँ बनी हैं वे अपना परिचय बखूबी प्रस्तुत करती हैं।

इन प्रागैतिहासिक चित्रो में एक महत्त्व की बात यह दिखायी पडती है कि ये चित्र प्रारम्भिक लोक कला को उद्भीत करते है। वे उस समय के जनजीवन और उनके रीति-रिवाज, अचार-व्यवहार को सम्यक् रूप से व्यक्त करते हैं।

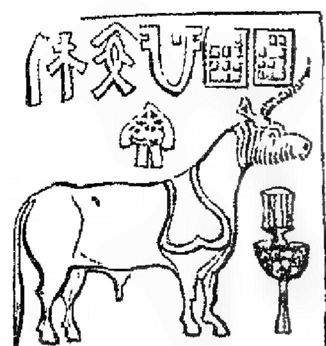
पशुओं का अकन मात्र आखेटक की दृष्टि से नही किया गया है वरन् उन्हे मानव के सहचर के रूप में भी चित्रित किया गया है। हिंस्र एव ताकतवर पशुओ का ही शिकार करते हुए दर्शाया गया है। छोटे एव दूध देनेवाले जानवर जैसे गाय, बकरी, कुत्ता, खरगोश आदि को पालतू रूप में प्रदर्शित किया गया है। मोर का चित्रांकन उसके सुन्दर रूप के कारण प्रमुखता प्राप्त किये हुए है। कुत्ते का चित्रण प्राय: शिकार मे सहायक के रूप में किया गया है।

प्रागैतिहासिक चित्रो में ऐसे पशु-पक्षियो के चित्र भी प्राप्त होते हैं जिनका अस्तित्व आज नहीं है। मध्य प्रदेश के एक शिलाश्रय से जिराफ का चित्रांकन प्राप्त हुआ हैं जो भारत महाद्वीप में उपलब्ध नहीं हैं। इसी प्रकार पशुओ की बहुत-सी ऐसी आकृतियाँ दृष्टिगत होती है जो आज के पशुओं से भिन्न हैं।

आदि मानव चित्रांकन के लिए कई तरह के रगो का उपयोग करता था। अधिकतर रंग गेरू से बनाये जाते थे जिनकी अलग-अलग रगते होती थी। खड़िया मिट्टी और कई तरह की रंगीन मिट्टी का उपयोग वे चित्र बनाने के लिए करते थे। आग जलाना सीखने के बाद वे हड्डी को जलाकर काला रंग भी बना लेते थे। लकड़ी के कोयले का प्रयोग भी कभी-कभी करते थे । बाद में स्थायित्व लाने के लिए जानवरो की चरबी मे रंग मिलाकर भी उसका प्रयोग करने लगे थे।

आदि मानव ने अल्प रेखाओं मे अपने आन्तरिक मनोभावो की सशक्त अभिव्यक्ति की है। विभिन्न आकृतियों की मुद्राओ, भाव-भंगिमाओं और उनकी गति का बाध जिस सहजता से कम-से-कम रेखाओं द्वारा प्रकट किया गया है वह बड़ा ही मनोरम एवं हृदयग्राही है।

□□



3

आद्यैतिहासिक काल
(Protohistoric Period)

ईसा से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व भारत देश मे जिस नयी सभ्यता का विकास हुआ उसे पुरातत्त्ववेत्ताओ ने 'मृत्पात्रों की सभ्यता' के नाम से अभिहित किया है। भारत मे इस सभ्यता का विस्तार लगभग दो हजार मील था। इसका देशगत विस्तार उन प्राचीन सभ्यताओ से कहीं अधिक है जो मिस्र देश मे नील नदी, तिग्रा एव उफ्रातु नामक नदियो के मैदानों मे फैली थी।

सिन्धु घाटी की कला

सिन्धु सभ्यता की कलात्मक सामग्री हमे उन वस्तुओं के रूप में उपलब्ध है जो मोहनजोदडो, हड़प्पा, लोथल, नाल, झुकर, चन्दूदडा आदि स्थानो मे खुदाई से प्राप्त हुए है। इन स्थानो में चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्य के जो अवशेष मिले हैं उनसे उस युग की महान् कला का परिचय मिलता है। दैनिक व्यवहार मे प्रयुक्त होनेवाले बर्तनों पर अलकृत चित्रकारी को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय चित्रकला कितनी अधिक समुन्नत थी और उसका कितना व्यापक प्रसार था। दैनिक जीवन मे उपयोग की सामग्री के रूप मे मिट्टी के बर्तनो में की गयी चित्रकारी इस बात को पुष्ट करते हैं। इन कलावशेषो को देखकर पता चलता है कि मानव हृदय की चेष्टाओ और प्रवृत्तियों का प्रकटीकरण कला के ही माध्यम से सम्भव है।

सिन्धु घाटी मे उत्खनन कार्य प्रारम्भ किये जाने के पूर्व समय-समय पर विचित्र प्रकार की मुहरे मिलती रही थीं। कनिघम ने 1878 में हड़प्पा टीले का पता लगाया था और उस स्थान से प्राप्त कुछ मुहरो के चित्र भी प्रकाशित करवाये थे परन्तु उस समय उस पर किसी ने विशेष ध्यान नही दिया। सन् 1921 में श्री दयाराम साहनी द्वारा हडप्पा में और सन् 1922 में पुराविद् राखालदास वन्द्योपाध्य (आर० डी० बनर्जी) द्वारा मोहेनजोदडो (मुहे-जो-दड़ो= मरे हुए का टीला) मे जो उत्खनन कार्य कराया गया उससे सिन्धुघाटी के ताम्रयुगीन सभ्यता का अस्तित्व सामने आया (यह स्थान भारत विभाजन के बाद पाकिस्तान का भाग बन गया है)। इसके बाद मार्शल एव माधो स्वरूप वत्स ने हडप्पा में लगातार कई वर्षों तक खुदाई कराकर इस बात को सिद्ध कर दिया कि अतीतकालीन भारत मे वास्तुकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला के प्रति व्यापक अभिरुचि रही है। ये अवशेष तत्कालीन भारत के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, वस्त्राभूषण एवं कलात्मक बोध और ज्ञान-विज्ञान के परिचायक हैं।

सिन्धुघाटी के उद्‌घाटन से भारतीय सभ्यता की प्राचीनता तीन सहस्र ई० पू० तक विस्तृत हो गयी और वह विश्व की प्राचीन सभ्यताओं मे से एक हो गयी। इस सभ्यता की प्राचीनता के विषय में विद्वानो का मत है कि यह अक्कादी नरेश सारगन (2350 ई० पू०) के कुछ पहले की है

सिन्धु सभ्यता का स्वरूप नागर संस्कृति की है जिसके अन्तर्गत धनी व्यापारी एवं शासक वर्ग कलानुरागी एवं सुसंस्कृत थे। यहाँ के सर्वसम्पन्न नागरिक सुख-समृद्धि से परिपूर्ण दुर्ग-विधान से युक्त इस नगर में रहते थे। यहाँ के व्यापारी दूर-दूर तक व्यापार करते थे और उनके भण्डार अन्न तथा अन्य सामग्रियों से भरे-पूरे थे। धार्मिक अनुष्ठानो एव उपदेशो के लिए पुरोहित-पाधाओं का भी एक वर्ग था। वास्तुकला और नगर-निर्माण कला में यहाँ के लोग दक्ष एवं प्रवीण थे ऐसा यहाँ के पुर-विन्यास, दुर्ग-विधान, गृह-निर्माण, मार्जन गृह तथा जलापूर्ति एवं उसके निष्कासन की समुचित व्यवस्था को देखने से मालूम पड़ता है। उनका रहन-सहन समुन्नत था तथा जीवनयापन की वस्तुओं का कोई अभाव नहीं था यह उनके दीर्घ एवं समुन्नत सभ्यता से भली-भाँति समझा जा सकता है।

सिन्धुघाटी का विस्मयकारी तथ्य यही है कि यह सभ्यता एक हजार वर्ष तक लगभग समान गति से आगे बढ़ती रही। यहाँ उत्खनन मे 9 परते मिली हैं। प्रारम्भिक परत में जो मुद्राएँ, मूर्तियाँ या कलात्मक वस्तुएँ प्राप्त हुई है वही कुछ सुधरे रूप में अन्त तक पायी गयी हैं। एक सहस्र वर्ष तक अपनी कलात्मक गरिमा एव परम्परागत संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखनेवाली इस सभ्यता के स्वरूप के अपरिवर्तनशील स्थिरता का रहस्य पुरातत्त्ववेत्ताओं और इतिहासकारो को चमत्कृत करता है।

आग से पकायी हुई मिट्टी के ईंटों से निर्मित विशाल घरो, महलों, जलकुण्डों, कुओं तथा भण्डार-गृहो को देखने से मालूम होता है कि यह सभ्यता तत्कालीन अन्य सभ्यताओं से कहीं आगे थी क्योंकि ईरान से पश्चिमी एशिया तक इस प्रकार के पके हुए ईटो का प्रयोग नही दिखायी पड़ता। ईंटों, बर्तनों तथा मूर्तियो को पकाने के लिए किस प्रकार की तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता है यह हम सहज ही अनुमान लगा सकते है। भट्टियो के बनाने, उनमें ईंधन का प्रयोग करने तथा उक्त वस्तुओं को सही आकार-प्रकार मे रखने की कुशलता को कोई कैसे नकार सकता है। निश्चय ही यह सभ्यता सभी प्रकार से सुसंस्कृत, समृद्धिशाली, प्रतिभाशाली एव कलानुरागी नागरिकों से सुसम्पन्न थी।

वास्तुकला

सिन्धु-घाटी के मोहेनजोदड़ो एवं हड़प्पा नगरों के उत्खनन एवं उनके विस्तृत अध्ययन से यह सुस्पष्ट हो गया है कि उनका निर्माण एक सुव्यवस्थित नगर योजना के अन्तर्गत किया गया था। उनकी चौडी, सीधी सडकें जो एक-दूसरे से समकोण पर आकर मिलती थी उस विस्तृत जनसंख्या और चहल-पहल को इंगित करती है जो इस नगर मे रही होंगी। नगर को ऊँचे प्राचीर (चारदीवारी) से सुरक्षित किया गया था जिसके बाहरी ओर पक्की ईंटे लगायी गयी थी। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि शायद नदियो की बाढ़ से सुरक्षा के लिए ऐसा किया गया होगा।

यहाँ पर निर्मित होनेवाले भवन सडक के किनारे बने थे जिनका मुख्य द्वार मुख्य सड़क से जुड़ी गली मे होता था। शायद मुख्य मार्ग के गर्द-गुबार से बचने के लिए भवन की यह योजना बनायी गयी होगी। प्रत्येक भवन में चार-पाँच कमरों के साथ आँगन, स्नानघर तथा कुआँ होता था। भवन में पानी के निकास के लिए पक्की नालियाँ थीं जो सडक की बड़ी नाली से जुडी होती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ के नागरिक सफाई का विशेष ध्यान रखते थे तथा उनका रहन-सहन वर्ग का था

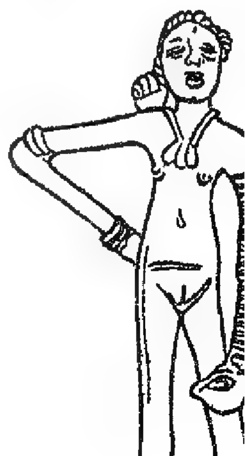
सिन्धु घाटी के विस्तृत क्षेत्र मे अन्नागार, विशाल स्नानागार, गढी और बन्दरगाह (लोथल का गोदीवाडा) आदि वास्तुकला के उत्कृष्ट उदाहरण भी दिखायी पडते हैं जिनसे इस सुसंस्कृत सभ्यता की विशिष्टताओ पर प्रकाश पडता है। मोहेनजोदडो का विशाल स्नानागार कई कक्षो का भवन था जिसके भीतर लम्बा-चौडा (12×7 मीटर) और गहरा तालाब था। नीचे जाने के लिए चोडी सीढियाँ थी तथा दो पक्तियों मे छोटे-छोटे आठ स्नान-कक्ष बने थे। लोथल का गोदीवाडा विश्व का प्राचीनतम बन्दरगाह है जहाँ से जहाज द्वारा व्यापार होता था। इससे यह भी प्रकट होता है कि इस सभ्यता का तत्कालीन विदेशी सभ्यताओं से जलमार्ग द्वारा व्यापारिक सम्बन्ध था।

मूर्तिकला



सिन्धुघाटी सभ्यता के अवशेषो मे पत्थर, धातु एव मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियाँ ढालकर अथवा तराशकर बनायी गयी है। यद्यपि इनकी सख्या कम है लेकिन जो भी प्राप्त हुई है उनसे तत्कालीन कलाकारो की दक्षता और सौन्दर्यबोध पर पर्याप्त प्रकाश पडता है।

पत्थर की मूर्तियो में सबसे महत्त्वपूर्ण मोहेनजोडो से प्राप्त योगी या पुरोहित की मूर्ति है। यह दाढी वाले पुरुष की आवक्ष प्रतिमा है। बँधे हुए बालो वाले इस मुखाकृति के माथे पर एक गोल आभूषण है और छोटी मूँछ है। उसके बाये कधे पर शाल है जिस पर त्रिफूलिया आलेखन बना हुआ है। अर्द्धनिमीलित नेत्रो वाली इस मूर्ति को कुछ विद्वान् मेसोपोटामिया का पुरोहित मानते हैं। गार्डन का अनुमान है कि इस पर सुमेरियन अथवा बेबीलोनियन प्रभाव है। इस मूर्ति के अतिरिक्त हडप्पा से प्राप्त दो मूर्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इन दोनो मूर्तियो का केवल धड़ मात्र मिला है। लाल बलुआ पत्थर पर निर्मित एक नग्न धड सीधे खडे पुरुष का है जिसका पेट कुछ बाहर निकला हुआ है किन्तु सम्पूर्ण शरीर को बडी कुशलता से उकेरा गया है। दूसरा धड एक नर्तकी का है। यद्यपि इसके हाथ-पैर छिन्न हो गये हैं किन्तु इसकी भाव-भगिमा एव गति का सहज ही अनुमान होता है। इन दोनों को देखने से यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि इस सभ्यता के नागरिक कला एव शिल्प मे निपुण थे। यहाँ पत्थर के लिग और योनि अथवा गौरीपट्ट भी प्राप्त हुए हैं जो शैव धर्म के सबसे प्राचीन प्रारूप माने गये हैं।



धातु मूर्तियो में सबसे उत्कृष्ट मूर्ति काँस्य-नर्तकी (4.5'') की है जो मोहेनजोदडो से प्राप्त हुई है। इस मूर्ति का एक हाथ कटि पर है और दूसरा हाथ नीचे लटक रहा है। यह हाथ कलाई से कन्धे तक चूडियो से भरा है जबकि कटि पर स्थित हाथ में केवल कंगन एवं केयूर है। नर्तकी ने अपने केशों को चोटी में गूँथकर पीछे लपेट रखा है। इस नारी आकृति के पैर विशेष मुद्रा मे उठे हुए है जिसे एक नृत्य भगिमा मानकर विद्वानों ने इसे नर्तकी के नाम से अभिहित किया है। नर्तकी के गले मे तीन लटकनो से युक्त एक हार है तथा उसकी कमर पर मेखला शोभायमान है । इस नर्तकी के चेहरे पर कठोरता दृष्टिगत होती है किन्तु भाव-भंगिमा सहज एव स्वाभाविक है। इसी क्षेत्र से प्राप्त काँसे की एक महिष-मूर्ति का यथार्थ निरूपण है

सिन्धुघाटी के विस्तृत क्षेत्र से कुछ अन्य छोटी-छोटी खिलौने वाली मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई है जिनमें डोरी खींचने पर बाँस पर चढ़नेवाला बन्दर, सिर हिलानेवाला बैल, पख फड़फडाने और सीटी बजानेवाले पक्षी, अपनी पूँछ उठाकर पिछले पैरों पर बैठकर कुछ कुतरती हुई गिलहरी तथा घड़ियाल आदि मूर्तियाँ शिल्पगत कौशल के सुन्दर उदाहरण हैं। कांस्य की दो पहियेवाली तीन बैलगाडियाँ भी यहाँ प्राप्त हुई हैं जिन पर आधुनिक इक्के की भाँति चँदोवा तना है।

मृण्मूर्तियाँ

सिन्धुघाटी सभ्यता के अवशेषो मे मृण्मूर्तियों का स्थान अति विशिष्ट है। मोहेनजोदडो और हड़प्पा से असंख्य छोटी-छोटी मृण्मूर्तियाँ पायी गयी हैं जिनमे मातृदेवी अथवा महीमाता की मूर्तियाँ अपनी कलात्मकता की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इन मूर्तियों का उपयोग धार्मिक अनुष्ठानो के लिए होता रहा होगा। यही कारण है कि इस सभ्यता के लोगों को



मातृपूजक माना जाता है। हाथ से बनायी गयी नारी मृण्मूर्तियाँ भारी शिरोभूषा और वस्त्राभूषणों से सुसज्जित है। इनकी कमर में घुटनों तक लम्बा स्कर्टनुमा वस्त्र है जबकि कमर का ऊपरी भाग नग्न है। गले तथा वक्ष पर लम्बे-लम्बे कई लड़ियो वाले हार तथा अन्य अलकरणो से अलकृत इनकी शिरोभूषा अत्यन्त आकर्षित करती है। कमर पर कई लडियो वाली चौडी करधनी, भुजाओ मे भुजबन्ध तथा कानो मे लटकते गोल कुण्डल विशेष रूप से दर्शनीय हैं। सभी मृण्मूर्तियो की आँखे, स्तन तथा वस्त्राभूषण चिपका-चिपकाकर बनाये गये है। यहाँ से प्राप्त मानव मूर्तियो मे पुरुषो की आकृतियाँ कम है। ऐसा अनुमान है कि सींगो से युक्त पुरुषाकृतियाँ देवताओ की हैं तथा दाढी से युक्त आकृतियाँ उपासको की हैं। मृण्मूर्तियो मे यहाँ से प्राप्त मिट्टी के खिलौनो का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है जो शायद बच्चो को खेलने के लिए बनायी गयी होंगी जिनमे बैलगाडी, बैल, चिडिया, कुत्ता, मुर्गा, बैठा हुआ पशु आदि की आकृतियाँ प्रमुख हैं। इन पशु-पक्षियो की आकृतियाँ पालतू जानवरों की-सी हैं जिससे यह प्रकट होता है कि यहाँ की सभ्यता मे ये पशु-पक्षी रच-बस गये थे तथा पशु-पालन एवं खेती उनका मुख्य उद्यम था। यहाँ से प्राप्त वृषभ की मृण्मूर्तियाँ अपनी कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध है।

उत्कीर्ण मोहरें

सिन्धु घाटी सभ्यता के विस्तृत क्षेत्र के प्राय: सभी स्थानो से हजारो मोहरे (सील) प्राप्त हुई हैं। ये मोहरे प्राय: चौकोर हैं तथा 3 सेमी और 8 सेमी मोटी है। इन सेलखडी मोहरो पर मानव, पशु-पक्षी, वृक्ष इत्यादि आकृतियाँ बनी हैं, साथ ही, किसी अज्ञात लिपि (चित्राक्षर) में कुछ लिखा भी है। कुछ विद्वानों का दावा है कि वे आशिक रूप में इस लिपि को पढ़ने में सफल हुए हैं लेकिन विभिन्न विद्वानों के अलग-अलग उद्‌वाचन के कारण अभी भी निर्णायक रूप से कुछ कहा नहीं जा सका है। कुछ लोगो का कथन है कि इन पर व्यापारियों के नाम लिखे हैं और कुछ लोग तत्कालीन राजा के नाम का उल्लेख करते हैं। जो भी हो, किन्तु कलात्मकता की दृष्टि से ये मोहरें उत्कृष्ट हैं जो एक समृद्धिशाली एवं सुसस्कृत सभ्यता की अनकथ कहानी कहने मे सक्षम हैं।

इन मोहरो पर सर्वाधिक रूप से एक शृंगी अश्व की आकृति उकेरी गयी है जिसकी एक सींग आगे की ओर निकली रहती है एक दूसरी आकृति एक विचित्र ककुद वृषभ (कूबड़ वाले

बैल) की है जिसका शरीर बैल के समान, सिर पर दो लम्बी सींग तथा मुखाकृति सामान्य बैल से कुछ अलग प्रकार की है। इसी प्रकार का एक दूसरा मुहर है जिसमें बैल की आकृति थोडी सामान्य है लेकिन मुख एवं ललाट लगभग पहले के समान हैं। एक अन्य मुहर पर एक मानव दो बाघों को पकड़े हुए अकित है। एक दूसरे मोहर पर वृक्ष की दो शाखाओ के मध्य एक आकृति खडी है जिसके शीश पर एक तिकोनी शिरोभूषा दिखायी पड रही है। उसके समक्ष बैठी आकृति पूजा-अर्चना करती-सी दीख पड रही है। इसी के पीछे एक सींग-युक्त पशु आकृति है जिसे विद्वान् बकरा मानते हैं। नीचे सात नारी आकृतियाँ खडी हैं। इस दृश्य से शक्तिपूजा या पशुबलि का सकेत मिलता है। एक अन्य मुहर पर आसन पर पलथी मारे एक त्रिमुखी मानव आकृति उत्कीर्ण है। इस सील पर हाथी, बाघ, गैंडा और महिष आदि का अंकन दिखायी पड़ता है। आसन के नीचे एक हिरन की आकृति भी है। ऊपर कुछ चित्रलिपि में लिखा है। मार्शल ने इसे पशुपति कहा जो शिव उपासना का प्रारम्भिक स्वरूप है। अन्य बहुत-सी मोहरों पर नौकाओं, स्वास्तिक प्रतीक तथा अन्य बहुत-सी आकृतियो से युक्त अकन प्राप्त हुए हैं।



मृद्भाण्डकला

उपर्युक्त कलावशेषो के साथ ही सिन्धुघाटी सभ्यता के विशाल क्षेत्र में मिट्टी के छोटे-बडे अनेक आकार-प्रकार के बर्तन तथा उनके सहस्रों टुकड़े प्राप्त हुए हैं जिनमें अनाज रखने के लिए बडे आकार के कुठिला, पानी रखने के लिए बडे मटके, सुराही, लोटा, मर्तबान, कुल्हड, कटोरी, तश्तरी, बीकर थालियाँ तथा नादे इत्यादि प्रमुख हैं। यही नहीं, यहाँ आधे इंच तक के छोटे-छोटे मिट्टी के पात्र प्राप्त हुए हैं। इन छोटे-बडे बर्तनो के ढक्कन भी बनाये जाते थे। ये बर्तन ज्यादातर चाक पर निर्मित होते थे और फिर इन्हे पकाया जाता था। बाद मे उन्हे विविध प्रकार से रँगकर इस्तेमाल किया जाता था। इन बर्तनो को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ के निवासी मृद्भाण्ड कला में पारगत थे।

चित्रकला

सिन्धु घाटी सभ्यता के अवशेषों को देखने के बाद सहज ही अनुमान होता है कि मोहेनजोदडो, हड़प्पा एवं लोथल आदि नगरों के निवासी कलात्मक प्रतिभा से सुसम्पन्न थे। चित्रकला सम्बन्धी सर्वाधिक सामग्री पकाये हुए मिट्टी के बर्तनों और उनके टुकड़ों पर चित्रित आकृतियो एव आलेखनो के रूप मे विभिन्न क्षेत्रो से प्राप्त होती है। समाधि स्थान से प्राप्त मृत्तिका पात्रों पर भी चित्रकारी पायी जाती है। अधिकाश पात्रों पर लाल रंग चढ़ाकर काले रंग से चित्रकारी की गयी है। सिन्धु घाटी के इन बर्तनो पर कई प्रकार के पेड़-पौधे, पशु-पक्षी एवं ज्यामितीय आकृतियों का चित्रण प्राप्त होता है। पेड़, पौधों में पीपल, नीम, ताड, खजूर, केला एव बाजरा आदि के पेड़ों को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। पशु-पक्षियों में हिरन, गाय, बछड़ा, बैल मोर मुर्गा मछली कछुआ आदि मुख्य है। कई स्थानों से प्राप्त मृद्भाण्ड के टुकडों पर मानव आकृति का चित्रांकन भी दिखायी पडता है

हड़प्पा से प्राप्त बर्तन के एक टुकड़े पर एक मछुहारा कंधे पर एक बह
है। बहँगी के दोनों ओर जाल लटक रहा है जिसमें शायद मछली है। एक
अंकित है। परस्पर काटती हुई रेखाओं से नदी के अंकन का बोध होता है।
भी दिखाया गया है। एक अन्य चित्रण मे हिरनी अथवा गाय अपने बच्चे
अंकित की गयी है। यहाँ बहुरंगे पात्र भी मिले हैं जिन पर लाल, हरे, काले,
से पशु-पक्षियों सहित आलेखन बने हैं।



हड़प्पा से प्राप्त मृत्तिका-पात्रों के लाल धरातल पर काले रंग से चित्रकार
त्रों के किनारों पर सितारों तथा बिन्दुओं से पृष्ठभूमि भरी गयी है तथा
छलियों को आलंकारिक रूप से चित्रित किया गया है। कहीं-कहीं बारहसिंग
या है। मयूर के पेट पर एक वृत्त बना है जिस पर मानव आकृति दिखायी ग
त्र पर एक मनुष्य भी अंकित है जिसके बाल उड रहे हैं और दोनों ओर उस
ञा है। एक गाय के पीछे कुत्ता भी चित्रित है। इसके आगे एक सींगों वाला
हर गाय के मध्य खड़ी एक मनुष्याकृति अंकित है। सम्भवतः यह दृश्य किस
गेत करता है।

चानूदडो तथा लोहुम जोदडो में भी हड़प्पायुगीन पात्र मिले हैं जिन पर क्र
काले रंग से चित्रण प्राप्त होता है। अन्य प्रायः सभी स्थानो पर चित्रित पा
स होते हैं जिन पर लाल, कत्थई अथवा काले रंग से चित्रकारी की गयी है।

कुछ स्थानों पर मिट्टी के बर्तनों पर खोदकर चित्र बनाये जाते थे। इस प्र
हेनजोदड़ो से प्राप्त बर्तन के टुकड़े पर प्राप्त हुआ है।

बर्तनो पर प्राप्त होनेवाली चित्रकारी यहाँ की लोककला के नमूने हैं जिन
त स्तर का मात्र बोध ही किया जा सकता है क्योंकि यहाँ की विकसित चि
धि काल-कलवित हो चुकी है। यहाँ की परिष्कृत कला-शैली क्या रही
ुमान केवल यहाँ से प्राप्त मोहरों द्वारा ही हो सकती है



4

शास्त्रीय काल (श्रेण्य युग)

(300 ई० पू० से 800 ई० तक)

Classical Period

भारतवर्ष मे ऐतिहासिक काल के उपलब्ध सबसे प्राचीन चित्र भित्तिचित्रों के रूप में प्राप्त होते हैं। इस काल के प्राचीनतम चित्र जोगीमारा के गुहा-मदिर मे प्राप्त होते हैं जिनको देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि चित्रकला का शास्त्रीय रूप इस काल तक आते-आते निखरने लगा था। ये भित्तिचित्र सम्पूर्ण बृहत्तर भारत में यत्र-तत्र बिखरे हुए है। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के प्रारम्भ के साथ ही चित्रकला के स्वर्ण युग का सूत्रपात हो जाता है और छठी शताब्दी तक अपने चरम सीमा पर पहुँच गया। यद्यपि इसके प्रारम्भिक काल की कृतियो का अभाव है फिर भी जोगीमारा की जो कृतियाँ उपलब्ध हैं उनसे यह बात स्वयं-सिद्ध है। इस युग की कला 'कालसिद्ध कला' है जो भारतवर्ष की प्राचीन सस्कृति एवं कला की अनुपम विरासत है।

इस समय भारतवर्ष सम्पूर्ण एशिया का सबसे समृद्धिशाली एव सुसस्कृत देश था जिसने अपने ज्ञान, विज्ञान एव कलात्मक प्रतिभा के कारण सम्पूर्ण विश्व को आलोकित कर रखा था। ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी तक चित्रकला का परिनिष्ठित रूप प्राय. सुनिश्चित हो चुका था। पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' (500 ई० पू०) में चारु (ललित) व कारु (उपयोगी) कलाओं का उल्लेख किया है। इस समय रचे गये प्राचीन ग्रन्थों से भी तत्कालीन चित्रकला की समृद्धि के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। इस युग में चित्रकला के शास्त्रीय रूप को दिग्दर्शित करनेवाले अनेक ग्रन्थो में 'ललित विस्तर' (200 ई०) 'मानसार', 'कामसूत्र', 'अग्निपुराण' तथा अन्य पुराण आदि प्रमुख है। शास्त्रीय रूप को निर्धारित करने के लिए अनेक लक्षण-ग्रन्थ लिखे गये जिनमे 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' का 'चित्रसूत्र' प्रकरण प्रमुख है। यद्यपि यह ग्रंथ 500-600 ई० के बीच का माना जाता है लेकिन इस प्रकार के लक्षण-ग्रन्थ सदियो की परम्परा के आधार पर ही लिखे जा सकते हैं इसमे कोई संदेह नहीं। इसी प्रकार 'चित्रलक्षण' आदि अनेक ग्रन्थ हैं जिनमे भारतीय कला के शास्त्रीय रूप के विधि-विधानों की सम्पूर्ण व्याख्या की गयी है जिनका पूर्ण विवेचन हम अगले अध्याय में करेंगे।

सनातन काल से चली आयी परम्पराओ का अव्याहत प्रवाह भारतवर्ष की अद्वितीय विशेषता कही जा सकती है जिसके द्वारा आज भी यह देश अपनी कला और सस्कृति को बहुत-कुछ अक्षुण्ण रख सका है। सभ्यता एव संस्कृति के अनन्त काल-प्रवाह मे अपनी पुरातनता के प्रति यह देश सदा जागरूक रहा और यही कारण है कि इस देश ने अपनी सांस्कृतिक परम्परा को बनाये रखते हुए नित नवीनता की ओर सधे हुए कदमों से आगे बढ़ा है।

गुप्त साम्राज्य मे ललित कला का पूर्ण विकास हो चुका था और उसका शास्त्रीय रूप निर्धारित हो चुका था। वास्तुकला. मूर्तिकला एव चित्रकला का सम्यक् विकास इस काल की

प्रमुख उपलब्धि कही जा सकती है। जहाँ तक चित्रकला का प्रश्न है इस समय की कलाकृतियाँ बड़ी मात्रा में विलुप्त हो गयी हैं और जो कुछ अद्यावधि अवशिष्ट हैं भी, वे प्रायः नष्ट होने की प्रक्रिया में हैं। इस युग में निर्मित होनेवाले अजन्ता गुहा-मंदिर एवं बाघ गुहा-मंदिर मे इस काल की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ देखने को मिलती हैं जो उस युग के कलाकारों के अपूर्व पाण्डित्य की परिचायक है।

इस काल मे बौद्धधर्म का प्रचार एव प्रसार प्राय. सम्पूर्ण भारतवर्ष में हो चुका था और यहाँ के बौद्ध साधु सम्पूर्ण एशिया और आस-पास के देशो में बुद्ध धर्म के प्रचार के लिए निकल चुके थे जिनके पास भाषा के रूप मे चित्रकला का सम्बल था। इसी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के सहारे वे सम्पूर्ण एशिया में छा गये। दूसरी ओर महावीर स्वामी के जैन धर्मानुयायियों ने भी कला के महत्त्व को स्वीकार किया किन्तु इनका ध्यान विशेष रूप से साहित्य रचना की ओर रहा और इन्हीं ग्रन्थों के मध्य अच्छे चित्रों का अंकन कर अपनी अभिव्यक्ति को और प्रभावशाली बना सके। इस प्रकार की न जाने कितनी पोथियाँ एव चित्रपट कब और कहाँ काल के गाल मे समा गये इसका कोई हिसाब नहीं, लेकिन उनकी यह उत्कृष्ट परम्परा बनी रही जो बाद में जैन शैली के चित्रो मे दिखायी पडती है। उस समय सनातन धर्म मे भी चित्रकला को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। सगुण उपासना ने चित्रकला एवं मूर्तिकला के उन्थान में विशेष सहायता पहुँचायी। इस धर्म के आचार्य स्वयं चित्रकार तो थे ही, उन्होंने 'चित्रदर्शन' को भक्ति का एक साधन भी माना। इस प्रकार उस समय सम्पूर्ण भारत मे कला ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था। उस समय भारतवर्ष मे चित्रकला किसी धर्म या समुदाय की विरासत नहीं थी बल्कि वह जन-जन में व्याप्त थी।

धर्म के प्रचार एव प्रसार के लिए चित्रकला का जितना सहारा बौद्ध धर्मावलम्बियों ने लिया उतना उस युग में सम्भवतः और किसी ने नहीं लिया। यही कारण है कि धर्म-प्रचारार्थ चित्रकला भी उन बौद्ध भिक्षुओ के साथ एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे भ्रमण करती रही और दूर-दराज के देशों में भी फैली । बौद्ध धर्म के व्यापक प्रसार और उनके अनुयायियो में चित्रकला प्रेम को देखकर बहुत-से विद्वानों ने इस युग की कला को 'बौद्ध कला' अथवा 'बौद्ध काल की चित्रकला' के नाम से सम्बोधित किया है लेकिन मैं इस नामकरण का कोई तर्कसगत आधार नहीं खोज पाया। यह निर्विवाद सत्य है कि इस काल में ब्राह्मण धर्म (सनातन) की अवनति हुई लेकिन यह सर्वथा लोप हो गयी ऐसा नहीं है। इसके अतिरिक्त महावीर स्वामी का जैन धर्म भी पूर्ण रूप से सक्रिय था इसमे सदेह नही। इस प्रकार इस युग की कला को किसी धर्म-विशेष से जोड़कर उसका नामकरण करना उचित नहीं प्रतीत होता।

यहाँ यह बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए जितना कार्य चित्रकला ने किया उतना ही कार्य बौद्ध धर्मानुयायियों ने चित्रकला के प्रचार एव प्रसार के लिए किया। हमारी चित्रकला को सम्पूर्ण एशिया, जापान एवं इण्डोनेशिया के क्षेत्र में जो व्यापक प्रसार मिला उसके लिए बौद्ध कलाकारों का योगदान प्रशसनीय है। उस समय समाज में इन कलाकारो को बहुत ही ऊँचा स्थान एव सम्मान प्राप्त था और वे भी साधक की भाँति निरंतर चित्र साधना में रत रहते थे।

भारतवर्ष में शास्त्रीय युग की चित्रकला की विरासत भित्तिचित्रों के रूप मे सुरक्षित है। इस प्रकार के भित्तिचित्र जोगीमारा, अजन्ता, बाघ, बदामी, सित्तलवासल, सिगीरिया (श्रीलंका), एलोरा, एलीफैण्टा, कार्ले, भज, उदयगिरी, पीपलखोरा आदि गुफाओं में उपलब्ध हैं। इस काल की सर्वप्रथम कलाकृतियाँ जो आज उपलब्ध हैं वह जोगीमारा गुहा-मंदिर की दीवारों पर चित्रित हैं यहीं से शास्त्रीय कला का सर्वप्रथम प्रामाणिक इतिहास प्रारम्भ होता है

जोगीमारा की कलाकृतियाँ

जोगीमारा गुहा-मंदिर मध्यप्रदेश की पुरानी रियासत सरगुजा क्षेत्र, जिसे रामायण काल मे 'झारखंड' तथा दसवीं सदी में 'डाडोर' कहा जाता था, के रायगढ पहाडियो पर स्थित है। जोगीमारा गुहा तक पहुँचने के मार्ग मे रामगढ का प्रसिद्ध मंदिर पडता है जो यहाँ पहाडी की चोटी पर स्थित है। यह मंदिर भुवनेश्वर शैली से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। यहाँ कई मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं जिनमे राम, लक्ष्मण और सीता की एक पत्थर पर उत्कीर्ण मूर्ति भी है।

इसके आगे ढलान से थोडा नीचे उतरकर प्राकृतिक सुरंग पार करने के पश्चात् कुछ ऊपर चढाई पर जोगीमारा, सीता बेंगड़ा, लक्ष्मण बेंगडा तथा अन्य छोटी गुहाएँ हैं। बेंगड़ा शब्द स्थानीय भाषा मे बँगले का पर्याय है। डॉ० बलोच का मत है कि सीता बेंगड़ा प्राचीन भारतीयो के ग्रीक मॉडल पर बनाया हुआ रगमंच है। यह एशिया की अति प्राचीन नाट्यशाला है और ऐसे प्रमाण मिले हैं कि यशोवर्मन के काल मे भवभूति रचित 'उत्तर रामचरित' का मंचन यहाँ होता था। यह निर्विवाद सत्य है कि यहाँ नृत्य एव सगीत समारोहों का आयोजन होता रहता था। सीता बेंगडा के सामने ही लक्ष्मण बेंगडा तथा अन्य छोटी गुहाएँ है लेकिन इन सब गुहाओ मे चित्र नही हैं केवल जोगीमारा गुहा में ही चित्र मिलते हैं।

जोगीमारा गुहा सीता बेंगड़ा के निकट स्थित है जो 30 फीट लम्बी और 15 फीट चौडी है। इसकी छत नीची है जो 8 फीट ऊँची होगी। गुहा का द्वार पूर्व की ओर है और सामने का दरवाजा बिल्कुल खुला है इसलिए यहाँ पर्याप्त प्रकाश रहता है। गुहा के ऊपर एक बड़ा-सा छिद्र है उससे भी इस गुहा में रोशनी की वृद्धि होती है। राय कृष्णदास जी ने इसे 'वरुण का मंदिर' कहा है लेकिन गुहा की उत्तरी भित्ति पर उत्कीर्ण पाँच पंक्तियो से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ वरुण देव को समर्पित सुतनुका देवदासी रहती थी जिसे वाराणसी के देवदीन नाम के श्रेष्ठ रूपदक्ष (चित्रकार) ने प्रेमासक्त किया था। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

शुतनुक नाम
देवदार्शक्यि
शुतनुक नम। देव दार्शक्यि।
तं कमयिथ बलन शेये।
देवदिने नम। लुपदखे।

उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर यहाँ की पृष्ठभूमि में एक प्रणय कथा उभरती है जिसकी नायिका है श्रेष्ठ नृत्यांगना सुतनुका, जो सर्वांग सुन्दरी है और नायक है रूपविद् देवदीन, जो रगशाला का कुशल चित्रकार था। देवदासी सुतनुका ने इस श्रेष्ठ रूपदक्ष देवदीन के प्रेमपाश मे बँधकर मूर्खता की। देवदीन चित्रकारी मे निपुण था और उसका कार्य नृत्य एवं नाट्यकला के पात्रों को सज्जित करना था। रंगमच की सज्जा का कार्यभार भी उसी पर था। देवदीन के आकर्षक व्यक्तित्व और कार्यकुशलता को देखकर रगमंच की प्रमुख नायिका सुतनुका उसे अपना दिल दे बैठी, जो एक देवदासी के लिए वर्जित है क्योंकि वह देवता को समर्पित होती है। देवदासी के इस मूर्खतापूर्ण कार्य से नाट्यशाला के अधिकारी अप्रसन्न हो गये और विरोधस्वरूप इस प्रणय कथा को गुहा की भित्ति पर चित्रित करवा दिया। सीता बेंगड़ा की भित्ति पर जो अभिलेख है उससे भी इस प्रेम प्रसग की पुष्टि होती है। उससे यह भी स्पष्ट होता है कि सुतनुका के वियोग में व्यथित देवदीन ने इस गुहा को चित्रांकित किया था ऐसा माना जाता है कि देवदीन

जैसे कुशल चित्रकार द्वारा अंकित चित्र बाद मे अकुशल हाथों द्वारा अंकित चित्रों के नीचे दब गये। प्रसिद्ध चित्रकार असितकुमार हालदार ने इन चित्रो की प्रतिलिपि तैयार करते समय इसके सूक्ष्म निरीक्षण मे यह पाया कि इन चित्रो के नीचे कुशल हाथो से पहले की खिंची हुई रेखाएँ विद्यमान हैं।

भारत में शिलाखडो को काटकर चैत्य, विहार तथा मदिर आदि बनाने की परम्परा अति प्राचीन है और उन गुहा-मंदिरो की भित्तियो पर पलस्तर लगाकर तथा चूने आदि से चिकनाकर उन पर चित्र बनाये जाते थे। इसी परम्परा के अनुरूप जोगीमारा गुहा में भी चित्रांकन हुआ है जो भारतीय भित्तिचित्रो के सबसे प्राचीन नमूने हैं। भित्तिचित्रों के अधिकांश भाग मिट गये हैं और सदियों की नमी एव गर्मी ने उन्हें प्रभावित किया है। विद्यमान चित्रों को यद्यपि सर्वश्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता फिर भी इनकी प्राचीनता के विषय मे सदेह नहीं किया जा सकता। विद्वानों ने इसकी चित्रकारी ईसा पूर्व तीसरी-चौथी शताब्दी की मानी है। डॉ० ब्लाख के अनुसार इस गुहा के शिलालेख तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के हैं। 1914 में प्रसिद्ध चित्रकार असितकुमार हालदार तथा क्षेमेन्द्रनाथ गुप्त ने जोगीमारा गुहा के चित्रों का अध्ययन किया और इस सम्बन्ध में विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया।

जोगीमारा गुहा के चित्र

जोगीमारा गुहा की छत पर भारतीय भित्तिचित्रो के सबसे प्राचीन नमूने अंकित है। भित्तिचित्रो के अधिकांश भाग मिट गये हैं। स्व० असितकुमार हालदार ने इन चित्रो का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है :—

गुहा की दाहिनी ओर के चौखटे के प्रथम भाग मे कुछ मानव आकृतियाँ, एक हाथी की आकृति तथा एक विचित्र प्रकार की समुद्री शार्क मछली की आकृति है जिसको सुन्दर लहरों के सकेतार्थ इन्हे गहरी रेखाओं मे अंकित किया गया है। यह चित्र केवल सफेद, लाल व काले रगो मे बने हैं।

दूसरे भाग में कई आकृतियाँ पेड के नीचे बैठी हुई बनायी गयी हैं। चित्र मे वृक्ष को एक मोटा तना, कुछ डालियाँ तथा दो-तीन पत्तियों मात्र से दर्शाया गया है। पत्तियाँ व पेड सब लाल रंग में बने हैं।

इसी चौखटे के दूसरे भाग में काले रग से एक बाग चित्रित है। एक फूल पर नृत्य करता हुआ एक युगल केवल लाल रग में दिखाया गया है। फूलों मे रग नहीं लगाये गये हैं केवल उनका रेखांकन प्राप्त होता है।

चौथे चौखटे का विषय अत्यन्त ही विचित्र है। इसमें नाटी गुडियों की-सी आकृतियाँ चित्रित की गयी हैं जिनमे न अनुपात दिखायी देता है और न मुखाभिव्यक्ति । इसके आकार काली रेखाओं में खींचे गये हैं। इन आकृतियों की मुद्राएँ अत्यन्त रोचक हैं। एक स्थान पर एक मानव आकृति के ऊपर एक पक्षी की चोंच भर दिखायी देती है। समय के थपेड़ो से शायद वही बच पायी है। चित्र के विषय-वस्तु पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

पाँचवें चौखटे में एक स्त्री भूमि पर बैठी हुई दिखायी गयी है तथा उसके चारों ओर कुछ गायक नृत्य मे मस्त हैं। गायकों की चित्रित रेखाएँ अजन्ता की गुफाओं की निम्न श्रेणी की चित्रकारी से मिलती-जुलती हैं। यद्यपि इसका चित्रण अजन्ता के समान उच्चकोटि का नहीं है फिर भी दोनों के आलेखनों में दृष्टिगोचर होती है यह चित्र सबसे अच्छा है

सात चौखटों के चित्र चैत्य मंदिरों से मिलते-जुलते हैं तथा कुछ मे
त्र हैं। भारत के प्राचीन रथ प्राचीन ग्रीस रथो से बहुत-कुछ मिलते हैं।
जो चित्र मिले है उनकी विषय-वस्तु के बारे मे विभिन्न कला समीक्ष
अपने अलग-अलग मत हैं तथा उन चित्रों का वर्णन भी उन्होने अपने
स्मिथ ने इन्हीं चित्रों को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

नीचे एक पुरुष आकृति को बैठे हुए चित्रित किया गया है। उसके बा
को को दिखाया गया है। दाहिनी ओर एक जुलूस का चित्रांकन है जिस
गया है।



जोगीमारा गुहा का एक चित्र

हुत-सी पुरुषाकृतियाँ अंकित हैं। इसी चित्र मे एक रथ का पहिया अथव
आदि का चित्रण किया गया है।

कुछ अस्पष्ट पुष्पों, घोड़ों तथा वस्त्रधारी पुरुषों का आभास होता है
में एक वृक्ष का चित्रण है जिसकी शाखाओं में एक नग्न लडका बना

उसी वृक्ष पर एक चिड़िया भी बैठी हुई दर्शायी गयी है। इस वृक्ष के चारों ओर अनेक नग्न आकृतियों का चित्रण प्राप्त होता है जिनके बाल बँधे हुए दिखाये गये हैं।

चौथे चित्र मे तीन वस्त्रधारी पुरुष खडे हुए तथा एक नग्न आकृति बैठी हुई बनायी गयी है। इसी प्रकार दूसरी ओर तीन खड़ी आकृतियाँ तथा दो बैठी हुई आकृतियाँ बनायी गयी हैं। नीचे की ओर एक मकान के सामने एक हाथी तथा तीन वस्त्रधारी पुरुष खडे हैं। मकान की खिडकी का आकार घोड़े के नाल की तरह है जो चैत्य गुफाओं के अनुसार चित्रित हैं। इसी के पास तीन घोडे का रथ है जिसमें छत्र लगा है। इसी के पास एक हाथी को और चित्रित किया गया है जिसका परिचारक उसी के साथ खड़ा है। इस पैनल के दूसरे भाग मे भी इसी प्रकार की आकृतियाँ चित्रित है।

जोगीमारा गुहा के चित्रों के आधार पर डॉ० बिलोच ने ग्रीक, राय कृष्णदास जी ने जैन तथा डॉ० हीरालाल ने बौद्ध धर्म से सम्बन्धित कहा है। प्रो० हालदार के लेख से यह स्पष्ट होता है कि ये चित्र यहाँ के मंदिर में रहनेवाले निवासियों तथा देवदासियो से ही सम्बन्धित हैं। उनका मानना है कि महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य मेघदूत में रामगिरि नामक जिस स्थान का उल्लेख किया है जहाँ यक्ष निर्वासन में रहता था सम्भवतः वह रामगिरि यही रामगढ रहा हो। रामगढ की पहाड़ियो मे अनेक छोटी-बडी गुफाएँ हैं जहाँ विविध प्रसंग की कलाकृतियाँ उपलब्ध हैं। कुछ गुफाओ मे शयन अथवा विश्राम के लिए चट्टाने कटी है।

विशेषताएँ

यहाँ के भित्तिचित्र की पृष्ठभूमि अजन्ता के समान नहीं है। अजन्ता में भित्तिचित्रो के लिए बालू तथा अन्य पदार्थों की मोटी-सी तह देकर चित्रण भूमि को तैयार किया गया है लेकिन जोगीमारा गुहा की छत को कई बार सफेद रंग पोतकर चित्र बना दिये गये हैं।

चित्रण के लिए केवल लाल, काले और पीले रंग का ही प्रयोग किया गया है जबकि अजन्ता में कई रंगों का प्रयोग दिखायी पडता है।

इन चित्रों को देखने से लगता है कि जोगीमारा के चित्रों को बनानेवाले कलाकार उतने प्रवीण नहीं थे जितने कि अजन्ता के चित्रों को बनानेवाले कलाकार थे।

इन चित्रों की आकृतियाँ हाथी, घोड़ा, रथ, योद्धा आदि साँची और भरहुत की तक्षण कला के अनुरूप हैं।

भित्तिचित्रो की पृष्ठभूमि सर्वत्र श्वेत है। इस पर मनुष्य, वन्य प्राणी तथा सुन्दर प्राकृतिक दृश्य कहीं गहरे लाल तथा कहीं काले रंग से चित्रित किये गये हैं। मानवीय शरीर गहरे लाल रग से बनाये गये हैं जिनकी बाह्य रेखाएँ कही-कहीं काले रंग की हैं। आकृतियों की आँखें तथा बाल काले है। घोड़े, पक्षी व वृक्ष इत्यादि भी लाल रंग से चित्रित किये गये हैं।

भित्तिचित्र अनेक वृत्ताकारों तथा लाल-पीले रंगो के ज्यामितीय आकारों में भी चित्रित हैं।

भित्तिचित्रों की विषय वस्तु स्पष्ट नहीं है किन्तु भित्ति-चित्र का प्रथम चित्रण होने के कारण इसका महत्त्व बहुत अधिक है

बौद्ध कला

भारतवर्ष की सभ्यता अन्य देशों की सभ्यता से अत्यधिक जीवन्त एव प्राणवान् रही है। इस महादेश की भौगोलिक परिस्थितियो, प्राकृतिक दशाओं, रीति-रिवाजों एव भाषाओं मे इतनी विविधता के बावजूद यहाँ का सास्कृतिक जीवन, धार्मिक वृत्ति एव सामाजिक चेतना मे इतना ऐक्य है कि यह देश अपने उत्थान-पतन के अनेक झझावातो, आपदाओं एव आक्रमणों को सहते हुए भी अपने मूल चरित्र को स्थिर रखे हुए है। इसके मूल निवासियों के चरित्र एव स्वभाव को विदेशी तत्त्व बहुत कम प्रभावित कर सके। इसका एकमात्र कारण यह रहा है कि जनसामान्य के प्रत्येक कार्य-व्यापार को धर्म से आबद्ध कर दिया गया जिसमे मनुष्य को निःस्पृह कर्तव्य पालन करते हुए सासारिक सुखों से ऊपर उठने की प्रेरणा दी गयी है।

धर्म ने मनुष्य के कार्यकलापों को मर्यादित किया तथा उसके उद्देश्यों का निर्धारण किया। इस प्रकार सामाजिक सम्बन्धों में एक विशिष्ट प्रकार की प्रगाढता धर्म के माध्यम से सम्पूर्ण महादेश ने वरण किया जहाँ 57 करोड़ देवताओं के साथ मनुष्य बड़े सद्भाव एवं एकता से जीवन के उद्देश्य—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के सन्तुलित उद्यम से जीवन के चरम उद्देश्य को प्राप्त करता है। यहाँ की विभिन्न जाति, वर्ण, व्यवसाय के व्यक्तियों का एक ही उद्देश्य है वह है अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए उससे परे पहुँचना।

इस विश्वजनीन समाज ने सदैव विश्व का मार्गदर्शन किया। यहाँ जो भी विदेशी तत्त्व आये वे इस बृहद् परिवेश मे रच-बस गये और इनके आस्था एव विश्वासो को हमारी बृहद् धार्मिक भावना ने आत्मसात् कर लिया

विराट् भारत का वैदिक धर्म मानव-मूल्यो के प्रति सदा आस्थावान् रहा। इसीलिए मानवता के श्रेष्ठ गुणो को धर्म का अविभाज्य अग स्वीकार किया गया। वैदिक पौराणिक धर्म मे यह परिकल्पित किया गया है कि पृथ्वी पर जब-जब मानव-मूल्यो की अवमानना होती है, तब-तब कोई-न-कोई महामानव अवतरित होकर नये धर्म एव मूल्यो की स्थापना कर समाज को गतिशील करता है और धर्म एवं समाज में इन मूल्यो एवं आदर्शों को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए ऐसे अवतारी पुरुष को सघर्ष और दीन-हीन शोषित वर्ग के उन्नयन के लिए कार्य करना पड़ता है। शास्त्रों मे ऐसे महामानव को ईश्वर का अवतार कहा गया है। कहते हैं ईश्वर धर्म-सस्थापना के लिए स्वयं प्रकट होता है:

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

—(गीता 4/7-8)

इसी क्रम में ईसा पूर्व छठी शताब्दी मे ब्राह्मणवादी वर्ण-व्यवस्था और कर्मकाण्ड की कठोर यत्रणा से जब समाज आर्तनाद कर उठा उस समय भगवान् बुद्ध एव महावीर स्वामी ने मानव-मूल्यों को लेकर पुनः धर्म का नेतृत्व किया। उनके पास थी मानव पीडा के प्रति असीम व निर्मल करुणापूर्ण चिन्ता जिसने जन-जन को प्रभावित किया। सार्वभौम करुणा एवं सद्भावना के सदेश ने करोड़ों भावुक भारतीयो के हृदय को अपने वश में कर लिया अभी तक जो वर्ग अथवा

समुदाय ऊँची जातियों द्वारा आयोजित बड़े-बड़े धार्मिक आयोजनो अथवा यज्ञो के मूक दर्शक या बँधुआ मजदूर थे उन्हे ऐसी सहानुभूति प्राप्त हुई जो उनके अन्तरतम को छू गयी। इन महान् विभूतियों द्वारा प्रचारित धर्म जो धर्म, विवेक, उच्चज्ञान तथा आध्यात्मिक अनुभव पर आधारित था वह जनसामान्य के लिए भक्ति मार्ग बन गया। बुद्ध भगवान् एव महावीर स्वामी के अनेक रूपधारी बोधिसत्त्वों और तीर्थंकरों ने अपने करुणा, धैर्य एव कृपा रूप मे अवतार लेकर जन-सामान्य के हृदय में उच्चासन पर स्थित हो गये और उनकी पूजा-अर्चना प्रारम्भ हो गयी।

भारतीय वैदिक धर्म ईश्वर एव अनीश्वरवाद के बीच प्रदोलित होता रहा है लेकिन इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि युग-पुरुषों ने इसकी तरह-तरह से व्याख्या की और अलग-अलग उपासना-पद्धतियो पर बल दिया लेकिन मानव-मूल्यों के प्रति ये सभी प्रतिबद्ध रहे और यही कारण रहा कि वैदिक धर्म में अनेकता मे एकता दृष्टिगत होती है। निर्गुण उपासना कब सगुण मे परिवर्तित हो गयी तथा सगुण उपासना ने कब निर्गुण का स्थान ले लिया इसका क्रम-निर्धारण कठिन है लेकिन ये एक-दूसरे के परिपूरक रहे हैं यह कहना असंगत न होगा। विभिन्न मत-मतान्तर से पोषित यह धर्म शाश्वत एव सनातन रहा जिसका विवेचन अवतारी पुरुषो ने सत्य, अहिंसा तथा सहृदयता के आधार पर किया। धर्म और देश की अभिन्नता स्वीकार करना ही भारत की विशिष्ट प्रज्ञा रही है। भारत की धार्मिक एकता और अखण्डता में उत्सर्ग की जो भावना निहित है उस सम्बन्ध मे विष्णु-पुराण का कहना है कि भारत जम्बूद्वीप का सर्वश्रेष्ठ भाग है क्योंकि यह पुण्य देश है। अन्य देशो को केवल सुखोपभोग की कामना रहती है जबकि इस पुण्य देश के निवासी अपने कार्यों के फलो को परमात्मा पर छोड़कर अपना सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं। परमात्मा की अनुभूति की उनकी यही विधि है। देवता स्वय कहते हैं कि उनकी तुलना मे वे लोग सुखी हैं जो भारतवर्ष मे मनुष्य रूप मे जन्म लेते हैं, क्योंकि स्वर्ग के सुखो तथा मोक्ष के उपरान्त प्राप्त आनन्द का यही मार्ग है। इसी प्रकार भागवत मे कहा गया है कि पवित्र नदियो, पर्वतों और पावन तीर्थस्थलों तथा अवतारों, साधु प्रकृति राजाओ, भक्तो और धर्मप्राण पुरुषों का यह देश महान् है। यहाँ ईश्वर स्वयं कृपा करके मानव-योनि मे अवतीर्ण हुआ है ताकि नश्वर प्राणी उसकी भक्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सके।

भगवान् बुद्ध—वैदिक धर्म की ही परम्परानुसार भगवान् बुद्ध को भी अवतारी पुरुष माना गया है। एक कथानक के अनुसार बोधिसत्त्व के रूप में भगवान् तुषित स्वर्ग मे बैठे मनोविनोद कर रहे थे उसी समय उनसे प्रार्थना की गयी कि ससार मे अतीव कष्ट है, दु:ख है। उससे बचने का कोई मार्ग निकालिये। मनुष्यो की बात सुनकर तुषित स्वर्ग के देव ने भविष्यवाणी की कि वे ससार को विमुक्त करनेवाले हाथी के रूप मे कपिलवस्तु की रानी मायादेवी के गर्भ मे प्रवेश कर ससार मे अवतरित होगे। इसीलिए बुद्ध के जन्म का प्रमुख प्रतीक हाथी माना गया।

कुमार सिद्धार्थ अर्थात् गौतम बुद्ध का जन्म लगभग ईसा पूर्व 563 में कपिलवस्तु से कुछ मील दूर लुम्बिनी शालवन में हुआ था। यह स्थान आज नेपाल सीमा के पास है। उनके पिता शुद्धोदन शाक्यों के राजा थे। सिद्धार्थ के जन्म के कुछ दिनों बाद ही उनकी माँ का देहान्त हो गया और उनके पालन-पोषण का भार उनकी मौसी तथा सौतेली माँ प्रजापती एव गौतमी के ऊपर पडा। जिस राजवंश में उन्होने जन्म लिया था वहाँ भौतिक सुखो का कोई अभाव नहीं था। धन-धान्य और समृद्धि से परिपूर्ण इस राजभवन में अनेक दास-दासियाँ उनकी सेवा में उपस्थित रहते थे कुमार सिद्धार्थ बड़े ही [illegible] बालक थे एक बार वे [illegible] से बाहर घूमने

निकले तब उन्हें जरा, मरण एवं व्याधि से पीड़ित मनुष्य के कष्टों का बोध हुआ। उन्हे लगा कि भौतिक सुखों के साधन से मनुष्य के इन दु:खो का निराकरण नही हो सकता और वे गहन चिन्ता में निमग्न हो गये। उनके प्रियजनों ने उनकी इस भावुकता को देखकर शीघ्र ही सांसारिक बन्धनो मे बाँध देने का निर्णय लिया और उनका विवाह पडोसी कोलियगण की सुन्दरी कन्या भद्रा कापिलायनी (यशोधरा) से कर दिया जिससे उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई जिसे उन्होंने राहुल (काँटा) कहा। स्पष्ट है उनका पुत्र सासारिक दु:खों से मुक्ति पाने में एक काँटा बनकर आया था। उन्होंने दो महान् तपस्वी गुरुओ से सांख्य दर्शन और अध्यात्म की शिक्षा पायी। वैशाली के आलार कालाम और राजगृह के उद्दक रामपुत्र नामक ये दोनों गुरु उनकी आध्यात्मिक जिज्ञासाओं को शान्त न कर सके और घर-द्वार एवं परिवार को त्यागकर उन्होंने प्राय: छह वर्षो तक योग और अनशन के द्वारा बोधगया के पास (बिहार) घोर तपस्या की। यहाँ तक कि वे अतिदुर्बल हो मरणासन्न हो गये। उन्होंने यह बोध कर लिया कि यदि सुखों में लीन रहने से दु ख से छुटकारा नहीं मिल सकता तो ऐसी कठिन तपस्या से भी मुक्ति नहीं मिल सकती। सिद्धार्थ न केवल बुद्धिवादी थे वरन् वे महान् क्रान्तिकारी भी थे। अत: उन्होने एक दूसरा चिन्तन मार्ग अपनाया और उरुवेला पहुँचकर उन्होने एक पीपल-वृक्ष के नीचे समाधि लगायी। वैशाखी पूर्णिमा को उन्हे बुद्धत्व प्राप्त हुआ। तब से वे बुद्ध भगवान् के रूप मे प्रतिष्ठित हुए।

बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद उन्होंने विचार किया कि जिस ज्ञान को उन्होंने प्राप्त कर लिया है उसे अपने तक ही सीमित रखा जाय या अन्य लोगो को भी इसका लाभ दिया जाय। संसार के प्राणियों के कष्ट से द्रवित उनका मन इस ज्ञान को अपने तक ही सीमित न रख सका और इसको जन-जन तक पहुँचाने के लिए उद्यत हुए। इस हेतु उनका ध्यान सर्वप्रथम अपने गुरुओ की ओर गया लेकिन वे दोनों कुछ समय पहले ही इस ससार से बिदा ले चुके थे। इसके पश्चात् उनका ध्यान पंचवर्गीय भिक्षुओं की ओर गया और वे उसी ओर चल दिये। ऋषिपत्तन मृगदाव (वाराणसी के समीप सारनाथ) पहुँचकर उन्होंने अपना पहला उपदेश आषाढी पूर्णिमा को दिया। बौद्ध जगत् मे यह घटना धर्मचक्र प्रवर्तन के रूप में प्रसिद्ध है। बुद्ध भगवान् ने पूर्वी देश कजगल से लेकर वैरंजा (मथुरा के समीप) तक नाना यात्राएँ कर अनेकानेक उपदेश दिये। वर्षाकाल के तीन महीने वे नगर के किसी विश्रामगृह में निवास किया करते थे तथा राजा, व्यापारी और साधु-सन्तो से मिलकर उन्हें उपदेश देते। वे अस्सी वर्ष तक जीवित रहे और लगभग पैंतालीस वर्ष तक लगातार उपदेश देते रहे। 483 ई० पू० मे कुसीनारा (कसया जिला गोरखपुर) मे निर्वाण प्राप्त किया। उनके शिष्यों में आनन्द, सारिपुत्र और मौदगल्यायन (मोग्गल्लान) प्रमुख थे। आनन्द उनका सबसे प्रिय शिष्य था जो उनके साथ रहकर उनकी सेवा-शुश्रूषा किया करता था और उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। सारिपुत्र शास्त्रार्थ में निपुण था और संघ का ज्येष्ठ पुत्र कहलाता था। मौदगल्यायन की रहस्यात्मकता तथा तत्त्वमीमासा उच्चस्तरीय थी। बुद्ध के अनुयायियों में मगध के राजा बिम्बिसार और अजातशत्रु, कौशल के राजा प्रसेनजित् और उनकी पत्नी मल्लिका, धनी व्यापारी अनाथपिण्डिक और प्रसिद्ध वैद्य जीवक आदि थे। अनाथपिण्डिक ने उन्हे जेतवन को भेट में दिया था। बुद्ध के अनुयायियों में स्त्रियाँ भी सम्मिलित थीं। विशाखा, सुप्पिया और अम्बपाली प्रमुख शिष्या थीं जिनकी अबाधित दानशीलता और उदारता के कारण इस धर्म का पोषण हुआ। प्रारम्भ मे गौतम बुद्ध स्त्रियों को संघ में शामिल करने में थे परन्तु बाद में धर्ममाता के जोर देने पर उन्हें कर लिया

जहाँ बुद्ध भोगमय जीवन के विरुद्ध थे वहीं दूसरी ओर हठयोग और शरीर सुखाने के विरुद्ध थे। उनका झुकाव ज्ञान एवं बुद्धिवाद की ओर ज्यादा था।

शिलागृही आश्रयो का प्रयोजन—बुद्ध मत को स्वीकार करनेवाले स्त्री-पुरुषों को आज्ञा थी कि वे अपने परिवार के साथ रहें तथा समय-समय पर सघ की सहायता करे फिर भी अनेक व्यक्ति सांसारिक बन्धन त्यागकर भिक्षु-भिक्षुणियाँ बन जाते थे। संसार से विरक्त इन परिव्राजको (संन्यासियों अथवा भिक्षुकों) को भारतीय परम्परा के अनुसार जगल में रहने का विधान था और एक स्थान पर स्थायी रूप से न रहने की कड़ी हिदायत भी थी। बुद्धत्व प्राप्ति के बाद स्वय तथागत इसी परम्परा का पालन करते हुए भ्रमण कर धर्म का प्रचार-प्रसार करते रहे। वे प्राचीन परम्परा के अनुसार अपने अनुयायियों को भी चलते रहने का उपदेश देते थे—"**चरत भिक्खवे बहुजन हिताय बहुजन सुखाय**।" यही नही, उन्होने आदेश दिया कि दो भिक्षु एक साथ भ्रमण न करें। भिक्षान्न को ही भोजन समझे। जनता द्वारा त्यागे गये वस्त्रो (चीवर) को ही धारण करे। वृक्षो के नीचे निवास करे तथा मूत्र को ही ओषधि के रूप मे प्रयोग करे (महावग्ग 1/2/6)।

वैदिक धर्म में वर्णाश्रम की व्यवस्था थी जिसके अनुसार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा सन्यास आश्रमों का पालन होता था किन्तु बुद्ध वर्णाश्रम के विरोधी थे। उनके अनुसार व्यक्ति किसी भी अवस्था मे भिक्षु बन सकता था। इस प्रकार भगवान् बुद्ध के उपदेश से भिक्षुओं की सख्या बढती गयी। बड़ी सख्या मे लोग अपने घरों को त्यागकर एव पीला वस्त्र पहनकर प्रव्रज्या ग्रहण करने लगे। उनकी इस बढती संख्या के लिए जगल में वृक्ष के नीचे का आश्रय यथेष्ट न रहा और इनके लिए निरापद आश्रय की खोज आरम्भ हुई। उनका आवास नगर के बाहर ही हो सकता था अत: जगल के पर्वतो के पार्श्व अथवा प्राकृतिक गुफाओं को खोज-खोजकर ये भिक्षुक अपने रात्रिकालीन निवास बनाते रहे। भगवान् बुद्ध के साथ उनकी शिष्य-मण्डली भी रहती थी जिसकी सख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। इस प्रकार बौद्ध भिक्षुओं के निवास-स्थान का प्रश्न सामने आया। अततोगत्वा उन्होने अपने शिष्यो को निर्मित स्थान मे रहने की अनुमति दे दी। चुल्लवग्ग के ए न वर्णन के अनुसार राजगृह के नगरश्रेष्ठी ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे निर्मित स्थान (विहार) मे भिक्षुओं को रहने की अनुमति प्रदान करे। अनुमति मिलने पर धनी मानी सेठ बौद्ध भिक्षुओ के लिए निवास बनाकर दान देने लगे। इन निवास-स्थानो मे नगर से दूर किसी नदी किनारे की पहाडियो को विशेष रूप से चुना गया जहाँ शिलागृही आश्रमो (विहार) या उपासना स्थलो (चैत्य) का निर्माण किया गया। इन गुफाओ में बौद्ध भिक्षु प्रत्येक ऋतु में शान्तिपूर्वक जीवनयापन करता हुआ समाधिस्थ हो चिन्तन-मनन करने के साथ अपनी कलात्मक प्रतिभा का अन्वेषण कर सकता था। इस प्रकार बुद्ध मत की प्रगति के साथ शिलागृही आश्रमों का विकास हुआ। शिलागृही आश्रमो के निर्माण के लिए ठोस पर्वतो की खोज की गयी। इसके लिए शिल्पश्रेष्ठी का चयन कर उनको शिलागृही विहारों के निर्माण का कार्य दिया गया। इन चैत्य विहारों के बनने के बाद बौद्ध धर्म में संघ की स्थापना हुई जिसके नियम-उपनियम बनाये गये जिसके पालन की प्रतिज्ञा करना सभी के लिए आवश्यक हो गया। विनय पिटक में इसकी विस्तार से विवेचना की गयी थी। बुद्ध, धर्म एवं संघ को त्रिरत्न कहा गया जिसके प्रति आस्था और विश्वास के लिए निम्न उद्घोष का प्रचार हुआ।

बुद्धं शरणं गच्छामि।

धम्मं शरणं गच्छामि।

सघ शरण गच्छामि

संघ की स्थापना बुद्ध ने की, यह कहना तो कठिन है लेकिन उन्होंने बदली हुई परिस्थिति को देखते हुए भिक्षुओं के स्थायी निवास की अनुमति अवश्य प्रदान की। इस समस्या का समाधान गुहा खुदवाकर संघ के रूप मे निवास करने से हो गया। भिक्षुगण के निवास-स्थान के लिए बौद्ध साहित्य में दो शब्द प्रयुक्त हुए है। (1) आराम या (2) विहार। भगवान् बुद्ध के निवास निमित्त जो कुटी या मकान बनाये गये उन्हें 'आराम' कहा गया तथा बौद्ध भिक्षुओ के लिए निर्मित विस्तृत निवास-स्थान को 'संघाराम' 'विहार' कहा गया। कही-कहीं 'आराम' तथा 'विहार' दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही भवन या लेण के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'लेण' शब्द का प्रयोग गुहा के लिए होता था जो संस्कृत शब्द 'लयनम्' है जो विश्रामगृह या आराम के लिए प्रयुक्त होता है (ली+ ल्युट् = विश्राम)। पुरातत्त्व प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि 'लेण' (लयनम्) पर्वत खोदकर तैयार किये जाते थे जिनमें भिक्षु रहा करते थे। इन लेणों मे प्राप्त लेखो से इन शिलागत लेणों के खोदने तथा उन्हें दान देने का विवरण मिलता है। नासिक गुहा लेख मे कहा गया है कि चारो दिशाओ से आनेवाले भिक्षु सघ के लिए यह लेण निवास-स्थान का कार्य करेगा। यथा-

एतो मय लेने वसतानं चातुदीसस
भिखुसंघस मुखाहारो भविसती
संघस चातुदिसस ये इमास्मि लोणे
वसातानं भविसंति

भिक्षुओं के रहने का स्थान निश्चित हो जाने पर उनकी पूजा-अर्चना के निमित्त स्थान की आवश्यकता का अनुभव हुआ अत: पर्वतों को जब खोदा गया तो विहार के साथ पूजागृह अर्थात् चैत्य का भी निर्माण किया गया। कहने का तात्पर्य यह कि एक क्षेत्र मे विहार के साथ चैत्य शिलागृही मदिरो का भी निर्माण किया गया। बौद्ध धर्म मे भी सामूहिक प्रार्थना का प्रचलन था इसलिए चैत्य मदिरो का निर्माण विस्तार से एक विहार में रहनेवाले भिक्षुओ की संख्या के आधार पर किया गया तथा भिक्षु कलाकारों द्वारा विधिवत् अलकृत किये गये।

शैल-गृहों (गुहाओं) का निर्माण—पाषाणोत्कीर्ण देवालयों और विहारों के निर्माण की परम्परा अति प्राचीन है। पश्चिमी घाट की पहाडियाँ इस कार्य के लिए सबसे उपयुक्त थीं इसलिए इन पहाड़ियों में गुहा-मंदिरों का निर्माण प्रमुखता से हुआ। साधु-संन्यासी के पूजा-अर्चना और निवास के लिए इससे उपयुक्त स्थान और कुछ हो भी नहीं सकता था। ये स्थान प्राकृतिक कन्दराएँ या गुफाएँ न थीं बल्कि मनुष्य द्वारा निर्मित अनुपम वास्तु कृति थी। दूसरे शब्दो मे ये कुशल शिल्पियों एवं चित्रकारो द्वारा उत्खनित एवं सुसज्जित किये गये पाषाणोत्कीर्ण स्थापत्य हैं जिन्हें हम 'शैल-गृही मंदिर' भी कह सकते हैं क्योकि इन विशाल देवालयो और विहारो का निर्माण कलाकार की छैनी-हथौडी द्वारा पहाड़ के विशाल पत्थर को इंच-इच तराशकर पर्वत के अन्दर-ही-अन्दर किया गया है। इनके प्रवेश-द्वारों की सुन्दर सज्जा की गयी है और इनके विशाल कक्षो को बडे मनोयोग से चित्रित किया गया है। इन गुहा-मंदिरों में शिल्पकला का चरम विकास हुआ है। यहाँ के कलाकारों ने जिस असाधारण बारीकी, शुद्धता और सही अनुपात के साथ पत्थरों की कलात्मक और गौरवपूर्ण काट-छाँट की है उससे उनके अतिशय उच्च निर्माण कौशल का पता चलता है। शायद हम इन्हे पाषाणोत्कीर्ण स्थापत्य की श्रेणी में रखकर भी भूल कर रहे हैं क्योंकि ये भव्य शिल्प हैं और शिल्पगत सभी विशिष्टताएँ इनमें परिलक्षित हैं

अजन्ता शिलागृही मंदिरों की बनावट एक जैसी नही है। इसमे दो प्रकार के पाषाणोत्कीर्ण स्थापत्य दिखायी पडते हैं एक चैत्य मंदिर तथा दूसरा विहार गृह।

चैत्य मंदिर—चैत्य मंदिर बौद्ध धर्म का देवालय है। चैत्य शब्द (चित्य+ अण्) पूजा स्थान का बोधक है। यह बौद्ध भिक्षुओं का पूजा-स्थान है। अजन्ता गुहा-मदिर क्र0 स० 9,10,19 एव 26 चैत्य मंदिर हैं बाकी सभी विहार (सघाराम) है। चैत्य मदिरों के प्रवेशद्वार की बनावट विस्तीर्ण है और ऊपर घोडे के नाल के आकार का विस्तृत वातायन बनाया गया है जिसे 'कीर्तिमुख' कहते है। भीतर के बडे मण्डप को कीर्ति कहते हैं। मण्डप की आकृति वृत्तायत है अर्थात् आरम्भ का भाग आयताकार तथा अन्तिम भाग जहाँ स्तूप होता है अर्द्धवृत्ताकार बनाया गया है। अर्धवृत्त भाग में ऊपरी छत के गर्भसूत्र के ठीक मध्य बिन्दु के नीचे चट्टान मे कटाव करके गुम्बदाकार स्तूप की रचना की गयी है। स्तूप को चैत्य भी कहते थे इसलिए इसका नाम चैत्यगृह विख्यात हुआ। आयताकार मण्डप में पूजा-पाठ के लिए भिक्षु एकत्र होते थे और दोनो ओर के प्रदक्षिणापथ से चलकर चैत्य की परिक्रमा करते थे। यह मार्ग स्तूप के पीछे से घूमता है।

स्मृति-चिह्नों के रूप में स्तूपो का निर्माण बौद्ध युग के पहले भी होता था। वैदिक युग मे जहाँ राजा अथवा महान् पुरुषों को जलाया जाता था वहाँ पर अथवा वहाँ से अस्थि-अवशेषो को ले जाकर एक स्थान पर गाड दिया जाता था और उस पर स्तूप बनाकर उसकी पूजा-अर्चना की जाती थी। यह परम्परा जैन तथा बौद्ध युग मे भी आयी लेकिन भगवान् बुद्ध द्वारा इसे विशेषरूप से स्वीकार करने के कारण इसे बौद्ध धर्म मे विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ।

दीघनिकाय के महापरिनिब्बान के अनुसार भगवान् तथागत ने अपने निर्वाण के सम्बन्ध मे आदेश देते हुए अपने प्रिय शिष्य आनन्द से कहा, "भन्ते ! मेरी मृत्यु के पश्चात् जब मेरा शव चिता पर भस्म हो जाय तो महाचतुष्पथ स्थान पर स्तूप बनाकर उसमे धातु (अवशेषों) को ठीक उसी प्रकार विसर्जित करना जैसे महामहिम चक्रवर्ती सम्राटो के अवशेषों का विसर्जन किया जाता है।"

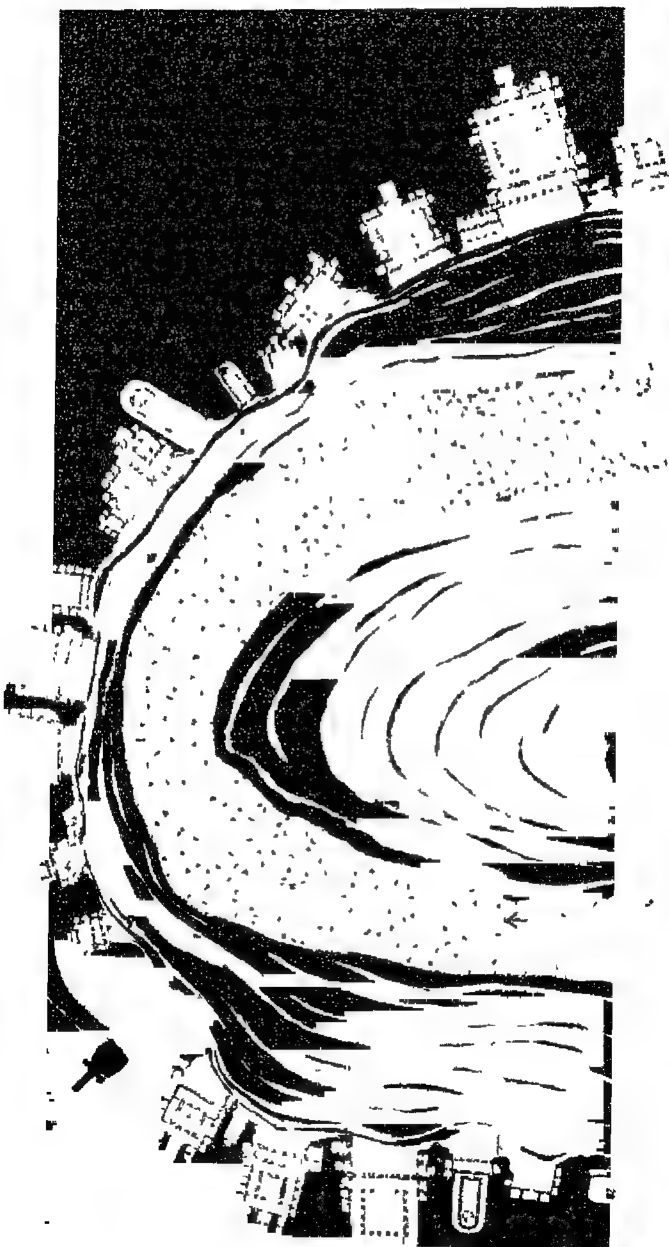
भगवान् बुद्ध द्वारा इस प्रकार स्वय निर्वाचन किये जाने के कारण स्तूप रचना को बौद्ध धर्म मे विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ। बुद्ध भगवान् के निर्वाण के बाद उनके धातुओं को लेकर स्तूपों का निर्माण हुआ। बाद में बुद्ध के प्रमुख शिष्यों की धातुओ के लिए स्तूपों का निर्माण हुआ और अत में जनसाधारण की श्रद्धा और भक्ति जागृत करने के लिए चैत्यों का निर्माण प्रतीकात्मक रूप में हुआ। यही प्रतीकात्मक रूप अजन्ता के हीनयान तथा महायान चैत्यो मे दिखायी पडता है। इस समय स्तूप निर्माण पुण्य कार्य समझा जाने लगा था और इसकी पूजा-अर्चना से सुख लाभ प्राप्त होता है ऐसी मान्यता भी स्थापित हो चुकी थी। आध्यात्मिक प्रकाश पुंज को परिलक्षित करने के लिए इन स्तूपों को सजाया-सँवारा जाने लगा तथा दीप-मालिकाओं से आलोकित किया जाने लगा।

अजन्ता गुहा-मदिर समूह के चार चैत्यो में दो हीनयान के हैं और दो महायान के। इन दोनो के निर्माण-काल में काफी अन्तर है। गुहा न0 9 और 10 का निर्माणकाल प्राय: ईसा पूर्व दूसरी और पहली सदी का सम्मिलन काल है जबकि गुहा नं0 19 और 26 का निर्माणकाल ईसवी सन् की पाँचवीं-छठी सदी का सम्मिलन काल है। इस अन्तराल के कारण इनके स्थापत्य में कुछ मूलभूत परिवर्तन दिखायी पडता है। इन दोनो कालो के चैत्यो की तुलना करने पर यह बात स्पष्ट होती है कि काष्ठ-स्थापत्य परम्परा का अनुकरण उत्तरोत्तर कम होता गया। दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह दिखायी पड़ता है कि पहले जहाँ ये गुहा-मंदिर सीधे-सीधे और सपाट होते थे वहाँ बाद में नाना प्रकार की आकृतियो और बुद्ध प्रतिमा को उत्कीर्ण करके अन्दर-बाहर प्रत्येक स्थान को सुसज्जित किया गया यद्यपि योजना मूल रूप में वही है फिर भी के

साथ बुद्ध मूर्ति की भरमार हो गयी है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उपासको और भक्तो की पूजा-पद्धति विषयक दृष्टिकोण में बहुत अन्तर आ गया था। प्रारम्भ मे अनीश्वरवादी और मूर्तिपूजा विरोधी बौद्ध धर्म किस तरह सबसे बडा आस्तिक और मूर्तिपूजक धर्म बन गया इसका सहज ज्ञान यहाँ प्राप्त होता है। मुक्ति मार्ग के आकाश मे उडनेवाला छोटा यान (हीनयान) जिसमे केवल कठोर आत्मानुशासन और प्रचण्ड तपश्चर्या करनेवाले ही बैठ सकते थे बाद मे विशाल यान (महायान) मे परिवर्तित हो गया जिसमे बैठकर अपरिमेय संख्या में लोग मुक्ति लाभ प्राप्त करने लगे। हीनयानियों का एकमात्र उद्देश्य कठोर अनुशासन, त्याग और तपस्या द्वारा निर्वाण की स्थिति अर्थात् अर्हतावस्था प्राप्त करना था जबकि महायान पन्थ ने प्रतिपादित किया कि ससारी प्राणियो के जीवन का उद्देश्य बोधिसत्त्वावस्था प्राप्त करना है और प्रयत्न करने पर यह अवस्था प्रत्येक जीवधारी प्राप्त कर सकता है। अर्हत् सर्वज्ञता की चरम स्थिति और आत्म-विकास की परिपूर्ण सिद्धावस्था है और बोधिसत्त्वावस्था में पूर्ण निर्वाण की क्षमता होते हुए भी बोधिसत्त्व व्यक्ति अपने निर्वाण की चिन्ता न कर लोक-कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहता है। एक को निर्वाण प्राप्त करने के लिए ससार से निवृत्ति आवश्यक थी तो दूसरी विचारधारा ने घोषणा कर दी कि धर्म का तात्कालिक लक्ष्य लोकमंगल है। इसके लिए आवश्यक है कि आत्मा संसार के लौकिक स्वरूप को भलीभाँति हृदयगम करे। यहाँ एक बात और स्पष्ट होती है कि हीनयान के कठोर अनुशासन के कारण जो साधारण गृहस्थ उपेक्षित हो रहे थे और वे जैन अथवा वैष्णव धर्म की ओर आकृष्ट हो रहे थे उन्हे पुनः अपनी ओर आकृष्ट करने का कार्य महायान पन्थ ने किया। उन्होने अपनी पूजा-पद्धति मे क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। महायानियो के अनुसार सभी बोधिसत्त्व हैं अतएव साधक और साधु में विशेष अन्तर नहीं है।

बौद्ध पूजा-पद्धति मे मूर्ति का आविर्भाव एक लम्बी कहानी है जिसका अन्त मूर्ति निर्माण और साकारोपासना में होती है। धीरे-धीरे चैत्य की उपयोगिता समाप्त हो जाती है और उसका स्थान बुद्ध प्रतिमा ने ले लिया। चैत्य का एक साकेतिक स्वरूप बहुत दिनो तक बुद्ध प्रतिमा के साथ जुडा रहा।

विहार गृह—विहार भिक्षुओ का आवास गृह था। चैत्य मंदिरों के साथ-ही-साथ विहार गृहो का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल मे बौद्ध भिक्षुओं के निवास-स्थान को विहार या सघाराम कहा जाता था। अजन्ता विहारो के आकार-प्रकार देखकर ऐसा लगता है कि उनका निर्माण चौकोर मकानो के आधार पर हुआ है जिनमें आँगन के चारो तरफ बरामदे और फिर क्रमशः कोठरियाँ हुआ करती थीं। एक भिक्षु के रहने के लिए एक कोठरी पर्याप्त रहती थी। यहाँ बहुत-से भिक्षुओं का सघ निवास करता था इसलिए इसे सघाराम कहा जाता था। आरम्भ मे छोटी गर्भशाला के लिए विहार शब्द का प्रयोग हुआ लेकिन बाद मे बड़े आकार के आवास स्थान भी विहार कहलाये। इन विहारों का निर्माण चैत्यों के अगल-बगल ही विशेष रूप से हुआ है। प्रत्येक विहार की रचना में एकरूपता दिखायी पडती है यद्यपि शिल्प मे समयानुसार बहुत अन्तर है। इन विहारो की कोठरियो की लम्बाई-चौडाई 9 फुट के लगभग है जिनमें पत्थर को काटकर सोने या बैठने के लिए तखत बनाये गये हैं। तखत पर पत्थर काटकर तकिये भी बना दिये गये हैं। कोठरियों में छोटे-छोटे दरवाजे मण्डप की ओर बने हैं जिनमें कभी लकड़ी के दरवाजे भी लगाये गये होगे ऐसा आभास उनके चूलों को देखकर होता है। कभी-कभी एक कोठरी से दूसरी कोठरी में जाने के लिए अन्दर-ही-अन्दर रास्ता बनाया गया है। पहले ये विहार मठ होते थे किन्तु बाद मे पूजा-स्थान के रूप में भी इनका व्यवहार होने लगा। मण्डप के प्रवेश-द्वार के सामने की कोठरी या गर्भगृह को पवित्र स्थान के रूप में मान्यता प्राप्त हुई और उसमे बुद्ध मूर्ति की [illegible] हुई इन विहार गृहों के प्रवेशद्वार के बाहर भी बरामदे बनाये गये हैं [illegible] के इन विहारों की [illegible] का वर्णन प्रत्येक शैलगृही मंदिर के साथ [illegible] किया जा रहा है



अजन्ता गुहा-मंदिरों की स्थिति

अजन्ता की कलाकृतियाँ

सामान्य परिचय . महाराष्ट्र राज्य के औरंगाबाद शहर से उत्तर-पश्चिम की ओर लगभग 105 कि0 मी0 की दूरी पर औरंगाबाद-जलगाँव पथ मार्ग पर अजन्ता गुहा-मंदिर-समूह स्थित है। जलगाँव रेलवे स्टेशन से इसकी दूरी लगभग 60 किलोमीटर है और बस द्वारा यहाँ पहुँचा जा सकता है। प्राचीन काल मे अजन्ता उत्तर से दक्षिण जानेवाले एक मुख्य व्यापारिक मार्ग पर स्थित था और व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। आज वहाँ एक छोटा-सा गाँव अजन्ता है जिससे इन कला-मंडपों की दूरी 5-6 किलोमीटर है। अजन्ता के ये कलामण्डप सतपुड़ा की पहाडियों के अर्द्धचन्द्राकार घाटी में स्थित है जहाँ बघोरा नदी घुमाव लेती हुई कल-कल निनाद करती हुई प्रवाहित होती है। इस निसर्ग-सुन्दर स्थान को धर्मोपासना के लिए जिसने चुना उसकी वृत्ति कितनी सुरुचिपूर्ण, अन्तःकरण कितना सवेदनशील और चेतना कितनी सौन्दर्यपूर्ण रही होगी, इसका अनुमान केवल वही कर सकते हैं जिसने इस सृष्टि-सौन्दर्य को स्वयं देखा हो। यहाँ की धर्मसाधना और कलाविलास को देखकर रोम-रोम विह्वल हो उठता है, मन आश्चर्यचकित हो जाता है और मुग्ध तारुण्य तेजस्वी गाम्भीर्य मे बदल जाता है।

अजन्ता गुहा-मंदिरों की खोज भारतीय चित्रकला के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। सैकड़ों वर्षो तक अजन्ता के ये कलामण्डप जंगलों में छिपे रहे तथा जंगली पशु-पक्षियों के रैन-बसेरा बने हुए थे। सन् 1819 में घुडसवार सेना का अंग्रेज नायक इस निर्जन प्रदेश में घूमते हुए निकल रहा था कि अकस्मात् एक स्थान (व्यू प्वाइंट) पर पहुँचकर उसे दूर से इस पहाडी घाटी मे इन कलामण्डपो के सुन्दर तराशे हुए प्रवेशद्वारों के दर्शन हुए। निर्जन स्थान पर ऐसे भव्य एव कलात्मक प्रवेशद्वारो को देख वे आश्चर्यचकित थे और कौतूहल एव उत्साह में उन्होंने इन कलामण्डपो को पास से देखा। उस समय उनके आश्चर्य का पारावार न रहा जब उन्होंने देखा कि मानव निर्मित इन विशाल गुहा-मदिरों के मण्डपों की दीवारें अद्‌भुत कलात्मकता से चिन्हित हैं। अजन्ता गुहा-मदिर सख्या 10 को देखने के बाद अट्‌ठाईसवीं घुडसवार सेना का नायक जान स्मिथ ने सभागृह के 13वे स्तम्भ के सामने वाले भाग पर अपना नाम व तिथि अकित कर दिया जिससे विदित होता है कि इन गुहा-मंदिरों को उसने 28 अप्रैल 1819 के दिन पहली बार देखा। यहाँ के कलात्मक वैभव से प्रभावित इस दल के इन शिलागृही आश्रयों को 'अजन्ता की गुफाएँ' (Ajanta Caves) कहकर अपने उच्च अधिकारी को इसकी सूचना दी। यह नाम उन्होंने अजन्ता नामक छोटे-से ग्राम के आधार पर दिया था जो इसके निकट ही था।

इसके पूर्व चीनी यात्री ह्वेनत्सांग ने छठी शताब्दी में भारतवर्ष के अनेक बौद्ध तीर्थस्थलो का भ्रमण किया था। उसने अपने यात्रा सस्मरणों मे इन गुहाओं का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है—

"यहाँ एक विशालाकार भव्य, बहुत ऊँचा पथरीला पर्वत है जिसमें कगारयुक्त प्रपातो के मध्य सीमा का निरंतर अतिक्रमण करती हुई चट्‌टानों का अम्बार लगा हुआ है। इस गहरी घाटी मे संघाराम भी निर्मित है जिसका दीर्घाकार सभागृह तथा पार्श्व वीथियाँ इन्हीं चट्‌टानों के मुख-मण्डल से अतिरंजित है। ...विहार के चारो ओर पत्थर की भित्ति पर तथागत बोधिसत्त्व के जीवन के विविध दृश्य चित्रित हैं। इनमें उनकी बोधिप्राप्ति के समय प्रकट हुए शुभ शकुनसूचक चिह्न तथा निर्वाण के समय हुए चमत्कार भी समाविष्ट हैं। ये दृश्य पूर्णतः यथातथ्य और सुन्दर बनाये गये हैं

चीनी यात्री ह्वेनत्सांग ने यहाँ आकर, जो विस्मयकारी अनुभव किया होगा उसका अनुभव हम आज इस वर्तुलाकार घाटी की गहरी उत्खनित कला दीर्घाओं के समक्ष पहुँचकर कर सकते है। लगभग आठ सौ वर्षो तक निरंतर बौद्ध भिक्षुओं के साधना स्थल रहा इन गुहा-मंदिरों की निर्माण-प्रक्रिया तथा कलात्मक वैभव की कल्पना जब तक इन्हें न देखी जाय, की ही नहीं जा सकती।

सातवीं शताब्दी मे जैन एवं सनातन धर्म के पुनः सक्रिय होने के कारण बौद्ध-धर्म का साहित्यिक जगत् में लोप हो गया और इन धर्मावलम्बियों की संख्या कम होती गयी। इस तरह से इन कलामण्डपो का स्थापत्य एवं रूपवैभव धीरे-धीरे सघन जगल और विशालाकार वृक्षो मे छिपता गया। यदि अंग्रेज सेनानायक ने इसे सन् 1919 मे पुनः न देखा होता तो शायद और बहुत दिनों तक इसका पता न चलता। अंग्रेज सैनिक की सूचना के आधार पर उनके एक अधिकारी विलियम एस्किन ने 'बाम्बे लिटरेरी सोसाइटी' में एक लेख पढा जिसमें अजन्ता-गुहाओं का उल्लेख किया गया था।

अजन्ता शिलागृही मंदिरों की जानकारी प्राप्त कर सन् 1924 मे लेफ्टीनेण्ट जेम्स ई0 एलेक्जेण्डर ने यहाँ की यात्रा की और इन कला-वीथियों की जानकारी रायल एशियाटिक सोसाइटी को भेजा लेकिन सोसाइटी उनकी समीक्षा से सन्तुष्ट न हुई और उसने सन् 1928 मे डॉ0 जे0 बर्ड को इन शिलागृही वीथियों में शोध कार्य के लिए भेजा। इधर कैप्टन ग्रेसले एव राल्फ महोदय भी अजन्ता के कलामण्डपों मे रुचि ले रहे थे। राल्फ महोदय ने सतत कार्य कर यहाँ के चित्रो का सम्यक् परिचय प्रस्तुत किया जो 'बंगाल एशियाटिक सोसाइटी' के जर्नल में सन् 1928 में प्रकाशित हुआ।

अजन्ता के भित्ति-चित्रो पर विशेष ध्यान तब दिया गया जब 1843 में जेम्स फर्ग्यूसन (Fergusson) ने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के समक्ष अपना एक लेख 'राक कट टेम्पिल्स आफ इण्डिया' शीर्षक पढ़ा। यह लेख उन्होंने अजन्ता शिलागृही मंदिरो के विस्तृत निरीक्षण के बाद प्रस्तुत किया था। उन्होने इस बात पर भी जोर दिया कि इन भित्तिचित्रो की प्रतिलिपियाँ उतारी जायँ और उनकी सुरक्षा के लिए शीघ्र कदम उठाये जायँ। यद्यपि उनके इस लेख का मुख्य उद्देश्य समग्र रूप से भारतीय पुरावशेषों की जानकारी देना था और अजन्ता, एलोरा, कान्हेरी व एलीफैण्टा तथा अन्य शिलागृही कलामण्डपों के भ्रमण के बाद जो स्थापनाएँ निश्चित की थीं उन्हें बताना था फिर भी उनके इस लेख का विशेष प्रभाव हुआ और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टर ने अजन्ता के भित्तिचित्रों की अनुकृति करने के लिए मद्रास आर्मी के मेजर गिल को, जो कुशल चित्रकार भी थे 1844 में नियुक्त किया। उन्होंने लगभग 12 वर्ष तक अथक परिश्रम करके तैल रंग से लगभग 30 पूर्ण आकार की प्रतिलिपियाँ तैयार कीं लेकिन 1857 के विद्रोह के कारण उन्होने यह कार्य बीच में ही छोड़ दिया। ये सभी प्रतिकृतियाँ इंग्लैण्ड भेज दी गयीं जिनमें से 5-6 को छोडकर बाकी क्रिस्टल पैलेस में प्रदर्शित की गयीं। किन्तु 1860 के भयंकर अग्निकाण्ड मे उक्त भवन में प्रदर्शित अजन्ता की प्रतिकृतियाँ अग्नि मे स्वाहा हो गयीं। इन चित्रो के न तो फोटोग्राफ हुए थे और न ही ये चित्र कहीं प्रकाशित हुए थे। इस प्रकार 5-6 चित्र, जो प्रदर्शित न हो सके थे और लघु आकार के उडकट जो मैनिंग्स की 'एनशियण्ट इण्डिया' मे प्रकाशित हुए थे, उस समय बच रहे जिन्हें बाद में पूर्ण सुरक्षा के साथ इण्डिया आफिस में लगा दिया गया

फर्ग्यूसन का भाँति डॉ० बर्ड ने भी 1847 मे अपने लेख के माध्यम से इस विषय पर प्रकाश डाला तथा लोगों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। उन्होने अपने लेख द्वारा बौद्ध धर्म सम्बन्धी भ्रामक मान्यताओं का भी निराकरण किया।

क्रिस्टल पैलेस के अग्निकांड मे स्वाहा हुई अजन्ता की बहुमूल्य एव महत्त्वपूर्ण प्रतिलिपियो के प्रतिस्थापन की माँग जेम्स फर्ग्यूसन एवं डॉ० वर्गीज आदि कलावेत्ताओं ने भारत सरकार से की। उनकी इस माँग पर भारत सरकार ने 5,000 रुपये इस कार्य हेतु स्वीकृत किया और बम्बई स्कूल आफ आर्ट के प्राचार्य जॉन ग्रिफित्स को इस कार्य हेतु तैयार किया गया। जॉन ग्रिफित्स एक कर्मठ एवं अनुभवी कलाकार थे अतः उन्होंने इस कार्य को करने का बीड़ा उठाया। ग्रिफित्स महोदय अपने कला विद्यालय के प्रतिभावान् छात्रों के साथ इस कार्य मे जुट गये और अनेक कष्टो एव व्यवधानों का सामना करते हुए इन शिलागृही मंदिरों के चार बृहत् आकार के भित्तिचित्रों की प्रतिलिपियाँ तैल रंग के माध्यम से तैयार कीं जिनके कैनवास का कुल आकार 122 वर्ग फीट तथा छत पर बने हुए चित्रों के लिए अनुमानतः 280 वर्गफीट कैनवास का प्रयोग किया था। इन शिलागृही मंदिरों की मूर्तियो के 16 साँचे भी बनाये गये। जे० वर्गीज ने लिखा है कि भारत सरकार से प्राप्त 5,000 रुपये मे से कुल चार हजार छह सौ उनहत्तर रुपये चौदह आने नौ पाई इस कार्य पर उस समय व्यय हुए थे।

ग्रिफित्स महोदय ने दस वर्ष के अथक परिश्रम और अटूट लगन से अपने छात्र कलाकारो के सहयोग से जो प्रतिलिपियाँ तैयार कीं उनका भी वही हस्र हुआ जो मेजर गिल की प्रतिलिपियो का हुआ था। 12 जून 1885 के दिन साउथ केन्सिगटन (South Kensigton) के इण्डियन म्यूजियम मे आग लग जाने के कारण ग्रिफित्स द्वारा तैयार कराये गये अजन्ता भित्तिचित्रो की 87 प्रतिलिपियाँ अग्नि को समर्पित हो गयीं। यद्यपि ग्रिफित्स महोदय ने इस प्रतिलिपियो को लदन भेजे जाने का विरोध किया था। ग्रिफित्स महोदय का कहना था कि इन महत्त्वपूर्ण प्रतिलिपियों को भारतवर्ष मे रखा जाय और यदि बहुत ही आवश्यक हो तो इनकी द्वितीय प्रति बनवाने के बाद ही इन्हे इग्लैण्ड भेजा जाय लेकिन अग्रेज अधिकारियों ने उनकी एक न सुनी और इस प्रकार अजन्ता भित्तिचित्रों पर किये गये महत्त्वपूर्ण कार्य का अधिकतम भाग पुनः काल के कराल गाल मे समा गया।

इसके पश्चात् ग्रिफित्स महोदय ने बड़े भरे मन से अजन्ता पुनः गये जहाँ रहकर चुने हुए सुन्दर भावपूर्ण चित्रो की प्रतिलिपियाँ तैयार कीं और उन्होंने 1896 में दो खण्डों में 'द पेण्टिग ऐट द बुद्धिस्ट केव ऐट अजन्ता' प्रकाशित कराया। उनके द्वारा तैयार की गयी 56 प्रतिलिपियाँ लदन के अलबर्ट म्यूजियम के भारतीय कक्ष में प्रदर्शित हैं।

सन् 1910 में 'द टाइम्स' मे सर जार्ज वुडवर्ड का शोधपत्र प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने एव अन्य कलाविदों ने अजन्ता के चित्रों की समीक्षा की थी।

सन् 1907 की शीत ऋतु में लेडी हेरिंघम (Lady Henngham) अजन्ता चित्रो की ख्याति से प्रभावित हो भारत आयीं और उन्होंने कई बार अजन्ता शिलागृही मंदिरों के दर्शनोपरान्त इनके चित्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार करने का निर्णय लिया। सन् 1911 मे लेडी हेरिंघम और उनके सहयोगी जिनमे भारतीय कलाकार नन्दलाल बोस, असितकुमार हालदार, समरेन्द्रनाथ गुप्त, सईद अहमद तथा मुहम्मद फजलुद्दीन भी थे तीसरी बार अजन्ता की कलाकृतियों के प्रतिरूप बनाने मे लग गये इस बार उनका माध्यम जलरग रहा और इस कार्य में किसी सरकारी तंत्र का हाथ भी





अजन्ता गुहा-मन्दिरों का विहंगम दृश्य

नही था। इस प्रकार क्रमिक भ्रमण मे तैयार की गयी उनकी प्रतिलिपियॉ जिनमें स्व० नन्दलाल बोस, स्व0 असितकुमार हालदार, वेकटप्पा, एस० एन० गुप्त आदि भारतीय कलाकारों के अधिकतम कार्य थे, को 'अजन्ता फ्रेस्को' नाम से इण्डिया सोसाइटी ने सन् 1915 मे प्रकाशित किया।

अजन्ता के ये शिलागृही मदिर भारतवर्ष के स्वतत्र होने एव राज्यों के पुनर्गठन के पहले हैदराबाद राज्य के अन्तर्गत थे। हैदराबाद के निजाम ने 1914 मे पुरातत्त्व विभाग की स्थापना की और 1915 मे सर सैयद अहमद खाँ जो लेडी हेरिंघम के निदेशन मे कार्य कर चुके थे, को अजन्ता भित्तिचित्रो की उत्कृष्ट प्रतिलिपियाँ तैयार करने के लिए, यहाँ का अध्यक्ष नियुक्त किया। प्रारम्भ में पुरातत्त्व विभाग का कार्य गुहाओं में प्रतिलिपि सम्बन्धी कार्य मे संलग्न कलाकारों को सरक्षण एवं विशेष सुविधा प्रदान करना था। वह आवास व्यवस्था, सडक निर्माण, विवरण, प्रकाशन तथा अन्य छोटे-छोटे कार्यों मे ही संलग्न रहा लेकिन बाद मे उसने अजन्ता के चित्रो को अपक्षय तथा विनाश से बचाने के लिए विस्तृत योजना बनायी जिसके अन्तर्गत 1918 मे रोम मे स्थित ब्रिटेन के राजदूत सर रीनल रॉड की सहायता से इटली के दो विशेषज्ञ प्रो० लोरेजो सीकोनी (Lorenzo Cecconi) और काण्ट ओर्सिनी (Count Orsini) को भारतवर्ष बुलाया गया और उन्हे अजन्ता भित्तिचित्रो के सुरक्षात्मक कार्य एव सफाई में लगाया गया। ये दोनो व्यक्ति भित्तिचित्रो के जीर्णोद्धार सम्बन्धी कार्य के विशेषज्ञ थे। उन्होने 1920 से 1922 तक कार्य करके न केवल अजन्ता के चित्रो को किसी हद तक सुरक्षित किया वरन् पुरातत्त्व विभाग के लोगों को इस कार्य मे प्रशिक्षित भी किया।

इसके बाद कुछ अधिक उत्साही और अनुभवहीन अधिकारियो ने अजन्ता चित्रों पर वार्निश लगवा दिया जो चित्रो को और अधिक स्पष्ट एव उनमे चमक लाने के उद्देश्य से किया गया लेकिन कुछ दिनों के बाद उसका दुष्परिणाम सामने आने लगा। ये चित्र धीरे-धीरे धूमिल होने लगे और अन्दर-ही-अन्दर सीत की वजह से फगस लगने लगा और उनका अपक्षय तीव्रता से होने लगा।

सन् 1953 में भारत सरकार के सर्वेक्षण विभाग ने इन शिलागृही मंदिरों को अपने अधिकार-क्षेत्र मे ले लिया तथा चित्रो की सुरक्षा एव देखभाल के लिए विशेष प्रयत्न प्रारम्भ किये। 1976 से इन चित्रों का विशेष सरक्षण कार्य चल रहा है।

अजन्ता गुहा-मंदिर का निर्माण

अजन्ता गुहा-मदिर-समूह मे कुल 30 गुहा-मदिर है। ये शैल मदिर लगभग 250 फुट ऊँची सीधी खड़ी हुई एक अर्द्धचन्द्राकार पहाडी चट्टान की तलहटी में स्थित हैं और लगभग 1 कि0 मी0 तक पश्चिम से पूर्व तक फैले हुए है। क्रम संख्या 1 गुहा-मंदिर पश्चिमी सिरे पर तथा क्र० स० 28 पूर्वी सिरे पर स्थित है। बघोरा नदी इसकी घाटी मे प्रवाहित होती है।

इन गुहा-मंदिरों का निर्माण-काल अत्यधिक लम्बा है। इसका निर्माण ई० पू० लगभग दूसरी सदी से प्रारम्भ होता है और सातवीं सदी के आते-आते समाप्त हो जाता है। शासन-परम्परा के अनुसार इसका निर्माण शुगवशीय राजाओ के शासनकाल से प्रारम्भ होता है और काण्व, सातवाहन, वाकाटक और नल राजवशो के शासनकाल को पार करता हुआ चालुक्य वंश के अभ्युदय के साथ समाप्त हो जाता है शुग और काण्व राजाओं का ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी है सातवाहनों का ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ होकर

पाँचवीं सदी तक आता है और वाकाटक और नलो का शासनकाल पाँचवीं एवं छठी शताब्दी माना गया है। ई0 सन् 642 में चालुक्यराज पुलकेशी द्वितीय नरसिंह वर्मन् पल्लव के हाथो पराजित होता है और समस्त दक्षिण प्रदेश मे अराजकता फैल जाती है। इस प्रकार धीरे-धीरे अजन्ता वीरान होने लगता है।

अजन्ता के निर्माण में सबसे अधिक योगदान वाकाटक राजवंश का है। इस राजवंश के राज्याधिकारी बौद्ध धर्मानुयायी थे। गुहा-मंदिर क्र० सं० 16 में पाये गये एक अभिलेख से विदित होता है कि वाकाटक नृपति हरिषेण के अमात्य वराहदेव ने अजन्ता के सर्वश्रेष्ठ 'सुवीथि' गुहा-मंदिर, 16 और 17 विहार और 19 चैत्य गृह का निर्माण कराकर बौद्ध संघ को प्रदान किया था। इस काल में अजन्ता की चित्रकला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुकी थी।

अजन्ता में तीन गुहा-मंदिर ईसा पूर्व काल के हैं बाकी ईसवी सन् आरम्भ होने के बाद निर्मित हुए हैं। ईसा पूर्व काल के तीन गुहा-मंदिरो मे से 10 और 9 चैत्य मंदिर हैं और क्र0 स0 12 विहार मण्डप है। इसमें भी गुहा-मंदिर क्र0 स0 10 सर्वाधिक प्राचीन है।

धार्मिक दृष्टि से गुहा-मंदिर क्र0 सं0 8, 9, 10, 12 और 13 हीनयान काल के है और ये सम्भवत: ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर ईसवी दूसरी शताब्दी के बीच में उत्खनित एवं उत्कीर्ण किये गये हैं। बाकी गुफाएँ महायान काल की है जो 450 ई0 से 642 ई0 के बीच बनायी गयी। महायान काल के 19 एवं 26 चैत्य मंदिर है तथा 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 11, 15, 16, 17, 18, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 28, 29 विहार मण्डप हैं। इस प्रकार अजन्ता गुहा-मंदिर निर्माण-काल को दो भागो में बाँटा जा सकता है जिसकी अपनी-अपनी विशेषता दिखायी पड़ती है। हीनयान काल का स्थापत्य एवं कला सादगीपूर्ण था जबकि महायान काल में आकर इसमे अलंकरणात्मक प्रवृत्ति बढ़ जाती है। विशाल और आकर्षक मुख भागो की रचना, नक्काशीदार खम्भे, मूर्तियो से सुशोभित दीवार की खुदाई और सुन्दर चित्रकारी महायान काल के गुहा-मंदिरो की विशेषता है। पारम्भिक गुहा-मंदिरो और बाद के गुहा-मंदिरो के बीच, समय का जो बड़ा अन्तराल है शायद उससे भी इन कला-मण्डपो की साज-सज्जा में अन्तर आया है। प्राचीनता की दृष्टि से गुहाओं का निर्माण क्रम इस प्रकार है—क्र0 सं0 10, 9, 12, 13, 8, 11, 6,7, 16, 17, 19, 26, 1 और 2 बाकी 15 गुहाएँ अधूरी हैं।

भित्ति चित्रण-विधि एवं रंग योजना

अजन्ता गुहा-मंदिर के भित्ति पर जो चित्र बनाये गये हैं उनका चित्राधार किस प्रकार तैयार होता था और चित्रण विधि क्या थी इस पर वैज्ञानिक दृष्टि से परीक्षण किया गया है और बहुत-सी बातो पर प्रकाश पड़ा है। बहुत-से कलाविदो और विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से यहाँ की भित्ति चित्रण विधि पर अपने मत व्यक्त किये हैं। सम्पूर्ण अध्ययन एवं विश्लेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रचीन भारतीय परम्परा के आधार पर विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्र प्रकरण मे चित्राधार अथवा मणिभूमि तैयार करने की जो विधि बतायी गयी है उसी से मिलती-जुलती विधि तथा तकनीक का यहाँ अनुपालन किया गया है।

गुहा-मंदिर की दीवारे जो पत्थर की थीं उन्हें सीधा एवं समतल करने के बाद उनमें छेनी से छोटे-छोटे छेद बनाये जाते थे और सतह को खुरदुरा कर दिया जाता था। यह इसलिए किया जाता था जिससे इस पर किया गया पलस्तर पत्थर को मजबूती से पकड़ ले। पलस्तर का यह मसाला चट्टानों की बारीक रेत चूनामिट्टी गोबर, भूसा के रेशे आदि के साथ मुद्ग

काढे, गोंद अथवा अन्य चिपकानेवाले पदार्थ मिलाकर बनाये जाते थे। चित्रसूत्र में मसाला बनाने की जो विधि दी गयी है उन सामग्रियो के इस्तेमाल किये जाने से भी इन्कार नही किया जा सकता। कुछ गुहाओं मे गोंद की जगह जिप्सम का प्रयोग भी दिखायी देता है। इस प्रकार तैयार मसाले को खुरदरी दीवार पर बडी सफाई से लगाया जाता था। कहीं-कही मसाले की दो परत चढायी जाती थी। किंचित् गीला रहने पर पलस्तर के ऊपर चूने का लेप चढाया जाता था। चित्रो की चमक देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि इस चूने की सतह की घुटाई भी की जाती थी। इस सतह पर विविध रगो से चित्रो का निर्माण होता था।

मणिभूमि अथवा चित्राधार तैयार होने के बाद हलके गेरू रंग (इण्डियन रेड) से तूलिका (ब्राश) द्वारा रेखाकन किया जाता था। भित्तिचित्र मे केवल खनिज रंगों का ही प्रयोग होता था जिससे चूने के प्रभाव से रंग हलके न पडे। अजन्ता के चित्रों में प्रमुखतया पीले, लाल, नीले, सफेद, काले और हरे रग का प्रयोग दिखायी पड़ता हैं। नीले को छोड़कर ये सभी रंग स्थानीय रूप से उपलब्ध है। नीला रंग शायद बाहर से आयात किया गया है। यहाँ के चित्रो से भी यह प्रमाणित होता है कि विदेशियो से यहाँ के लोगो का सम्पर्क रहा है। काला रग काजल से तैयार किया गया है। चित्रसूत्र के अनुसार विभिन्न रंगों को बनाने की जो प्रक्रिया बतायी गयी है, हो सकता है उस प्रक्रिया से भी कुछ रग बनाये गये हो अथवा वनस्पतियो से कुछ रंग लिये गये हो। पीला रग पीली मिट्टी से, लाल रग गेरू से तथा सफेद रग दुधिया मिट्टी अथवा जिप्सम से तैयार किया जाता था। हरा रंग स्थानीय हरे पत्थरो से तैयार होता था। रंगो के रासायनिक विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इन रंगो मे गोद मिलाकर चित्रण किया जाता था। रगो का उपयोग स्वतन्त्र रूप से और दो या अधिक रगो को मिलाकर किया जाता था। आकृति मे रग भरते समय विषयवस्तु तथा वातावरण का ध्यान रखते हुए छाया-प्रकाश के अनुसार हल्के अथवा गहरे रग का उपयोग किया जाता था।

अजन्ता चित्रों की विषयवस्तु

अजन्ता के भित्तिचित्रों की प्रमुख विषयवस्तु गौतमबुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं तथा जातक कथाओ पर आधारित है। 'जातक' शब्द का अर्थ जन्म सम्बन्धी विकासवाद है। यह शब्द जाति-विशेष से लिया गया है और किसी जाति के अस्तित्व में आने के लिए सहस्रों वर्ष लग जाते हैं। इसी प्रकार बुद्धत्व प्राप्ति के लिए किसी प्राणी को अनेक जन्म धारण करने पडते हैं। भगवान् बुद्ध को भी बुद्धत्व प्राप्त करने के पहले अनेक जन्म लेने पड़े थे। इन जन्मो मे वे 'बोधिसत्त्व' कहलाये। 'बोधि' का अर्थ बुद्धत्व तथा 'सत्त्व' का अर्थ है— प्राणी अर्थात् बुद्धत्व प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील प्राणी- 'बोधिसत्त्व'। जातक कथा मे पाँच सौ सैंतालीस जन्मो का उल्लेख है। इसी जातक कथा मे से बोधिसत्त्व के विभिन्न जन्मो, कार्यकलापों का अजन्ता के इन कला-मण्डपों में विशेष चित्रण दृष्टिगत होता है।

बौद्ध धर्म से अनुप्रमाणित अजन्ता की कला वीथिकाओ मे भगवान् बुद्ध के अनेक रूपो का चित्रण दिखायी पड़ता है। भगवान् बुद्ध सर्वजनहिताय एव सर्वजन-सुखाय बार-बार शरीर ग्रहण करते हैं। वे जब चाहें पूर्ण मोक्ष प्राप्त कर सकते है लेकिन जब तक ब्रह्माण्ड मे एक भी ऐसा व्यक्ति बचा रहेगा जिसे मुक्ति (निर्वाण) न मिल सकी हो वे अवतार लेते रहेगे और अपने सचित पुण्य को वितरित कर मानव उद्धार मे सलग्न रहेंगे। बोधिसत्त्व के इस उदार कल्पना से यहाँ की सम्पूर्ण कला दीर्घाएँ है

यहाँ की चित्रित कला-दीर्घाओ में कुछ पौराणिक कथाओ और दन्त-कथाओ के चित्र भी प्राप्त होते है। भारतीय नाट्यशास्त्र के अभिधान पर नाटको मे वर्णित राजदरबारों तथा साधारण जीवन के अनेक प्रसगो का चित्रण यहाँ प्राप्त होता है। राजा-प्रजा, योद्धा-सामन्त, दाता-भिखारी वृद्ध-बालक, स्त्री-पुरुष, क्रेता-विक्रेता, श्रोता-उपदेशक, प्रेमी-प्रेमिका, भोगी-योगी सभी अपनी भूमिका में खोये हुए हैं। इसमें ससार मे सतरण करनेवाले भी हैं और गगनविहारी भी राजदरबारी भी हैं और पथचारी भी, नगरनिवासी भी है और क्रीडाविलासी भी। सभी चित्रो मे उल्लसित जीवन का आनन्द, शारीरिक सौन्दर्य का उदात्त निखार, पशु-पक्षियो मे रम्यत्व तथा लता-वृक्षो की नैसर्गिकता अपनी सम्पूर्ण ज्योत्स्ना के साथ उजागर हुआ है। यहाँ के चित्रो मे समकालीन विचारधारा तथा जीवनदृष्टि की सच्ची झलक दिखायी देती है। अजन्ता के चित्रित प्रमुख मण्डपो की विषयवस्तु निम्नवत् है:-

गुहा-मंदिर क्र. स. 1

(क) **घटना प्रसंग :** नन्द की दीक्षा, अज्ञात कथा, मार विजय, बोधिसत्त्व पद्मपाणि, बोधिसत्व वज्रपाणि, काली राजकुमारी, श्रावस्ती का चमत्कार, राजसभा मे विदेशी यात्रियो का स्वागत, उपासक, सज्जा चित्र इत्यादि।

(ख) **जातक कथाएँ :** शिबि जातक, शखपाल जातक, महाजनक जातक, महाउम्मग्ग जातक, चपेय जातक इत्यादि।

गुहा-मंदिर क्र. सं. 2

(क) **घटना प्रसंग ·** तुषित स्वर्ग में बोधिसत्त्व, महारानी माया का स्वप्न और गर्भधारण महारानी माया का पितृगृह गमन, बुद्ध का जन्म, शक्र द्वारा नवजात शिशु को हाथो मे लेना, बुद्ध के सात कदम, पूर्ण अवदान, श्रावस्ती का चमत्कार, सहस्र बुद्ध, प्रासाद दृश्य, इन्द्रलोक दृश्य इत्यादि।

(ख) **जातक कथाएँ :** महाहस जातक, क्षातिवादी जातक, रुरुजातक, विधुर पंडित जातक, मैत्रीबल जातक इत्यादि।

गुहा-मंदिर क्र. सं. 9

(क) **घटना प्रसंग :** नागराजा, पशुओं का खेदा, स्तूप अर्चना इत्यादि।

गुहा-मंदिर क्र स. 10

(क) **घटना प्रसंग :** बोधिवृक्ष पूजा, स्तूप पूजा इत्यादि।

(ख) **जातक कथाएँ :** सामजातक, छदन्त जातक इत्यादि।

गुहा-मंदिर क्र. सं. 11

(क) **घटना प्रसग :** नन्द की कथा, विरह व्याकुल रानी, तालाब का दृश्य, भयानक आकृति, बोधिसत्त्व इत्यादि।

(ख) **जातक कथाएँ :** हस्ति जातक।

गुहा-मंदिर क्र. सं. 16

(क) **घटना प्रसंग :** तुषित स्वर्ग में उपदेश, नन्द की दीक्षा, मरणासन्न राजकुमारी, आकाशचारी अप्सरा, अजातुशत्रु, बुद्ध के जीवन से सम्बिन्धित चित्र- सुजाता से खीर ग्रहण इत्यादि

(ख) **जातक कथाएँ** : हस्तिजातक, महाउम्मग्ग जातक इत्यादि।

गुहा-मंदिर क्र. सं. 17

(क) **घटना प्रसग** जीवन चक्र, राजदम्पति द्वारा भिक्षादान, आकाशचारी गन्धर्व एवं इन्द्र, अप्सरा, मानषी बुद्ध, नलगिरिदमन, बुद्ध के जीवन के दृश्य, सिंहलावदान, प्रसाधिका, मण्डप-सज्जा (आलेखन) इत्यादि।

(ख) **जातक कथाएँ** · षड्दत जातक, महाकपि जातक, हस्ति जातक, हस जातक, विश्वंतर जातक (वेस्सन्तर जातक), सुतसोम जातक, मत्स्य जातक, साम जातक, ऋक्ष जातक, न्यग्रोध मृग जातक इत्यादि।

गुहा-मंदिर क्र. सं. 19

(क) **घटना प्रसंग** . कपिलवस्तु प्रत्यागमन, बुद्ध चित्र इत्यादि।

अजन्ता भित्ति-चित्रो के विषय-वस्तु का विस्तार बहुत अधिक है। जातक कथाओं और घटना प्रसग चित्रो के अतिरिक्त जन-जीवन से सम्बन्धित अनेक चित्र मिलते है। देवी-देवताओ, गधर्व-किन्नर, यक्ष-यक्षिणी, अप्सरा, विद्याधर आदि का आलंकारिक चित्र अजन्ता के कलाकारो की अपूर्व चित्रण क्षमता के परिचायक हैं। विभिन्न जीव-जन्तुओं और लता-पुष्प-पल्लव से युक्त आलेखन उनके सयोजनक्षमता और रूपविन्यास के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

आगे प्रत्येक गुहा-मदिरो का क्रम से वर्णन किया जा रहा है। प्रत्येक गुहा-मदिर की स्थिति, स्थापत्य तथा मूर्तिशिल्प के सक्षिप्त परिचय के साथ उनके कला-वीथिका मे प्राप्त चित्रो पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। कुछ चित्रावशेष जो अत्यन्त धुँधले हो गये है, जिन्हें समझना कठिन था, को छोड़ दिया गया है। कुछ ऐसे चित्र भी यहाँ दिखायी पड़ते हैं जिनके अगल-बगल का भाग नष्ट हो चुका है जिनमे किसी आकृति का केवल आभास मात्र प्राप्त होता है। इन चित्रो के बारे में स्पष्ट मत प्राप्त न होने के कारण भी छोडना पडा। कुछ ऐसे चित्र भी हो सकते हैं जिन्हे किसी प्रसंग से न जोड पाने की मजबूरी की वजह से भी छोडना पडा। चित्र की विषय-वस्तु पर अपने तरीके से भी विचार किया गया है जो शोधार्थियों के लिए महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं।

गुहा-मंदिर क्र. सं.1

यह एक सुरक्षित विहार गृह है और अजन्ता समूह मे शैल स्थापत्य का उत्कृष्ट गुहा-मदिर है। मुखमण्डप (बरामदा), सभामण्डप, अन्तराल, गर्भगृह तथा अपवरक (कोठरियाँ) अच्छी दशा मे है। मुखमण्डप की लम्बाई 64 फीट तथा चौड़ाई 9 फीट 3 इंच है। बरामदे की ऊँचाई 13 फीट 6 इंच है। मुखमण्डप के छहों स्तम्भ घनाकार आधार पर अनेक पहलुओं में तराशे गये हैं। भिन्न-भिन्न पद्धतियों की उकेरियों मे काटे गये इन भव्य स्तम्भों के मध्य भाग में बुद्ध तथा उनके जीवन के विभिन्न प्रसग तथा उडते हुए विद्याधर उकेरे गये है। बरामदे के दोनों ओर एक-एक अपवरक बनाये गये हैं। सभामण्डप में प्रवेश के लिए तीन द्वार निर्मित है तथा मध्य द्वार के दोनो ओर दो वातायन स्थित है जिनसे सभामण्डप में पर्याप्त हवा एव रोशनी प्रविष्ट होती रहती है। ये प्रवेशद्वार एवं वातायन सुन्दर उकेरियों से सुसज्जित हैं जिनमे गगा एव यमुना की मूर्तियों सहित लतापत्राकृतियों के बीच अनेक आकृतियाँ सुशोभायमान हैं। मुखमण्डप के प्रवेशद्वार से प्रवेश करते ही हम सभामण्डप की कलात्मक वीथिका में पहुँचते हैं जिनकी भित्तियो पर यहाँ के सबसे अधिक सुरक्षित चित्रो का अकन दिखायी पड़ता है वर्गाकार है जिसकी लम्बाई एव चौड़ाई 60 फीट है यह 20 स्तम्भो तथा 4 कुड्यस्तभों पर स्थित है के अगल बगल

एव पिछले भाग मे बौद्ध भिक्षुओ के रहने के लिए 14 अपवरक उत्खनित हैं जिनकी पिछली दीवार पर आला बनाया गया है। प्रवेशद्वार के ठीक सामने अन्तराल एव गर्भगृह बने है। अन्तराल 10 फीट लम्बा तथा 9 फीट चौड़ा है जिनके स्तम्भो पर सुन्दर नायिकाएँ उत्कीर्ण है। गर्भगृह भी 20 फीट की लम्बाई और चौड़ाई के वर्ग में उत्खनित है। इसमे पद्मासनस्थ भगवान् बुद्ध धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा मे समाधिस्थ है। इनकी भव्य प्रतिमा के साथ उनके सेवको की बहुत उभारदार प्रतिमाएँ उकेरी गयी है। गर्भगृह के प्रवेशद्वार के निचले भाग में पाँच फणो के घटाटोप से युक्त नाग द्वारपाल, ऊपर मिथुन मूर्तियाँ तथा कुछ परे गंगा-यमुना की आकृतियाँ अंकित है। सब मिलाकर यह गुहा-मंदिर स्थापत्य, मूर्तिशिल्प एवं चित्रकला की उत्कृष्ट कलाकृतियो से भरा-पूरा है।

इस गुहा-मंदिर के चित्र वाकाटक काल के हैं। कुछ चित्रो के आधार पर विद्वानो ने इसे ई० छठी शताब्दी का माना है लेकिन अन्य चित्र स्पष्टत• पाँचवीं शताब्दी मे रखे जा सकते है। इसी क्रम में शिलागृही मंदिर सं० 16 एव 17 के चित्र रखे गये है। पहले एवं सोलहवे विहार गृह के शिल्प में पर्याप्त साम्य है। महायान परम्परा से अनुप्राणित इस भव्य कला-वीथी के चित्रो मे भगवान् बुद्ध के सर्वजनहिताय एवं सर्वजनसुखाय रूप का चित्रण हुआ है। बोधिसत्त्व की उदार कल्पना से यहाँ की सम्पूर्ण कला-दीर्घा आलोकित है। इस कला-दीर्घा के अधिकतर चित्र 'जातक' कथाओ पर आधारित है। जातक कथा में बोधिसत्त्व के पाँच सौ सैंतालीस जन्मो का उल्लेख है। इसी जातक कथा से बोधिसत्त्व के विभिन्न जन्मो के कार्यकलापों का इन कलामण्डपो मे विशेष चित्रण किया गया है।

शिबि जातक—शिला-गृही मंदिर के मुख्य द्वार से विशाल मंडप मे प्रवेश करते ही बायी ओर की भित्ति (मुख्य द्वार तथा वातायन के मध्य) पर शिबि जातक का चित्राकन दिखायी पडता है। बोधिसत्त्व ने राजा शिबि के रूप मे अवतार लिया और वे अपनी उदारता और अद्भुत दया के लिए विख्यात हुए। इन्द्र तथा अग्नि महाराज शिबि की परीक्षा लेने हेतु क्रमशः बाज एव कबूतर का रूप धारण करते हैं। जख्मी एवं डरा हुआ कबूतर अपने प्राण बचाने की प्रार्थना करता हुआ राजा शिबि से शरण माँगता है। दयालु राजा अभयदान प्रदान कर उसे शरण देते हैं लेकिन ब्याध उसे अपना भक्ष्य बताकर उसकी माँग करता है। इस पर राजा कपोत के तौल के बराबर अपना मांस देने को तत्पर हो जाता है। तुला के एक पलडे पर कबूतर बैठता है और दूसरे पर राजा शिबि अपने शरीर के मांस के टुकड़े काट-काटकर डालता जाता है और अन्त मे स्वय बैठ जाता है। परीक्षा में सफल होने पर इन्द्र तथा अग्नि उसे पूर्णरूपेण स्वस्थ कर देते हैं। चित्र के प्रथम दृश्य में आहत कबूतर राजा शिबि की गोंद मे पड़ा शरण माँग रहा है। दूसरे दृश्य मे राजा शिबि तराजू के पास खड़े हैं जो अपनी रानियों एवं दासियों से घिरे है। अन्तिम दृश्य मे अग्नि तथा इन्द्र को साधु रूप में चित्रित किया गया है और राजा को श्रद्धाभिव्यक्ति के रूप मे कुछ दे रहे हैं। यह चित्र अत्यधिक खराब हो गया है फिर भी कथानक समझ में आता है। इस चित्र की कथा पालि जातको में वर्णित शिबि जातक से थोड़ा भिन्न है। पालि कथा में महाराज शिबि द्वारा दान मे अपने नेत्र देने की बात बतायी गयी है[1] किन्तु कपोत के बदले अपने मांस देने की बात महाभारत तथा सूत्रालंकार की कथा मे ही मिलती है। चित्र की कमजोरियों को देखते हुए ऐसा अनुमान लगता है कि यह चित्र वाकाटक काल के अंत का है।

---

1. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, जातक चतुर्थ खण्ड, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पृष्ठ 609

ाक्षा—शिबि जातक के बाद एक ऐसे चित्र-शृखला का अकन दिखायी पडता
ा मे उत्कृष्ट है। इस चित्र-शृखला मे बुद्ध के सौतेले भाई नंद के बौद्ध धर्म
प्रसंग का चित्रण है। चित्रपट्टिका के मध्य में एक दु:खी राजकुमारी को चित्रि
ी बहुत ही कृशकाय एवं विषादग्रस्त दिखायी देती है। वह अपनी सखी से कु
ा दासी के हाथ में थाल है जिसमें प्रसाधन सामग्री है। कक्ष के द्वार पर कंचुक
धान रक्षक) खडा है और परिचारक राजकन्या से कुछ कह रहा है। कंचुक
ा कुछ पहने है तथा थोडे आभूषणो से युक्त है। उसके हाथ में दंड भी है। कु



बुद्ध अथवा भिक्षु भी माना है जो ठीक नहीं लगता। इस चित्र में विभि
ाव-भाव तथा उनके कार्य-कलापों को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से व्यक्त कि

शृंखला के आगे तथा नीचे का भाग बहुत-कुछ मिट चुका है। कुछ वर्ष पह
ाई द्वारा कुछ चित्र प्रकाश मे आये है जिसे सूदन तथा किन्नरी की प्रेम-कथा
ा गया है।

जातक—इस जातक-शृखला का अधिकांश भाग नष्ट हो चुका है लेकिन जो कु
श्रेष्ठ है और मन पर गहरा प्रभाव डालता है। बोधिसत्त्व के नाग रूप मे जन्म
ग की कथा शखपाल जातक की विषयवस्तु है।[1] बुद्ध भगवान् ने मगध
ूप में जन्म लिया। युवा राजकुमार को राजपाट सौंपकर उनके पिता ने वानप्र
ोगों को अपने प्रवचनों के द्वारा सदुपदेश देने लगे। बोधिसत्त्व प्राय. अपने पिता

जातक पचम खण्ड हिन्द साहित्य सम्मेलन, पृष्ठ 244

मिलने जगल स्थित उनके आश्रम में जाया करते थे जहाँ उनके पिता से प्रवचन
के राजा भी आया करते थे। उसी समय नागराज के ऐश्वर्य से उन्हें मोह उत्पन्न
प्रकार अगले जन्म मे नागकुल के राजकुमार शखपाल के रूप मे उत्पन्न हुए। पूर्व
के कारण वे शीघ्र ही नागलोक के ऐश्वर्य से ऊब गये और भौतिक ऐश्वर्य की अस
बोध होने लगा। इससे छुटकारा प्राप्त करने हेतु उन्होने अपने आप को एक ब
निष्क्रिय छोड दिया। उधर से गुजर रहे शिकारियों के समूह ने उन्हे खूब सताया औ
घायल कर दिया। नथुनो मे रस्सी बाँधकर उन्हे खूब घसीटा लेकिन सर्प योनि मे
कोई प्रतिकार नहीं किया। आलार नामक व्यापारी जो अपने पाँच सौ गाडियो के
गुजर रहा था उसे उनके इस अवस्था पर दया आयी और उसने शिकारियो
शखपाल को मुक्त करवा दिया। शखपाल उस व्यापारी को अपने महल ले गये
आतिथ्य किया। दोनो में धर्म चर्चा हुई और अन्त मे व्यापारी बोधिसत्त्व के शरण मे

इस कला-दीर्घा की बायीं ओर की भित्ति पर बने इस चित्र-शृखला के ऊपरी
के राजा को लोगो को उपदेश देते हुए प्रदर्शित किया गया है जिसमें नागराज एव
भी सम्मिलित हैं। राज महिलाओ का चित्रण अत्यधिक सुरुचिपूर्ण एवं मनोहारी



के ऐश्वर्य के दिग्दर्शन के लिए ही उनका इतने सुरुचिपूर्ण ढग से चित्रण वालो मे एक स्त्री भी है जिसकी पीठ देकर बैठने की मुद्रा बडी आकर्षक निकट अपना दायाँ हाथ रखकर बडी तल्लीनता से प्रवचन सुन रही है। द्वारा नाग राजकुमार शखपाल को सताये जाते हुए दिखाया गया है और (व्यापारी) उनसे शखपाल की मुक्ति के लिए प्रार्थना करता हुआ दिखाया मे बायी ओर शखपाल मानव रूप धारणकर अपने उद्धारकर्ता को निर्वाण । इस चित्र मे मानव आकृतियाँ अत्यन्त सुगठित एव सुनियोजित ढग से नी भावात्मक अभिव्यक्ति एवं सौष्ठव के कारण विश्व की अनुपम कृति कही

नक—शखपाल जातक के आगे मण्डप की बायी दीवार पर एक लम्बी नक जातक का चित्रण हुआ है। मिथिला का राजा युद्ध मे मारा जाता है। महाजनक को लेकर चम्पा आ जाती है। महाजनक बड़ा होने पर व्यापार र्णभूमि की ओर प्रस्थान करते है। रास्ते में जहाज के दुर्घटनाग्रस्त होने के कृपा से वे मिथिला पहुँच जाते हैं और मिथिला की अनाथ नवयुवती र वहाँ के राजा बन जाते हैं। जिस प्रकार अन्य जातको में बताया गया है सुखो से उदासीन रहते हैं यहाँ भी उन्हें कुछ दिनो पश्चात् वैराग्य हो जाता ो से मुँह मोड दीक्षा लेना चाहते है। उनकी पत्नी शिवली उनको मनाती है त्न करती है। अन्त मे स्वय वीतराग बन गयी और सन्यास ले लेती है। यह डी भिन्न है।[1] मूल कथा इस प्राकर है— महाजनक अभी युवक ही थे कि ने घर कर लिया। धन-ऐश्वर्य से उनका मन भर गया। उन्होने राजघाट



जातक षष्ठ भाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पृष्ठ 32

कर सन्यास लेने का निश्चय कर लिया। रानी शिवली को राजा के र
पहुँची। अपने साथ सात सौ सुन्दरियों को लेकर वह राजा के मन को
राजा स्वय इतने बदल चुके थे कि रानी को जब वे रास्ते मे मिले
ाकर नमस्कार किया।

इस चित्र-शृंखला मे कथा का क्रम और प्रसंगों की शृखला टूटी हुई
महाजनक के जहाज के दुर्घटनाग्रस्त होने दृश्य है। बायीं ओर रानी
क सुखों की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न करते हुए दिखायी गयी
झुकी हुई है और वह राजा के पैर पर अपना हाथ रखे हुए है।
नी) भव्य वितान के नीचे बैठे हैं। एक नर्तकी अत्यन्त भावपूर्ण मुद्रा
र्तकी को पूर्ण शृंगार किये हुए दिखाया गया है। सिर पर मुकुट, जूडे
तथा गले में माला पहने हुए है। नर्तकी पूरी बॉह का छीटदार वस्त्र
को सादा दिखाया है जो जघनो तक आ गयी है। कटि के नीचे दूस
ायित) डिजाइन से भरपूर है। नृत्य में गति, लय एवं थिरकन है।
र वाद्य यंत्रो को बजाती हुई नवयुवतियाँ चित्रित की गयी है। भव्य वि
छ झुकी हुई है। राजा के मुखमण्डल पर विराग भाव विद्यमान है।
का घुमाव आध्यात्मिक पवृत्ति की ओर सकेत करता है और इस
द्रा मे अनुराग एव प्रवृत्तिगत भाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।
ाण की ओर आकृष्ट कर रही है। उसका अनुमान है कि राजा का व
ी ओर उन्मुख हो जायगा। इस प्रकार इस चित्र में निवृत्ति एव प्रवृ
ना से चित्रित किया गया है। राजकीय वैभव से परिपूर्ण नृत्य-वादन



वातावरण मे मुखर हो उठा है। नतकी की मुद्रा एव वादकगण को देखकर लगता है कि कलाकार शृंगार मे नायिकाओ के काव्य रूप से भलीभाँति परिचित था। इसके आगे कोठरी के दरवाजे के कारण चित्र-शृंखला के क्रमिक चित्रण मे व्यवधान-सा आ जाता है लेकिन इसी क्रम में आगे के दृश्य मे राजा को घोडे पर सवार होकर राजधानी छोडते हुए दिखाया गया है। राजा को देखती हुई उसकी रानी शिवली की मुखमुद्रा पर व्यथा और विरह के चिह्न स्पष्ट रूप से उभर आये हैं। उसके हाथ मे नीचे की ओर झुका हुआ कमल पुष्प इस विरह व्यथा को और अधिक स्पष्ट करता है जो प्रतीक रूप मे चित्रित है। विरह व्यथा का ऐसा हृदयस्पर्शी चित्रण अजन्ता के कलाकारों द्वारा ही सम्भव था। इसके आगे चित्र के एक भाग में राजा को बौद्ध सन्यासी से उपदेश ग्रहण करते हुए पाते हैं। चित्र मे राजा पूर्ण मनोयोग से प्रवचन सुन रहे हैं लेकिन उनके साथ गये दरबारियों मे से बहुतो का मन उपदेशक की दार्शनिक बातो में नहीं लग रहा है। इस बात की पुष्टि उनकी मुख-मुद्रा एव भाव-भगिमा से स्पष्ट होती है। कलाकार द्वारा मानव की शाश्वत प्रकृति का इतना सूक्ष्म निरीक्षण और उसकी सफल अभिव्यक्ति उसके महान् व्यक्तित्व का परिचायक है। प्रवचन एक आश्रम में हो रहा है जिसके स्वच्छन्द और शान्त वातावरण के सृजन मे कलाकार ने अपनी पूर्ण कुशलता प्रदर्शित की है। आश्रम के उन्मुक्त वातावरण को सजीवता देने के लिए दो मृगो का चित्रांकन बडा मनोरम है। सम्पूर्ण रूप मे यह चित्र-शृखला मानव मन की सूक्ष्मतम भावनाओ को व्यक्त करने मे पूर्ण रूप से सफल रही है।

अज्ञात कथा—महाजनक जातक के बाद जो दृश्य भित्ति पर अकित किया गया है उसके सम्बन्ध मे किसी भी विद्वान् का स्पष्ट मत नहीं प्राप्त होता लेकिन यदि इस छिन्न शृखला को पिछले चित्र-शृखला से जोड दिया जाय तो चित्र-कथा आगे बढती-सी प्रतीत होती है जिसका अन्त अत्यधिक हृदयविदारक एव कारुणिक है। पिछली कथा से यदि हम आगे बढे तो देखते हैं कि राजा घोडे पर सवार हो राजधानी छोड रहा है। सम्भवत॰ वह बौद्ध सन्यासी के प्रवचनो से प्रभावित है और घोडे पर बैठ आव्राजक आश्रम की ओर चल पडता है जहाँ पहुँचकर उसे स्नानादि के द्वारा शुद्ध कर संन्यास की दीक्षा दी जाती है। चित्र के प्रथम दृश्य मे उसे स्नान करते हुए दिखाया गया है। एक व्यक्ति के सिर पर घडा है तथा दूसरा व्यक्ति स्नानादि में उसे मदद दे रहा है। यहाँ राजा का कद थोडा छोटा दिखाया गया है। मण्डप के बाहर साधु-संन्यासी मन्त्रोच्चार कर रहे है। दूसरे दृश्य मे राजा को भव्य मण्डप के अन्दर महिमा महिम संन्यासी के रूप में दर्शाया गया है जहाँ उनका महाभिषेक किया जा रहा है। पास ही 2-3 स्त्रियाँ या किन्नरियाँ निरूपित की गयी है जो सन्यासी की आकृति से कुछ अधिक छोटी है। संन्यासी को एक चौकी पर विराजमान दिखाया गया है। यहाँ यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि सन्यासी राजा के पास रानी की दूतियाँ आयी हुई हैं जो रानी की विरह व्यथा का ब्यौरा दे रही है और उनसे अनुरोध कर रही है कि वे अपने राजमहल में लौट चले। सन्यासी राजा अपनी असमर्थता व्यक्त कर उन्हे लौट जाने को कहता है और यह भी कहता है कि एक बार भिक्षा लेने वह वहाँ आयेगा। इसके बाद का दृश्य अत्यन्त कारुणिक एवं हृदयविदारक है। जब रानी को पता चलता है कि राजा संन्यासी के रूप में नगरागमन कर भिक्षा के लिए उसके पास आ रहा है तो वह विक्षिप्त हो उठती है और उसी विक्षिप्तावस्था मे वह अपने चारों पुत्रो के शीश एक थाल में रखवाती है अपने एक बालिष्ठ अनुचर के द्वारा उसे वह अपने सन्यासी पति के पास लाती है रानी का एक हाथ अपने एक पुत्र के कटे हुए शीश पर है जो



उसके ममतामयी स्नेह का प्रतीक है। उसके चेहरे पर गहन करुणा एवं उत्स
है। रानी के पीछे उसकी दासियाँ स्तब्ध करुण भाव में खड़ी हैं। सामने खड
मर्मान्तक दृश्य को देख विचलित हो उठता है और अपने मन को स्थिर कर
रुद्राक्ष की माला घुमाते हुए मन्त्रोच्चार करता है। माला का झटके के साथ
इस बात को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है। चित्र मे सारा वातावरण क
आप्लावित है। ऐसे कारुणिक दृश्य का अंकन अन्यत्र कहीं नहीं दिखायी पड़त
कथा को पिछली चित्र-कथा से जोड़ दिया जाय तो कथा तो आगे बढ़ती
कथा उस कथा से नहीं मिलती जिसकी चर्चा हम पहले कर आये है अत
शृंखला को संयुक्त कर पुनः देखने की आवश्यकता है।

मार विजय— इस कलामंडप के अंतराल की बायीं ओर की भित्ति पर म
चित्रण प्राप्त होता है। बौद्ध साहित्य में काम, क्रोध, मद, लोभ आदि विकारो
। इन पर विजय पाकर ही बुद्धत्व की प्राप्ति की जा सकती है। कामदेव को
। भगवान् बुद्ध जब बोधिप्राप्ति के दृढ़ संकल्प को लेकर वज्रासीन हुए और उ
से जब बोधि प्राप्ति के निकट पहुँच रहे थे वे मार तथा उसकी सेना के
भूमिस्पर्श मुद्रा में निर्विकार भाव से बैठे हैं तब उन्हें विचलित करने के लिए



ा। उस दल में सुन्दर सुकोमल नारियाँ जो वासना की प्रतिमूर्ति दिखायी पडती विकारो को प्रदर्शित करनेवाले भयानक दानवाकार आकृतियाँ भी हैं। ये सभी ुद्ध के धैर्य को विचलित करने का प्रयत्न कर रहे हैं लेकिन बुद्ध पर इनका ाडता। मार अपनी हार मानकर वहाँ से पलायित हो जाता है। दायीं ओर .फल मार पलायित होता हुआ दिग्दर्शित है। विभिन्न विकारों को भयानक ग्नादि को सुन्दर स्त्रियों के रूप में चित्रित कर यहाँ के कलाकार ने अद्‌भुत देया है। चित्र सयोजन तथा भावाभिव्यक्ति में यह चित्र बेजोड है।

ातक बोधिसत्त्व पद्मपाणि के चित्र के पीछे बायीं ओर एक वितान है जिस क चित्रित है इस चित्र के एक ओर राजा बैठा हुआ है तथा दूसरी ओ

भिक्षा की अपेक्षा में चार भिक्षुओ को दिखाया गया है। वितान मे एव
तथा हाथ मे भिक्षापात्र लिये चार उपासिकाओं के मध्य खड़ा है। कुछ
महाउम्मग्ग जातक से मिलाने की चेष्टा की है। कथा मे प्राज्ञ महोस
व्यक्तियों को खदेड देती है जो उसे बुद्धिमान् व्यक्ति के रूप में धोखा दे
सरल परिवेश में प्रभावोत्पादक है।

शिलाग्रही मंदिर की पीठ की दीवार की बायी ओर विश्व प्रसिद्ध
तथा दाहिनी ओर वज्रपाणि बोधिसत्त्व का अकन प्राप्त होता है। बोधि
कलाकारों का प्रिय विषय रहा है और 10–12 स्थानों पर इनका चित्रण

बोधिसत्त्व पद्मपाणि— अजन्ता का सबसे अधिक विख्यात चित्र ब
जो शांति और विश्वबन्धुत्व का प्रतीक है। पद्मपाणि का चित्र शरीर सौष्ठ
करता है जिसमें एक महामानव की कल्पना की गयी है। बोधिसत्त्व
करुणामय भाव लिये हुए उनकी त्रिभग मुद्रा चैतन्ययुक्त मानवी ऊर्जा र
आकृति व्यक्तित्व की विशालता तथा अर्द्धनिमीलित भावपूर्ण नेत्र अनुपम



बूँदो का संकेत इस आकृति को और रहस्यमय भाव से युक्त कर देता ।
कुट, कुंडल, यष्टि, मुक्तायज्ञोपवीत, केयूर तथा कटक आदि आभूषणों
हाथ मे कमल का पुष्प लिये हैं जो मंगल का प्रतीक है। इस चित्र
अनुचर, उछलते-कूदते बन्दर तथा प्रकृति का प्रतीकात्मक चित्रण सम्पू
मय बना देता है। कुल मिलाकर चित्रकार ने अपनी तूलिका द्वारा विश
का जो भाव पद्मपाणि के मुखमण्डल द्वारा प्रकट किया है वह उसव
ना-धर्मिता का परिचायक है।

णि— बोधिसत्त्व को यहाँ षट्‌रिपुओं के संहारक के रूप में चित्रित कि
नाओ को नष्ट करनेवाले वज्रधारी बोधिसत्त्व की मुद्रा पर शांति का भ





चम्पेय जातक

उनकी आन्तरिक दिव्यता का प्रतीक है। बोधिसत्त्व विभिन्न प्रकार के रत्नजटित तीन शिखरो वाले किरीट मुकुट धारण किये हुए है जिस पर मुक्ता हार शोभायमान है। चौड़े वक्ष पर मध्यमणिवाली यष्टि, मुक्तामहाहार तथा बाँहो पर बाजूबन्द, कानों मे कुण्डल आदि विविध आभूषणो से उनकी सम्पूर्ण देहयष्टि सुसज्जित है जिससे चित्र की भव्यता द्विगुणित हो गयी है। दायीं ओर सम्भ्रान्त नागरिक उन्हें फल-फूल भेंट करते हुए दिखाये गये हैं।

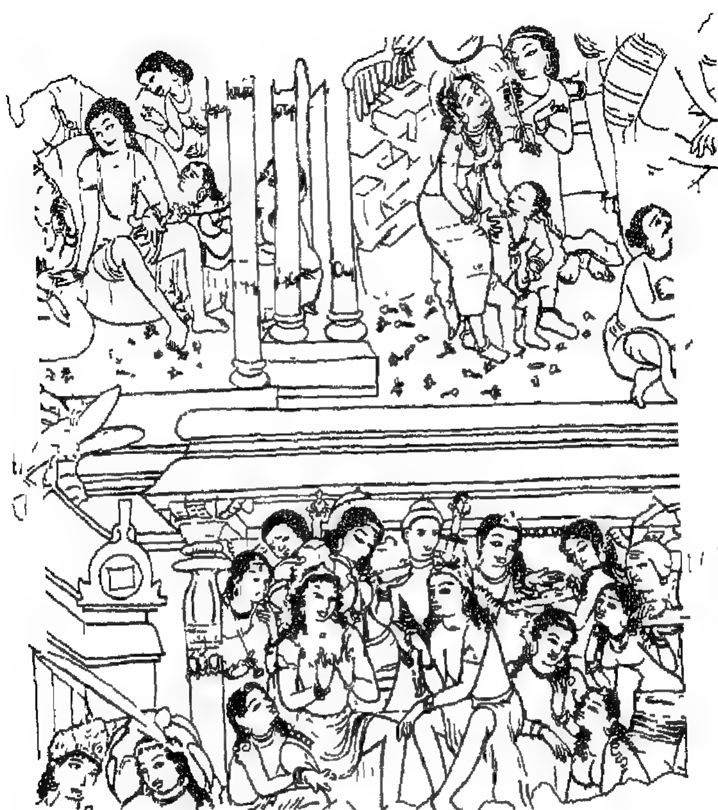
काली राजकुमारी—बोधिसत्त्व के बायी ओर एक नारी का अंकन है जिसे काली राजकुमारी के नाम से संबोधित किया गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह बोधिसत्त्व की पत्नी का चित्र है। शायद सिन्दूरी रंग मे चित्रित होने के कारण इसका रंग काला पड गया हो। इस स्त्री की भावपूर्ण मुद्रा एव इसका रंग सभी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

याजदानी ने इसे संसार की सुप्रसिद्ध कृतियो में से एक माना है।[1] मदनजीत सिंह ने इसे 'शक्ति पण्डारा' कहा जिसका सम्बन्ध अमिताभ से है।[2] यद्यपि इस चित्र के नीचे का भाग नष्ट हो चुका है फिर भी माधुर्यमयी श्यामवर्ण की इस राजकन्या का रूप बड़ा ही लावण्ययुक्त है। चेहरे का भाव वडा ही रहस्यात्मक है। अधखुले नेत्र एव कुछ बड़े आकार के ओठ दुर्बोधिता को व्यक्त करते हैं। स्तन पुष्ट एवं सामान्य आकार से बड़े हैं जिन पर वलयित मोतियों की माला शोभायमान है। गला लम्बा है जिस पर कण्ठहार सुशोभित है। राजकन्या का माथा कुछ ऊँचा है तथा काले केशराशि मे बेदी एवं मोतियों की लडियाँ शोभायमान हैं।

श्रावस्ती का चमत्कार— मंडप के दायीं तरफ श्रावस्ती का चमत्कार अंकित है। भगवान् बुद्ध ने लोक मे अपनी धाक जमाने के लिए कई चमत्कारों का प्रदर्शन भी किया। श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित् के समक्ष भगवान् बुद्ध ने चमत्कार दिखाया था जिसके द्वारा उनको अतिमानवीय शक्ति का परिचय मिला, क्योकि श्रावस्ती राज्य के कुछ धर्मगुरुओं ने बुद्ध की शक्ति पर सदेह प्रकट किया था। चित्र में बुद्ध की आकार-परिवर्तनशीलता की शक्ति का सकेत मिलता है। चित्र मे भगवान् बुद्ध की कई आकृतियो को पद्मासन पर बैठे हुए समानांतर पट्टिकाओ पर ऊपर-नीचे प्रदर्शित किया गया है। कमल दलों से वेष्टित बुद्ध की आकृति मे रंगों का प्रयोग इस खूबी से किया गया है कि चित्र अपने आशय की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से करता है।

चम्पेय जातक— बोधिसत्त्व वज्रपाणि की दाहिनी ओर पिछली दीवार पर चंपेय जातक का चित्र अकित है। बोधिसत्त्व नागराज चपेय के रूप मे अवतरित हुए। बडे होने पर शीघ्र ही राजकीय विलासपूर्ण जीवन एव धन और ऐश्वर्य से वीतराग हो उठे। अपने इस लौकिक शरीर को नष्ट करने के उद्देश्य से निर्विकार हो चींटियों की बिल पर लेट गये जिससे चींटियाँ उनके शरीर का भक्षण कर अपना पेट भर ले और उनको इस शरीर से मुक्ति मिल जाय लेकिन उनकी यह चाह पूरी न हो सकी। एक सँपेरे ने उन्हें पकड़ लिया और नचाकर जीविका अर्जित करने लगा। एक बार सँपेरा उन्हे लेकर वाराणसी के राज-दरबार में पहुँचा और वहाँ उन्हें नचाने लगा। नागलोक की सुमना रानी अपने पुत्र के साथ मानवी रूप मे नागराज चपेय को खोजती हुई वहाँ पहुँच गयी। उसने वाराणसी के महाराजा उग्रसेन से प्रार्थना कर उन्हें मुक्ति दिलवा दिया

1 याजदानी, अजन्ता 'खण्ड प्रथम' पृ० स० 27।
2 मदनजीत सिंह अजन्ता पृ० 72



और उन दोनो ने वाराणसी के महाराजा को नागलोक में आमंत्रित किया कर धन-धान्य से परिपूर्ण कर उन्हे बिदा किया। चित्र के ऊपर बायीं ओर चम्‍ के साथ महल मे बैठे हुए दिखाया गया है। दूसरे दृश्य मे चम्पेय के चले ज विषादपूर्ण मुद्रा में बैठी हुई दृष्टिगत होती है। अगले दृश्य में वाराणसी के दरबार चित्रित किया गया है जिसमे राजा साँप को नचाते हुए देख रहे हैं। भी रानी सुमना एव उसका पुत्र क्षुब्ध हो रहा है। अन्तिम दृश्य में चंपेय राजा गया है। चम्पेय राजा को उपदेश देते हुए पुनः मानव रूप मे चित्रित हैं। अ ने कथा की घटनाओं को चित्र भाषा मे रूपांतरित करते समय अपनी ि कल्पनाशीलता का परिचय दिया है। रंग रेखाओं के माध्यम से विवरणात्मक करने की अद्‌भुत शक्ति इन चित्रकारो के पास थी जो यहाँ के चित्रो से स्पष्ट होता है।

राजसभा में विदेशी यात्रियों का स्वागत— मुख्य द्वार के दायीं ओर की वातायन के मध्य राजदरबार का चित्र अंकित है जिसमें दासियों और द सिंहासनासीन राजा को दर्शाया गया है। दायीं ओर पक्षद्वार में कुछ विदेशी य **प्रवेश कर रहे हैं** ये विदेशी नुकीली टोपी पहने हैं तथा उनके चेहरे पर दाढ

राजा को बहुमूल्य उपहार भेंट कर रहे हैं। पहले व्यक्ति के हाथों मे मोतियों की माला है, दूसरे के हाथ मे सम्भवतः थैली है तथा तीसरा व्यक्ति आभूषणों से भरा थाल लिये हुए है। ऐसा लगता है सातवाहनों की राजधानी प्रतिष्ठान के दरबार का चित्रण इस चित्र में किया गया है जो बौद्ध धर्म एवं इन बौद्ध कलाकारों एवं भिक्षुओं के प्रमुख आश्रयदाता थे। विदेशों से उसके अच्छे सम्बन्ध थे यह इस चित्र को देखकर जाना जा सकता है। कुछ विद्वान् इसे सम्राट् अशोक द्वारा विदेशी दूतो का स्वागत करते हुए बताया है। कुछ ने भारत-ईरानी सम्बन्ध की प्रगाढ़ता की बात की है। कुछ लोगों ने चालुक्य नरेश द्वितीय पुलकेशी (ई० स० 610-642) के दरबार मे ईरानी नरेश द्वारा प्रेषित दौत्य सम्बन्ध के रूप मे इसे प्रचारित किया। जो भी हो, लेकिन इस चित्र को देखकर यह स्पष्ट होता है कि भारत का विदेशियों, विशेष रूप से ईरानियो से बडा पुराना सम्बन्ध रहा है।

उपासक—इस गुफा में एक ऐसा भी चित्र है जो वाकाटकोत्तरकालीन बताया गया है। जगली जाति से सम्बद्ध इस युवा उपासक के चित्र मे आकृति का असतुलन, रेखा की मोटाई तथा रग विधान के आधार पर यह चित्र परवर्ती प्रतीत होता है।

मंडप सज्जा चित्र—इस काला वीथी की दीवारो पर जातक कथा तथा अन्य चित्रों के अकन के साथ ही इसके छत तथा अन्य स्थानो पर अलंकरणात्मक चित्र बनाये गये हैं जो इस मण्डप की श्रीवृद्धि करते है। दर्शक जो अब तक एक कथा-चक्र से जुडा था वह जब छत पर दृष्टि डालता है तो इन चौकोर आलेखनो को देखकर वह सहज होने लगता है। उसके मस्तिष्क को थोडी राहत मिलती है। छत पर बने लता-वल्लरी, पुष्प, बेल-बूटे, पौधे, पशु-पक्षी, कुब्जविदूषको, मिथुन तथा मद्यपान आदि के चौकोर अलंकरण अपने-आप में बेजोड है तथा कलाकार की कलात्मक प्रतिभा के परिचायक हैं। स्तंभ के शीर्ष की चौकी पर भी अलकरणात्मक चित्र बनाये गये हैं जिनमे दो बैलों की लडाई का दृश्य सशक्त रेखाओ से अंकित है। चौकोर तथा आयताकार आलेखनों मे गतिशील हाथी के विभिन्न मुद्राओ का सुन्दर चित्रण हुआ है। आलेखन में कमल-नाल, पुष्प-पत्तियों तथा कलिकाओं को सुन्दर ढग से संयोजित किया गया है। एक अन्य आयताकार आलेखन में एक शिशु आकृति को कमल-पुष्प, कलिकाओं, कमल-नाल तथा पत्तियों के साथ अतीव कुशलता के साथ सयोजित कर आलेखन मे विशेष प्रभाव उत्पन्न किया गया है। कुछ आलेखनो में बतख युगल की मुद्राओं को घुमावदार लहरों तथा कलिकाओ के साथ चित्रित किया गया है।

शिल्प— परम्परागत रूप में गर्भ-कक्ष मे पद्मासन की मुद्रा में बुद्ध मूर्ति आसीन है। बुद्ध की यह मूर्ति विश्व की बुद्ध मूर्तियों मे सर्वश्रेष्ठ है। इस मूर्ति को सामने तथा अगल-बगल से देखने पर बुद्ध के मुखमण्डल पर तीन प्रकार के भाव (ध्यान) स्पष्ट दृष्टिगत होते है। धर्म चक्र-प्रवर्तन के प्रतीक रूप में अन्य आकृतियाँ सारनाथ के प्रबोधन के पश्चात् दिये गये प्रथम उपदेश का सकेत करते हैं। इन आकृतियों में बुद्ध के पाँच शिष्य, चक्र तथा हिरन को बडी कुशलता से उत्कीर्ण किया गया है। सभा-मण्डप के तीसरे स्तम्भ पर चार हिरनो के शरीर अलग-अलग उकेरे गये हैं लेकिन इन चारों के मुख एक ही हैं। खंभो के बने हुए प्रकोष्ठो में भगवान् बुद्ध के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ शिल्पों के माध्यम से अभिव्यक्त की गयी हैं। बायी तरफ एक शिल्प अच्छी हालत में सुरक्षित है जिसमें बुद्ध अपना केश कटवा रहे हैं और उनका अश्व पास ही खड़ा है

गुहा-मंदिर क्र. सं. 2

यह विहार गुहा प्रथम गुहा-मदिर से थोडा छोटा है लेकिन अन्य बाते प्राय: समान हैं। मुखमण्डप लगभग 46 फीट लम्बा है तथा इसके दोनो छोरो पर एक-एक अपवरक (कोठरी) निर्मित हैं। मुखमंडप दो कुड्य स्तम्भ तथा चार पूर्ण स्तम्भ पर स्थित है जो आठ, सोलह तथा बत्तीस पहलुओं में तराशे गये हैं। सभामडप 48 फीट 4 इच लम्बा तथा 47 फीट 6 इच चौडा है। सभामंडप की दीवारे चित्रों से सुशोभायमान है। सभामण्डप के अगल-बगल तथा पिछले भाग मे गर्भगृह के दोनों ओर अपवरक (कोठरियाँ) उत्खनित है। गर्भगृह लगभग 14 फीट लम्बा तथा 11 फीट चौड़ा है जिसका द्वार सुन्दर उकेरियों से सुसज्जित है। गर्भगृह मे बोधिसत्त्वो के साथ धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में बैठे भगवान् बुद्ध की अप्रतिम प्रतिमा प्रतिष्ठित है। गर्भगृह के आगे अन्तराल के स्तम्भ भी विभिन्न आकृतियो से आवेष्टित हैं। यहाँ अकित मदनिकाएँ अपने रूप-लावण्य मे उत्कृष्ट हैं। अन्तराल के दोनो ओर देवकुलिकाएँ, पाच्चिक, हारीति तथा यक्ष प्रतिमाएँ अंकित हैं।

इस कला-मण्डप का निर्माण तथा अलंकरण वाकाटकोत्तर काल में हुआ तथा चित्रित अभिलेखो तथा अक्षर-रचना से प्रतीत होता है कि इसे ईस्वी छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे चित्रित किया गया । यहाँ के चित्रों की स्थिति अच्छी है और छत, दीवार तथा बरामदे की चित्रकारी ताजी लगती है। लगता है अभी-अभी चित्र पूरे हुए हैं। इस मण्डप में भगवान् बुद्ध से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर कई सुन्दर चित्रो का अकन दृष्टिगत होता है।

मुख्य द्वार की दाहिनी ओर दो पुरुष आकृतियाँ हैं। एक दाढ़ीवाला जो पारसी लगता है और दूसरा मूँछवाला जो स्थानीय लगता है। इन आकृतियो की वेशभूषा पर ग्रीक संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

महाहंस जातक—बायी दीवार पर महाहंस जातक कथा का प्रसंग चित्रित है। स्वप्न मे वाराणसी की रानी खेमा ने देखा कि बोधिसत्त्व ने सुनहरे हंस के रूप में अवतार लिया है और वे उसे उपदेश दे रहे हैं। रानी की इच्छा के अनुसार एक झील को बनवाया गया और खोजकर उस हस को वहाँ लाया गया। रानी महाहस का उपदेश सुन बडी प्रसन्न हुई और इसके बाद उसे मुक्त कर दिया। चित्र मे हम एक राज्य के उच्च अधिकारी के साथ पक्षी पकडने मे निपुण शिकारी, हसों को पकड़कर कृत्रिम सरोवर को ले जाते हुए शिकारी, सिंहासन पर बैठकर उपदेश देते हुए बोधिसत्त्व और राजदम्पति तथा कृत्रिम झील में स्वर्णिम हस का चित्रण बड़ी कुशलता से हुआ है।

मायारानी का स्वप्न—मडप की बायीं दीवार के मध्य मे गौतम के जन्म सम्बन्धी कथा का चित्रण है। चित्र में महामाया के शयनागार का दृश्य अकित है जहाँ महामाया को अपने बिस्तर पर निद्रामग्न दिखाया गया है। उनके निकट दो-तीन दासियाँ बैठी हैं। चित्र मे मायारानी का वह मायावी स्वप्न चित्रित है जिसमें उन्होंने अपने गर्भाशय में श्वेत गज को प्रवेश करते हुए देखा था। रानी ने इस स्वप्न की चर्चा राजा शुद्धोधन से की। राजा ने दरबार में ज्योतिषियों को बुलाकर इस स्वप्न की व्याख्या करवायी। उन्होंने बताया कि उनका पुत्र महासन्यासी होगा। इस चित्र के बाद मायादेवी का वह जगप्रसिद्ध चित्र है जिसमें वह खम्भे के सहारे एक पैर मोड़कर झुकी हुई है। मयादेवी की लयात्मक देह-भगिमा के साथ उसका शरीर-सौष्ठव, उसका पारदर्शक वेश और रत्नजड़ित अलंकार उसके राजसी व्यक्तित्व को उजागर करते हैं। कथा के विभिन्न अवसरों कथानकों के विभिन्न पक्षों एव [illegible] के चित्रण में यहाँ [illegible] पूर्णरूपेण सफल रहा है इसके पश्चात् महारानी माया का पितृगृह गमन लुम्बिनी में बुद्ध का जन्म शक्र



शिशु को अपने हाथों मे कुछ ऊँचा उठाकर लेना तथा बुद्ध के सात कदमो का
त्र-श्रृखला में बड़े ही प्रभावी ढग से हुआ है।

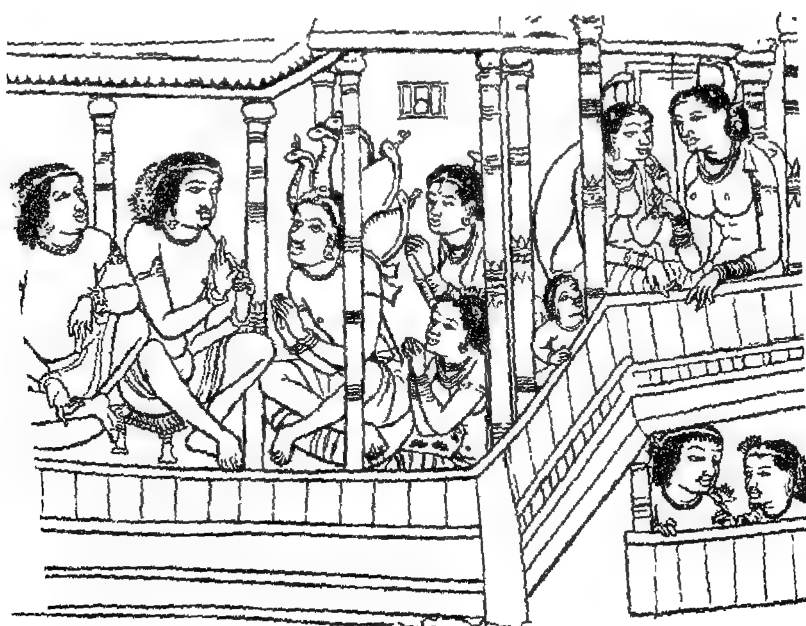
:— गर्भगृह के द्वार के दोनो ओर तथा मण्डप की पिछली दीवार पर बोधिसत्त्व के
तीन विशालकाय अंकन प्राप्त होते है। इसमे से एक मैत्रेय, दूसरा अवलोकितेश्वर
ण्पाणि के रूप में चित्रित है। बोधिसत्त्वों के इन चित्रणो मे मानवी शरीर-सौष्ठव का
है जिसमें महामानव की कल्पना साकार हो उठी है। त्रिभग के लय से आवृत
एवं अपार दया एवं करुणा को व्यक्त करती हुई मुखाकृति अपने रचना कौशल मे
नगति और आकृति की रेखाएँ इतनी उत्कृष्ट है कि दर्शक ठगा-सा उस रूप-राशि
रह जाता है।

द्ध— प्रकोष्ठ की दीवारो पर तथा सभामंडप की बायीं ओर की पिछली दीवार पर
ो विभिन्न मुद्राओं के सहस्रो चित्र बनाये गये हैं। इसी प्रकोष्ठ में सहस्र बुद्धो के
एक लेख भी प्राप्त होता है। बुद्ध के इस प्रकार चित्रण की यह परम्परा मध्य एशिया
ों तुन हुआंग की सहस्र बुद्धों की गुफा में इस परम्परा का पूर्ण निर्वाह दिखायी

त जातक — मण्डप की दाहिनी भित्ति पर विदुर पंडित जातक का कई दृश्यों में
ता है। कथा कुछ इस प्रकार है—कुरुओं की राजधानी इंद्रप्रस्थ के राजा धनंजय के
में बोधिसत्त्व ने जन्म लिया। परम विद्वान् के साथ ही वे उत्कृष्ट वक्ता भी थे।
ला विदुर पडित की प्रशंसा अपने पति वरुण से सुनकर उनसे मिलने एवं उनके
न्नों को सुनने के लिए उत्सुक हो उठी। उसकी इस इच्छा को पूरा करने के लिए
ा प्रेमी यक्ष सेनापति पुण्णक ने राजा धनजय को जुए में पराजित कर विदुर पंडित



(इरदती झूला झूलते हुए)



विदुर पंडित जातक

(विदुर पंडित के प्रवचन का दृश्य)

को नागरानी विमला क सम्मुख प्रस्तुत किया। अपने प्रवचन से विदुर पंडित ने सभी को मुग्ध कर लिया। इस प्रकार नागकन्या इरंदती का विवाह अपने प्रेमी पुण्णक से हो गया। दाहिने भाग के पहले दृश्य मे इरंदती को झूला झूलते हुए और उसी के समीप उसका प्रेमी पुण्णक को खडे हुए चित्रित किया गया है। अगले दृश्य मे नागराज वरुण अपने संबंधियो से इन दोनों के विवाह सम्बन्ध के विषय में मंत्रणा कर रहे हैं। बायी ओर के दृश्य मे इंद्रप्रस्थ के राजा के दरबार मे पाँसो का खेल चित्रित है। इस दृश्य को चित्रकार ने बड़ी कुशलता मे प्रकट किया है। चित्र का सयोजन इस प्रकार किया गया है कि कोई भी पात्र अस्वाभाविक नही प्रतीत होता। जुआ खेलनेवालों का भाव और दर्शक को प्रतिक्रिया देखते बनती है। इस चित्र में कलाकारों की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है। इसके बाद पुण्णक के साथ विदुर पंडित के आगमन का दृश्य है। इस दृश्य मे विदुर पडित काले हाथी पर आसीन हैं तथा उनके साथ अगल-बगल अश्वारोही चल रहे है। आगे-आगे पैदल सैनिक हैं जिनकी मुखमुद्रा में दृढता टपक रही है। जुलूस के आगे कुछ वादकगण चित्रित है। कुल मिलाकर हर्षोल्लास के साथ एक अजीब-से गम्भीर वातावरण की सृष्टि हुई है। इसके बाद नागराजा के महल में विदुर पडित के प्रवचन का दृश्य है तथा पुण्णक एव इरदती को प्रसन्न मुद्रा में चित्रित किया गया है। समग्र रूप से इस चित्र मे बडा ही प्रभावपूर्ण अकन दृष्टिगत होता है तथा इसे उच्चकोटि के चित्रों में स्थान दिया जा सकता है।

अज्ञात कथा—बरामदे की दायीं ओर के प्रकोष्ठ की दीवारो पर किसी महत्त्वपूर्ण कथा अथवा प्रसंग का चित्रण हुआ है जिसकी पहचान अब तक न हो सकी है। पहले दृश्य मे दो मजिले वास्तु के एक कक्ष में बोधिसत्त्व एव दो भिक्षु दिखाये गये हैं। दूसरे दृश्य मे एक बन्द पालकी कहारो द्वारा ले जायी जा रही है जिसके साथ राजपुरुष चल रहे हैं। अगले दृश्य मे जगल में राजकुमारी लेटी है और पास ही दो परिचारिकाएँ दिखायी गयी है। पास ही दो दस्यु का अकन है। अगले दृश्य मे पालकी जमीन पर है और उसके सामने एक स्त्री विकल भाव मे बैठी चित्रित की गयी है। पीछे कमल वन है और सरोवर में एक शिशु फेक दिया गया है। चित्र की कथावस्तु समझ में आती है लेकिन संदर्भ के बारे मे अभी प्रकाश नही पड़ सका है। समस्त अकन में एक करुण भाव संचरित होता हुआ दिखायी पडता है और कलाकार अपेक्षित प्रभाव दिखाने में अत्यन्त सफल हुआ है।

क्षांतिवादी जातक—मडप मे प्रवेश करते ही दायीं ओर की दीवार में बनी पहली कोठरी के ऊपर यह कथा चित्रित है। इस चित्र का ऊपरी भाग नष्ट हो गया है इसलिए इसकी समुचित पहचान नहीं हो सकी है। कुछ विद्वानों ने इसे क्षांतिवादी जातक से जोडा है। इस जातक की कथा के अनुसार एक बार बोधिसत्त्व ने एक संन्यासी के रूप में जन्म लिया जिसका नाम क्षातिवादी था। एक बार उस प्रदेश के राजा ने अपनी रानियों, रनिवास की नर्तकियों एवं दास-दासियों के साथ उपवन क्रीड़ा के लिए वनकुंज मे शिविर लगाया। शिविर के पास ही क्षांतिवादी का आश्रय था। केलिक्रीड़ा के पश्चात् जब राजा निद्राभिभूत हो गया तो रानियो एवं नर्तकियो को पता चला कि पास ही आश्रम में कोई महात्मा उपदेश दे रहे हैं। वे सब आश्रम में आकर उनका प्रवचन सुनने लगीं। राजा जब निद्रा से जगा तो अपने को अकेला पाकर क्रोधित हो उठा और उसने बोधिसत्त्व एवं नर्तकियों के वध की आज्ञा दे दी। चित्र मे महल की पृष्ठिभूमि पर राजा एक मंचक पर बैठा अकित है जिसके दायें हाथ में तलवार है। वह कई स्त्रियों से घिरा है और



सामने दायीं ओर एक स्त्री घुटने एवं सिर टेककर उसके पाँव पकड़ प्राणों की भीख माँग रही है। यह अजन्ता के सर्वश्रेष्ठ चित्रों में से एक है। राजा की क्रोधपूर्ण मुद्रा तथा स्त्रियों की भयभीत एवं करुण भगिमा चित्रकार की कुशलता एव सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है। भावाभिव्यक्ति में चित्र श्रेष्ठ है।

पूर्णावदान—मंडप की दाहिनी दीवार पर दूसरी एवं तीसरी कोठरियों के मध्य पूर्णावदान की कथा चित्रित है। एक धनी व्यापारी शूर्पारक को अन्य पुत्रों के साथ दो दासी पुत्र भी थे जिन्हे वह बहुत चाहता था। बडे पुत्र का नाम भाविल एवं दूसरे एवं सबसे छोटे पुत्र का नाम पूर्ण था। शूर्पारक की मृत्यु के पश्चात् उसके अन्य भाइयों ने उन दोनो को पारिवारिक संपत्ति से वंचित कर दिया। पूर्ण कठोर परिश्रम एवं लगन से कार्य कर चदन की लकडी का बहुत बड़ा व्यवसायी बना। अपनी सातवीं समुद्र यात्रा के बाद बुद्ध के उपदेशो की ख्याति उस तक पहुँची और उसने बौद्ध धर्म ग्रहण करने का निश्चय किया। बड़े भाई भाविल से अनुमति ले सांसारिकता को त्याग श्रावस्ती में भगवान् बुद्ध से दीक्षा ली। उसने श्रोणापरातक नामक स्थान, जहाँ कि क्रूर एवं लुटेरे लोग रहते थे, में रहकर उन्हें सुधारने एवं दीक्षा देने का कार्य किया। इस बीच भाविल समुद्र यात्रा कर ऐसे देश मे पहुँचा जहाँ चन्दन की लकडियाँ बहुतायत में थीं। उसने अपने कर्मचारियो को लकड़ी काटने का आदेश दे दिया। इस पर वहाँ निवास कर रहा महेश्वर नामक यक्ष क्रोधित हो उठा और अपनी दैवी शक्ति से समुद्र में तूफान उठा दिया। इस प्रचण्ड तूफान से सभी भयभीत होकर आर्तनाद करने लगे। निरुपाय भाविल ने सहायता के लिए पूर्ण को याद किया। पूर्ण उस समय तक अलौकिक शक्ति प्राप्त कर चुका था और वह जहाज पर प्रकट हुआ। उसने यक्ष को शांत किया और इस प्रकार तूफान थम गया। शूर्पारक लौटने पर अपने कुटुम्ब के साथ बुद्ध का स्वागत किया और बौद्ध धर्म ग्रहण कर चदन-काष्ठ से एक विहार का निर्माण कराया। चित्र के पहले भाग में पूर्ण को भगवान् बुद्ध के सामने घुटने टेके हुए दिखाया गया है, दूसरे में उफनते सागर में मछलियों एव अन्य समुद्री प्राणी के नाव पर का दृश्य है नाव पर खड़ा

भाविल ऊपर देखते हुए सहायता की प्रार्थना कर रहा है और उसके रक्षार्थ पूर्ण आकाश से उतर रहा है। अन्तिम दृश्य में भाविल को भगवान् बुद्ध के पास उपहार ले जाते हुए चित्रित किया गया है। चित्र बडा प्रभावोत्पादक है और कुशलता के साथ चित्रित किया गया है।



अलंकरण एवं मण्डप-सज्जा—शिलागृही मदिर क्र स. 1 की तरह मण्डप की छत पर विभिन्न आलेखो का सुन्दर चित्रण हुआ है। छत पर बने आलेखन एक भव्य शामियाने का आभास देते हैं जो मण्डप की शोभा की वृद्धि करते हैं। जहाँ पहले शिलागृही मंदिर की छत को आयताकार एवं वर्गाकार रूपो मे विभाजित किया है वहाँ इस मण्डप मे वृत्ताकारो की बहुलता है। मण्डप की छत के मध्य एक बडा वृत्त दिखायी पडता है जिसके अन्तर्गत कई छोटे-छोटे वृत्त मे अलेखन को विभिन्न रूपों में रूपायित किया गया है। छोटे-बडे वृत्त के बीच मे कमल-पुष्प तथा अन्य घुमावदार आलेखन से इसकी श्रीवृद्धि की गयी है। चौकोर मण्डप की छत पर बने वृत्त से बचे भाग मे युगल गन्धर्व आकृतियों को रूपायित कर कलाकार ने अपनी क्षमता का अद्भुत परिचय दिया है। चौकोर खण्डों में विभक्त असंख्य आलोखनो में पुष्प-लता, पशु-पक्षी, उडते विद्याधर, विदूषक आदि न जाने कितनी प्रतीकात्मक आकृतियो को समायोजित किया गया है। विभिन्न मुद्राओं मे तेईस हसो का उत्कृष्ट अंकन भी मण्डप-सज्जा के लिए हुआ है जिससे कलाकार की कल्पना एवं क्षमता का परिचय मिलता है। अन्य चित्रों मे व्यालो तथा बादल मे तैरते गणो का चित्रण भी उत्कृष्ट है।

शिल्प—मंदिर के द्वार और खम्भों पर शिल्प एवं चित्र का अद्भुत समन्वय दिखायी पडता है। मदनिकाओं का शिल्प-चित्र इसका प्रमाण है। यहीं दाहिनी तरफ हरीति और पंचिका के प्रसिद्ध शिल्प-चित्र है जिसमें भगवान् बुद्ध राक्षसी हरीति के हृदय में वात्सल्य प्रेम जगाने के उद्देश्य से उसका बच्चा छिपा देते है। बाद में हरीति भगवान् बुद्ध का उपदेश सुन वात्सल्यमयी माँ के रूप में परिवर्तित हो गयी। इस कथा का सुन्दर शिल्पाकंन यहाँ प्राप्त होता है। नीचे पाठशाला मे बच्चे भी दिखाये गये हैं। खम्भो पर यक्षों की आकृतियाँ भी अंकित हैं। भौतिक जगत् के ऐश्वर्य की विभिन्न झाँकियाँ सूक्ष्म विवरण के साथ उद्रेखित हैं।

गुहा-मंदिर क्र. सं. 3

यह एक अपूर्ण विहार है। इसका द्वारमण्डप 29 फीट लम्बा एवं 7 फीट चौडा है जो द कुड्य तथा चार पूर्ण स्तम्भो पर आधारित है। एक द्वार द्वारा सभामण्डप की खुदाई का प्रयास किया गया है लेकिन शीघ्र ही उसे छोड दिया गया। लगता है गुहा क्र सं. 4 की बृहद् योजना के तहत इसे प्रारम्भ मे ही रोक दिया गया। जो भी हो, लेकिन यहाँ के स्थापत्य निर्माण के प्रारम्भिक चरण को समझने के लिए यह अत्यधिक उपयोगी है। इन गुहाओं की तराश एवं खुदाई का कार्य ऊपर से नीचे की ओर बढ़ाया गया है।

गुहा-मंदिर क्र. सं. 4

इस विहार की योजना बहुत भव्य है और कोठरियों को छोड़कर यह प्राय. पूर्ण है। गुहा का मुखमण्डप 87 फीट लम्बा तथा पौने बारह फीट चौडा है। आठ स्तंभ पर टिके बरामदे की ऊँचाई 16 फीट है। मुखमण्डप के दोनो ओर एक-एक कोठरी है। मुख्य द्वार की तराश भव्य पैमाने पर हुआ है जहाँ मिथुन-युग्म, गंधर्व तथा शालभंजिका का शिल्प है। शालभजिका की लयात्मक आकृति जिसका एक पैर शालवृक्ष की ओर है अद्भुत कलात्मक शैली में उत्कीर्ण है। इस अर्द्धनग्न आकृति की पतली कटि, भावपूर्ण मुद्रा और चेहरे पर की मृदु मुस्कान प्रेक्षको को सहज ही आकृष्ट कर लेती है। सभामण्डप में मुख्य द्वार के अतिरिक्त दो गौड़ द्वार से भी प्रवेश किया जा सकता है। मुख्य द्वार एव गौड द्वार के मध्य दोनो ओर वातायन बने है। बीच की दीवार पर अवलोकितेश्वर तथा उनके पूजको का शिल्पाकन हुआ है। बुद्ध तथा मिथुन मूर्तियो से युक्त चैत्य वातायन इस विहार का श्रीवृद्धि करते है। द्वार शाखाओं के किनारे व्यालाकृतियाँ उत्कीर्ण है। कपोतिका के ऊपरी भाग मे दो बन्दर भी शिल्पांकित है। सभामण्डप 87 फीट का वर्गाकार कक्ष है जिसमें 28 स्तम्भ है। मुख्यद्वार के ठीक सामने 21 फीट लम्बा तथा 13 फीट चौडा अन्तराल है जिसकी दीवारों पर छह विशाल बुद्ध प्रतिमाएँ निर्मित हैं। गर्भगृह मे के मध्य में धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में आसीन भगवान् बुद्ध की भव्य प्रतिमा है जिसके अगल-बगल वज्रपाणि एवं पद्मपाणि की प्रतिमा है। उपदेशक के रूप में भगवान् बुद्ध की प्रतिमा कलात्मक सौष्ठव से परिपूर्ण है। बुद्ध प्रतिमा के पीछे एक लेख उत्कीर्ण है जिससे पता चलता है कि इस प्रतिमा का निर्माण अभयनंदिस्कदवसु के पुत्र कार्वटियागौत्री विहार स्वामी माथुर ने करवाया था और इसे दान किया था। लेख से यह स्पष्ट होता है कि इसका निर्माण छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। सभा-मण्डप की बायीं भित्ति पर एक, दायीं में पाँच तथा गर्भगृह के अगल-बगल पाँच अपवरक (कोठरियाँ) खुदी हैं जो विभिन्न स्थितियों मे अपूर्ण हैं। ये कोठरियाँ खुदाई की विभिन्न स्थितियों को इंगित करती है जो स्थापत्य अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

इस गुहा-मण्डप में कई स्थानों पर प्लास्टर अभी भी देखे जा सकते हैं जिससे प्रतीत होता है कि यह शैलगृह भी चित्रित था।

गुहा-मंदिर क्र. सं. 5

यह अपूर्ण विहार है और गुहा क्र. सं. 3 की ही भाँति निर्माण के प्रारम्भिक अवस्था मे ही यहाँ खुदाई का कार्य रोक दिया गया। द्वारमण्डप साढ़े पैंतालीस फीट लम्बा तथा आठ फीट नौ इंच चौड़ा है जो चार पूर्ण स्तम्भों पर टिका हुआ है। प्रवेशद्वार के बायीं ओर एक वातायन बनाया गया है तथा द्वार शाखाएँ भी बनायी गयी हैं। द्वारमण्डप का सम्पूर्ण भाग अलकृत है। ऊपर मध्य भाग मे सेवकों से घिरे भगवान् बुद्ध तथा नीचे द्वार के अगल बगल विभिन्न मुद्रा में खडे

युगलो का शिल्पांकन प्राप्त होता है। शेष भाग मे नदी देवियाँ तथा बैठी मिथुन आकृतियाँ विविध प्रकार के आलकारिक अभिप्रायो के साथ उत्कीर्ण है। प्रवेशद्वार के बाद खुदाई का कोई प्रयास नहीं किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुहा संख्या 4 के विस्तृत योजना के तहत 3 एव 5 दोनो गुहाओं को अधूरा छोड दिया गया।

गुहा-मंदिर क्र. सं. 6

अजन्ता का यह अकेला दो मंजिला विहार है। दोनो मजिल विहार के रूप में निर्मित हैं। प्रथम तल के द्वारमण्डप का अस्तित्व अब नहीं है। मुख्यद्वार की बायीं ओर खम्भो का बोझ उठाती हुई एक लघु आकृति है। मदिरद्वार की कमान मकरो के मुँह से निकलती हुई तराशी गयी है। कमान के भीतर नाग का शिल्प है। बाह्य भित्ति मे चार गवाक्ष थे जिनमें से दो अब बंद कर दिये गये हैं। प्रथम तल का सभामण्डप 53' 4'' तथा 54' 10'' है जिसमें चार-चार की पंक्तियो मे 16 स्तम्भ है जिनकी ऊँचाई लगभग 13' है। इन स्तम्भों मे केवल 7 स्तम्भ ही सही दशा में हैं। नीचे बायीं तथा दाहिनी दीवार पर पाँच-पाँच कोठरियाँ निर्मित हैं तथा पिछली दीवार पर भी पाँच अपवरक (कोठरियाँ) हैं। इसके अतरिक्त अन्तराल एव गर्भगृह की भी रचना की गयी है।

सभामण्डप से एक सीढी ऊपर की मजिल तक गयी है जो ऊपर के बरामदे मे निकलती है जिनके दोनों ओर प्रकोष्ठ निर्मित है। ऊपर का सभामण्डप 53' चौडा तथा 50' गहरा है जिसकी ऊँचाई सवा ग्यारह फीट है। यहाँ 12 स्तम्भ बनाये गये है। सभामण्डप की बायी ओर सात अपवरक (कोठरियाँ) हैं जिनमे प्रथम एवं तृतीय कोठरियाँ दो-दो की संयुक्त कोठरियाँ हैं जिनकी पिछली कोठरियो मे भगवान् बुद्ध की प्रतिमा निर्मित है। दाहिनी ओर भी पाँच कोठरियाँ निर्मित हैं। सामने की दीवार में अगल-बगल एक-एक कोठरी तथा बीच में 18' × 16' 3'' का अतराल एव गर्भगृह निर्मित है। यहाँ विभिन्न मुद्राओ में बुद्ध मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। इस विहार की बुद्ध-मूर्ति अन्य विहारो की अपेक्षा कुछ अलग है।

यह विहार कभी सम्पूर्ण रूप से चित्रित रहा होगा। यहाँ के अधिकाश चित्र धुएँ तथा गर्द की घनी परतों में दब गये हैं। यहाँ रासायनिक सफाई द्वारा कई चित्रो को उभारा गया है जिससे विदित होता है कि इस गुहा-मदिर के चित्र वाकाटककालीन (गुप्तकालीन) चित्रकला की परिपक्व शैली मे निर्मित है। विहार के दायीं ओर की दावार पर भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित चित्रो की झलक दिखायी पडती है। श्रावस्ती के चमत्कार वाले दृश्य मे भगवान् बुद्ध के अनेक चित्र अंकित हैं। एक अन्य दृश्य मे मार विजय का अंकन दिखायी पड़ता है। पहली मंजिल मे एक स्तूप का चित्र प्राप्त हुआ है जो पुरातत्त्व विभाग के रासायनिक सफाई के बाद स्पष्ट हुआ है। ऊपरी मंजिल के गर्भगृह के बाहर द्वारपाल तथा स्त्री परिचारिकाओ का अकन है। यहीं पर बुद्ध की विशाल प्रतिमा के नीचे एक भिक्षु चित्रित किया गया है जिसके हाथ में कमल का फूल है जो शायद बुद्ध भगवान् के लिए अर्पित है। एक स्थान पर एक आकषक स्त्री का मुख दिखायी पडता है जो कुण्डल पहने हुए है। ऊपरी मजिल में संस्कृत मे प्राप्त एक लेख के अनुसार विभिन्न विद्वानों द्वारा निर्धारित निर्माण-काल छठी शताब्दी का सिद्ध होता है।

गुहा-मंदिर क्र. सं. 7

इस विहार का वास्तु शिल्प अजन्ता के अन्य विहारों से अलग है। यह विस्तृत द्वारमण्डप वाला एक विहार गृह है जिसको स्तम्भयुक्त मण्डपो की भाँति दो भागो में खोदा गया है। इस विहार मे आन्तरिक सभामण्डप नहीं है। द्वारमण्डप की लम्बाई 62'10" तथा दो भाग में चौडाई

27 ' (13'6"+ 13' 6") है। पिछली दीवार के मध्य में अन्तराल तथा गर्भगृह तथा अगल-बगल अपवरक निर्मित है। द्वारमण्डप के दोनो ओर कुछ ऊँचाई पर स्तम्भयुक्त मंडप है। अन्तराल मे कई पंक्तियो मे बुद्ध की स्थानक तथा आसनस्थ मुद्राएँ उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह के द्वार पर भी बुद्ध मूर्तियाँ शिल्पांकित है। गर्भगृह में बुद्ध भगवान् वरद मुद्रा में बैठे हैं। भित्तियों पर आठ-आठ आसनस्थ बुद्ध अंकित किये गये हैं। यह गुहा-मंदिर भी कभी पूर्ण रूप से चित्रित किया गया होगा किन्तु अब ये चित्र प्राय: नष्ट हो गये हैं।

गुहा-मंदिर क्र. सं. 8

यह विहार निचली सतह पर निर्मित होने एव भूस्खलन के कारण बहुत-कुछ नष्ट हो गया है। सभामण्डप 32' 4"× 17 ' का है। अगल-बगल एक-एक कोठरियाँ निर्मित हैं। अन्तराल गर्भगृह मे मूर्तियाँ या चित्र नहीं हैं। अन्तराल के दोनो ओर दो-दो कोठरियाँ हैं। इस विहार को नवीं गुहा-मदिर के समकालीन माना जाता है।

गुहा-मंदिर क्र. स. 9

अजन्ता का यह गुहा-मंदिर हीनयान सम्प्रदाय से सम्बन्धित मूर्तिरहित चैत्य मंदिर है। इसका अग्रभाग, मध्यद्वार तथा अगल-बगल के गवाक्षो का निर्माण बड़ा ही कलात्मक है। इसके ऊपरी बेल मे छज्जा-सा निकला है जिसमें उथले मुखमण्डप का आकार-सा बना है। इसके ऊपर सगीतशाला है तथा उससे ऊपर पीछे की ओर 12 फुट ऊँचा कीर्तिमुख है जो चैत्यगृह के भीतरी भाग को प्रकाशित करता है। मण्डप का समस्त अग्रभाग पत्थर मे उत्कीर्ण अलंकरणों से भरा हुआ है जो भव्य एवं आकर्षक है। आन्तरिक चैत्य मण्डप 45 फीट गहरा और 22 फीट 9 इंच चौड़ा है। यह मण्डप आयताकार रूप मे कटा हुआ है तथा पिछले हिस्से में स्तम्भो द्वारा अर्द्धवृत्त का आकार दिया गया है। स्तूप के दोनो ओर समानान्तर तथा स्तूप के पिछले भाग मे अर्द्धवृत्त बनाते हुए कुल तेईस खम्भों से सुसज्जित इस चैत्यगृह का निर्माण ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में हुआ होगा ऐसा विद्वानो का मत है। यह चैत्यगृह गुहा क्र० स० 10 के समकालीन माना गया है। अर्द्धवृत्त के मध्य में सात फीट व्यास का स्तूप बना है जिसका सादा अधिष्ठान पाँच फीट ऊँचा है। 4 फीट ऊँचे अण्ड पर सवा फुट ऊँची वर्गाकार हर्मिका निर्मित की गयी है जिस पर वेदिका अकित है। मध्य मे लकड़ी की छत्रावली लगाने हेतु एक छिद्र बना है। छत के नीचे भी लकडी की धरन लगायी गयी होगी इसका आभास वहाँ दिखनेवाले छिद्रों से होता है। इस गुहा-मंदिर को काष्ठ-कला की सुन्दर कृतियों से कभी सजाया गया होगा ऐसी मान्यता निराधार नही है।

यहाँ के चित्र सातवाहन कला के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। गुहा-मंदिर क्र० सं० 9 के अधिकांश चित्र काल-प्रवाह में नष्ट हो चुके है फिर भी जो टूटे-फूटे उदाहरण मौजूद है उनकी अन्य गुहा-मदिरों से तुलना करने पर प्रतीत होता है कि प्राचीनता की दृष्टि से ये अजन्ता चित्रकला के प्रारम्भिक श्रेष्ठ उदाहरण हैं। यहाँ की कला में पर्याप्त परिपक्वता है जिससे हमारी आदिकाल की कला-परम्परा पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। यहाँ प्राप्त चित्रण की विषयवस्तु कुछ इस प्रकार है—

नागराजा—गृहा-मंदिर के सामने की दीवार पर बायीं ओर की खिड़की के ऊपर पर्वत-कन्दराओ की पृष्ठभूमि में दो नाग पुरुषों को चित्रित किया गया है। एक के सिर पर सात नागो का टोप होने के कारण ऐसा अनुमान होता है कि वे नागराजा हैं और दूसरा उनका मंत्री है। इसी के बाद सिहासन पर बैठे एक राजा का चित्र है जिसके पास पाँच व्यक्ति बैठे हैं। इन व्यक्तियों के बायीं ओर एक [illegible] भी चित्रण है। इस समूह की तरफ उड़कर आती हुई मानव आकृतियो

का अंकन कथानक को प्रभावशाली बनाता है। इसके आस-पास के अन्य चित्र नष्ट हो चुके हैं। इस प्रकार इसकी विषयवस्तु पर पर्याप्त प्रकाश नहीं पड़ता फिर भी ऐसा लगता है कि यह किसी जातक कथा से ही सम्बन्धित होगा। सभी आकृतियाँ अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से चित्रित की गयी हैं और उड़ती हुई आकृतियाँ गति का आभास देती हुई प्रतीत होती हैं।

पशुओं का खेदा—गुहा की बायी ओर की वीथिका में स्तम्भों के ऊपर भी कुछ चित्र दिखायी पडते है जिनमें एक स्थान पर पशुओं को खदेडते हुए मनुष्य चित्रित हैं। इन पशुओ की विभिन्न प्रकार से भागने की मुद्राओ का उत्कृष्ट अकन यहाँ दिखायी पड़ता है। पशुओं के इस खेदा दृश्य से उस समय के कलाकारो की दृश्य निरीक्षण की अद्‌भुत क्षमता एव उनके सफल अकन की कुशलता का परिचय मिलता हैं ।

स्तूप अर्चना—वीथिका की बायीं भित्ति पर व्यक्तियो के बडे समूह को स्तूप की परिक्रमा करते हुए दिखाया गया है। कुछ व्यक्ति हाथ जोड़े हुए तथा कुछ अन्य भाव-भंगिमा में दिखाये गये हैं। स्तूप दो तोरणों से युक्त प्राकार से घिरा है। एक तोरण का साँची तथा भरहुत के तोरणो से सादृश्य है, दूसरा गजपृष्ठाकार है। दायीं ओर के भाग में विभिन्न वाद्य यंत्रो को बजाते हुए वादक चित्रित हैं। स्तूपाकार के बाहर पीपल एवं वट वृक्षों के साथ एक विहार का अंकन है। अगले दृश्य में विहार के बाहर दो व्यक्ति खडे हैं। लगता है विहार निर्माण के बाद उसे संघ को देने का दृश्य है। इसके बाद के दृश्य में एक वृक्ष-कुज मे बैठे दो उपासक तथा एक कक्ष में अपनी सखियो मे वार्ता करती हुई युवरानी का अंकन है। इन चित्रो मे कई कथाओं का सम्मिश्रण हो सकता है लेकिन कथानक बौद्ध धर्म के चैत्य एवं विहार, गुफाओं के निर्माण, दान एवं उसके परिभ्रमण पर ही आधारित है। परवर्ती चित्रकारों की तुलना में इस समय के कलाकारो ने कम रगो एव समुचित पृष्ठभूमि मे भावपूर्ण अकन किया है।

गुहा-मंदिर क्र. सं. 10

यह वह गुहा है जिसे अंग्रेज सैनिकों ने व्यू प्वाइण्ट से देखा था। इस गुहा में स्थित शिलालेखों से पता लगता है कि इसका निर्माण ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में हुआ होगा। यह अजन्ता का प्राचीनतम चैत्यगृह है। यह 96 फीट गहरा और भीतर 41 फीट चौड़ा है तथा 36 फीट ऊँचा है। मण्डप एवं प्रदक्षिणा-पथ के बीच में 59 खम्भो की कतार है जो ऊपर से लेकर नीचे तक सतर एवं सीधी है। पर्वत के अन्दर (कुक्षि) ऊपर से नीचे पत्थरों की कटाई कर यहाँ के वास्तुकारों, शिल्पकारों एव चित्रकारो ने जिस भव्य कला-मण्डप का निर्माण किया है वह उनके कठिन श्रम, अदम्य साहस, अटूट साधना एव बहुमुखी प्रतिभा का द्योतक है। इन दक्ष कलाकारों ने नाना भाँति के अलंकरणों से इस कला-मण्डप को सजाने में अपूर्व कौशल का परिचय दिया है। गर्भगृह में उत्कीर्ण स्तूप दो भागों में है—एक गोल अधिष्ठान तथा उसके ऊपर लम्बा अण्ड भाग जो स्तूप के उन्नयन का प्रतीक है। यहाँ हीनयान और महायान युग के अजन्ता के प्रारम्भिक चित्र देखे जा सकते हैं और इन चित्रों को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि चित्रकला की यह परम्परा कई सदी पहले से चली आ रही होगी और इस प्रकार कालसिद्ध कला के रूप में यह हमारे सम्मुख अवतरित होती है।

बोधि वृक्ष पूजा—वीथिका की बायी दीवार पर एक ऐसे चित्र का अंकन है जिसकी ठीक पहचान अभी तक नहीं हो सकी है। दृश्य कुछ इस प्रकार है। एक राजा अपनी रानी, दासी तथा अपने प्रिय पुत्र के साथ चित्रित किया गया है। राजा के पीछे सशस्त्र सैनिक खडे हैं। वृक्ष के

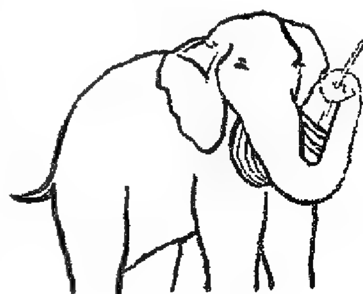
दूसरी ओर नाचती-गाती तथा वाद्य बजाती हुई स्त्रियो का अकन है। ऐसा लगता है कि बोधिसत्त्व से मनौती मानने के बाद पुत्र-जन्म के उपलक्ष्य मे भेट पूजा के लिए राजपुरुष का यह आगमन हुआ है। राजपुत्र ठीक पेड के नीचे खडा है जिससे इस बात की और अधिक पुष्टि होती है। जो भी हो, यह चित्र बडी कुशलता से अनुभवी चित्रकार द्वारा निर्मित है। दृश्य की चित्रयोजना, भावभंगिमा तथा रेखांकन उत्कृष्ट है।



स्तूप पूजा—उपर्युक्त चित्र की दायीं ओर स्तूप पूजा का दृश्य चित्रित है। हो सकता है बोधिवृक्ष पूजा का ही यह अगला भाग हो। इस दृश्य में राजपरिवार स्तूप पूजा हेतु जुलूस में जा रहा है। स्तूप एक प्राकार से घिरा है और सामने एक तोरण-द्वार बना है। चित्र के अंत मे हाथी पर सवार राजा को एक पात्र लिये हुए चित्रित किया गया है। चित्र सभी गुणों से युक्त है।

साम जातक—वीथिका की दायी ओर की दीवार पर साम जातक का अंकन हुआ है। कथानुसार बोधिसत्त्व ने एक अधे दम्पति के यहाँ इकलौते पुत्र साम के रूप मे जन्म लिया जो अपने माता-पिता का श्रवणकुमार की तरह सेवा-शुश्रूषा करता था। एक दिन वह नदी मे मटका भर रहा था तभी वाराणसी के राजा ने जंगली पशु की आवाज समझकर शब्दवेधी बाण चला दिया जिससे उसकी अकालमृत्यु हो गयी। इस पर राजा को बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उसने उसके माता-पिता के पोषण का भार स्वयं लेना चाहा लेकिन एक देवी की कृपा से साम को पुनः जीवनदान मिला तथा अधे माता-पिता की आँखों मे ज्योति भी आ गयी। चित्र के प्रारम्भ मे वाराणसी के राजा को साम की ओर तीर चलाते हुए दर्शाया गया है जो बायें कधे पर घडा रखे हुए है। दायी ओर पश्चात्ताप करते राजा का अंकन एव इसके बाद आश्रम मे शोकविह्वल माता-पिता अपने पुत्र साम के निर्जीव शरीर के साथ चित्रित है। इसके आगे बायी ओर साम पुनः जीवित हो एक पर्ण कुटी मे राजा को उपदेश देता हुआ अंकित है। पर्णकुटी में हिरणो को स्वच्छन्द विचरण करते हुए दर्शाया गया है। जातक की यह कथा बहुत-कुछ श्रवणकुमार की कथा से मिलती-जुलती है केवल अंत में कुछ बदलाव दिखायी पड़ता है। चित्र उत्कृष्ट संयोजन के साथ बड़ी कुशलता से चित्रित है जो कलाकार की कुशलता का परिचायक है।

षड्दत (छदन्त) जातक—साम जातक के दायीं ओर षड्दत जातक का चित्रण है। जातक कथा के अनुसार एक बार बोधिसत्त्व ने छह दाँतों वाले हाथी के रूप में एक हाथियो के राजकुल मे जन्म लिया। उनका शरीर श्वेत रग का तथा मुख एवं पैर लाल रग के थे। हिमालय के समीप एक विशाल सरोवर के किनारे वे अपनी दो रानियों के साथ रहते थे। एक रानी का नाम महासुभद्रा तथा दूसरी रानी का नाम क्षुद्र (चुल्ल) सुभद्रा था। एक बार उन दोनों रानियों के साथ विचरण करते हुए षड्दंत ने एक साल वृक्ष को टक्कर मारा। इस



छदन्त हाथी

टक्कर से महासुभद्रा पर पेड से शहद और फूल गिरे किन्तु क्षुद्रसुभद्रा पर चीटियाँ और टहनियाँ गिरीं। यह देख क्षुद्रसुभद्रा ने सोचा कि षड्दंत महासुभद्रा से ज्यादा प्रेम करता है। वह ईर्ष्या से मरण कामना करने लगी जिससे अगले जन्म मे वाराणसी की रानी बन वह षड्दत से बदला ले सके और ऐसा हुआ भी। क्षुद्र- सुभद्रा अगले जन्म मे वाराणसी के राजा की प्रिय रानी हुई। उसको अपने पूर्व जन्म की बातें याद थी और एक दिन बदले की भावना से बीमार होने का बहाना कर राजा से षड्दत के दाँत मँगवाने का अनुरोध किया। राजा का शिकारी सोनुत्तर सात वर्ष तक उन्हे फँसाने का प्रयत्न करता रहा और एक दिन उन्हें घायल करने मे समर्थ हुआ। षड्दत ने अपने दाँत कटवाने में स्वय मदद की। सोनुत्तर जब पड्दत के दाँत लेकर महल मे पहुँचा तो उन्हें देखकर रानी दु:ख से व्याकुल हो उठी और अन्ततः उसने अपने प्राण त्याग दिये। इस जातक कथा का चित्रण गुहा-मंदिर क्र० सं० 17 मे भी हुआ है लेकिन जिस प्रकार इसका सुन्दर चित्रण यहाँ हुआ है वैसा वहाँ नहीं दिखायी पड़ता। यहाँ की भित्ति पर इसके चुने हुए दृश्य का बडा ही सफल संयोजन दिखायी पडता है। पहले भाग मे हिमालय की तराई मे झील के किनारे हाथियों के दल का अकन है। विभिन्न मुद्राओं में क्रीडारत हाथियो का चित्रण बहुत उत्कृष्ट रूप में हुआ है। अजगर से स्वयं को छुड़ाते हुए एक हाथी, झील से कमल-दल तोडकर दूसरे हाथी को देते हुए तथा पृष्ठभूमि मे हिमालय पर्वत, झील मे कमल-दल एव वटवृक्ष-लटकती जडों का चित्राकन बड़ी कुशलता से हुआ है। षड्दत का चित्रण भव्य तथा बडे आकार में हुआ है। अगले भाग मे महल मे बीमारी का बहाना बनाकर लेटी हुई रानी, उसके पास राजा तथा कुछ ऊपर व्याघ का चित्रण हुआ है जो कुछ छोटे आकार मे है। इसके बाद शिकारी सोनुत्तर द्वारा षड्दंत के दाँतों का काटा जाना, काँवर द्वारा छहों दाँतो का लाया जाना तथा रानी के मूर्च्छित होने आदि का दृश्य बड़ा ही प्रभावोत्पादक है। अंत मे एक युगल को कुछ महिलाओ के पास चैत्यगृह की ओर जाते हुए दिखाया गया है। विभिन्न पात्रों के कार्यव्यापार, मुद्राओ तथा उनके वस्त्रालंकार आदि का चित्रण बड़ी कुशलता से किया गया है। पृष्ठभूमि में प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ-साथ वास्तुकला का सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है।

इस गुहा-मंदिर में कुछ अन्य चित्रों के अवशिष्ट भाग दिखायी पड़ते हैं जिनके बारे मे कुछ विशेष नहीं कहा जा सकता।

गुहा-मदिर क्र. सं. 11

अजन्ता के विविध विहारों मे लगभग 20 विहारो की रचना ईसा की चौथी और छठी सदियों के बीच हुई। इस काल के गुहा-मदिरो मे क्रम सख्या 11 का विहार सर्वाधिक प्राचीन प्रतीत होता है। 11वें मंदिर का गर्भगृह यद्यपि 12वे से छोटा है फिर भी इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। अजन्ता का यह पहला विहार है जिसमे छत को सहारा देने के लिए चार खम्भों को बनाया गया है जबकि इसके पूर्व के केन्द्रीय मण्डप खम्भों से रहित हैं। इस गर्भगृह के अगल-बगल बेडौल कोठरियाँ हैं। शायद मण्डप के बीच की कोठरी देवालय के रूप मे प्रयोग की जाती थी।

यहाँ पर हस्ति जातक की कथा चित्रित है। नन्द की कथा और उसकी विरह व्याकुल रानी के सुन्दर चित्र मण्डप में चित्रित है। एक चित्र में एक तालाब के किनारे कुछ महिलाएँ और बच्चे स्नान कर रहे है। यहीं पर एक भयानक आकृति का चित्रांकन भी मिलता है। द्वार पर का चित्र रहा होगा जो अब नष्ट हो चुका है

गुहा-मंदिर क्र. सं. 12

स्थापत्य की दृष्टि से यह गुहा-मंदिर ईसा पूर्व काल का सबसे प्रारम्भिक विहार है। इससे प्राचीन चैत्य मंदिर क्र० सं० 10 है। धार्मिक दृष्टि से यह मंदिर हीनयान काल का है। इसके सामने का भाग गिर गया है। भीतर का मण्डप चौकोर (38 × 38 फीट) है जो भिक्षुओ के एकत्र होने के लिए उपस्थान शाला का काम देता था। मण्डप के अन्दर खम्भो का निर्माण नही हुआ है। मण्डप के दोनों ओर स्तम्भ पक्ति है जो पीछे की ओर घूमी हुई है। मण्डप के तीन ओर चार-चार कोठरियाँ हैं जिनमे पत्थर में कटे हुए कुल ग्यारह शयनासन हैं जिसके शिरोभाग मे तकिये भी बने हैं।

गुहा मंदिर क्र. सं. 13

यह गुहा मंदिर 12वीं के तुरन्त बाद का है। अतः यह भी ईसा पूर्व हीनयान गुहा-समूह का विहार गृह है। इसका अग्रभाग नष्ट हो चुका है। विद्वानों का मत है कि पहले यहाँ एक बौद्धभिक्षु के रहने के लिए एक अपवरक बनाया गया। बाद में इसके आकार को बड़ा किया गया। सभामण्डप की चौड़ाई 13' 9'', गहराई 16' 6'' तथा ऊँचाई 7 फीट है। सभामण्डप के दायें-बाये तथा सामने की भीतों मे सात कोठरियाँ उत्खनित हैं। सभी कोठरियो मे कटावदार शयनासन बने हैं जो प्रारम्भिक शैलगृही विहारों की विशेषता कही जाती है। इस विहार गृह मे चित्रण के कोई चिह्न वर्तमान नही है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 14

यह एक अपूर्ण विहार गृह है जो 13वी गुहा के ऊपरी भाग मे उत्खनित है। इसका द्वार-मण्डप 63 फीट चौडा, 11फीट गहरा तथा 9 फीट ऊँचा है। छह स्तम्भों तथा दोनो ओर दीवार से लगे अर्द्धस्तम्भ पर टिके इस बरामदे के दोनों ओर एक-एक कोठरी बनी है। मध्य द्वार के ऊपरी कोने सुन्दर शालभंजिलाओ से अलंकृत हैं। इसके अगल-बगल दो छोटे द्वार तथा वातायन भी बनाये गये हैं। सभामण्डप का कार्य अधूरा छोड दिया गया है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 15

विहार गृह के सभामण्डप में खम्भो का अभाव है जो इस गुहा मंदिर का उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है। इसका द्वारमण्डप तीस फीट चौडा तथा साढे छह फिट गहरा है। यहाँ दो पूर्ण तथा दो अर्द्धस्तम्भ थे जो अब नष्ट हो गये है। बरामदे के दोनो ओर एक-एक कोठरी भी खोदी गयी है। यहाँ सिरदल के मध्य चैत्यवातायन तथा दोनो ओर कपोत युगल का यथार्थ उद्रेखण अत्यन्त प्रभावशाली है। इसके अगल-बगल दो-दो चैत्यवातायन का अंकन भी दिखायी देता है। ललाट बिम्ब के मध्य मे नागफणो के मण्डप मे स्तूप का अकन उत्कृष्ट है। द्वारशाखा के नीचे एव ऊपर कीचक, स्थानक पुरुषाकृति, मकरारूढ़ देवियाँ, स्तम्भ शीर्ष तथा पूर्ण घट का उद्रेखण आकर्षक है। सभामण्डप 34 फीट चौकोर है तथा इसकी ऊँचाई 10 फीट के लगभग होगी। अन्तराल के दो पूर्ण तथा दो कुड्य स्तम्भ (अर्द्धस्तम्भ) आधार से चौकोर तथा क्रमशः आठ एव सोलह पहलुओ में ऊपर उठते हैं। गर्भगृह मे आसनस्थ बुद्ध प्रतिमा उडते गंधर्वों एव धर्मचक्र के साथ उत्कीर्ण हैं। सभामण्डप के दोनों ओर चार-चार अपवरक भी उत्खनित है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 15 (अ)

इस संघाराम की गृहमुख भित्ति, मूलतः वेदिका एव चैत्यवातायनों से कभी अलंकृत थी लेकिन अब क्षतिग्रस्त हैं। एकमात्र द्वार से सभामण्डप में पहुँचा जा सकता है जिसके तीनो ओर एक एक ( ) से युक्त उत्खनित हैं कोठरियो के प्रवेशद्वार के ऊपरी भाग में वेदिका आदि उत्कीर्ण हैं

गुहा मंदिर क्र. सं. 16

इस शिलागृही मंदिर की ओर जानेवाली सीढ़ियों के मार्ग को दो हाथियों के शिल्प ने भव्यता प्रदान की है। प्रवेश-स्थान पर नागराज की मूर्ति है। इसका निर्माण वाकाटकवंशीय राजा हरिषेण के राज्यकाल में ईसवी सन् 500 के लगभग हुआ था। विकासात्मक दृष्टि से प्रस्तुत मण्डप की स्थापत्य शैली, देवकोष्ठ के बिना और देवकोष्ठ सहित विहार के मध्य का है। इस स्थापत्य मे खभो से बने कक्ष है जो एक नयी शैली का सकेत देते है। इस शिलागृही मंदिर का सभामण्डप लगभग 65 फुट लम्बा-चौडा है और इसमे चारो ओर बीस खम्भे हैं। सामने की ओर दीवार मे देवालय है जिसमें प्रलम्बपाद आसन मे बुद्ध की मूर्ति प्रतिष्ठित है। देव प्रकोष्ठ के अगल-बगल दो कोठरियाँ हैं तथा दोनों बरामदों और मण्डप के दोनों ओर 14 कोठरियाँ हैं। मुख्यद्वार की दाहिनी ओर जोड़ों पर युगल मूर्तियाँ हर्ष और प्रसन्नता के भाव की अभिव्यक्ति में बेजोड़ हैं। मण्डप की दीवारों पर बुद्ध जीवन तथा जातक कथाओ से सम्बद्ध चित्र बने हैं जो अपने उत्कृष्ट शैली मे निर्मित हैं।

तुषित स्वर्ग में उपदेश—बाहर की बायी ओर सम्मुख दीवार पर बुद्ध को तुषित स्वर्ग मे उपदेश करते तथा वहाँ से लौटते हुए चित्रित किया गया है। पहले दृश्य में बोधिसत्त्व तुषित स्वर्ग से अवतरित होते हुए दिखाये गये हैं। बादलो का चित्रण पारम्परिक है। अगले दृश्य मे बुद्ध सिहासन पर बैठे उपदेश दे रहे हैं तथा देव-देवियाँ उनको घेरकर बैठे हैं। बौद्ध साहित्य मे यह कथा विस्तार से वर्णित है। विश्वतर के बाद बोधिसत्त्व ने तुषित स्वर्ग के एक देव श्वेतकेतु के रूप मे जन्म लिया था।

हस्ति जातक—बायीं तरफ की भीतरी दीवार पर हस्ति जातक के कुछ सदर्भ चित्रित है। आर्यशूर के जातक-माला में हस्ति जातक की कथा इस प्रकार है। एक जन्म में बोधिसत्त्व ने एक उदारमना हाथी के रूप में जन्म लिया। वे जगल मे अकेले रहते थे। एक दिन उन्होंने दूर से कुछ व्यक्तियों की आर्तनाद की आवाज सुनी। वहाँ पहुँचने पर उन्हे पता चला कि सात सौ आदमियों का एक समूह भूख तथा प्यास से व्याकुल तड़प रहा है। अपनी विशालता के कारण भयभीत हुए उन लोगों का भय दूर कर उन्होंने उनकी इस अवस्था का कारण पूछा। उन लोगो ने बताया कि वे राजा द्वारा निष्कासित है और भूख-प्यास के मारे मृत्यु की बाट जोह रहे हैं। उनकी बात सुन बोधिसत्त्व ने उन्हे दूसरी ओर पहाडी के नीचे जाने का निर्देश दिया और उन्हे बताया कि वहाँ एक हाथी तुरन्त मरा हुआ मिलेगा उसका मांस भक्षण कर वे अपनी जान बचा ले। उन्हे यह बात बताने के बाद वे जल्दी-जल्दी पहाडी के ऊपर गये और वहाँ से कूदकर अपनी जान दे दी। निष्कासित यात्रियों का दल पहाड़ी के नीचे झील के किनारे पहुँचा तो एक मरा हुआ हाथी देखा। उन लोगो ने उसे पहचान लिया कि यह वही हाथी है। उनकी दया के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन लोगों ने हाथी के मास को काट-काट कर खाया और झील से पानी पी शेष यात्रा पूर्ण की। चित्र मे यात्रियों का समूह चित्रित है जो भूख के कारण व्याकुल है। पीठ पर सामान लदा है और पहाड पर खड़े हाथी की ओर वे इंगित कर रहे हैं। दूसरे दृश्य में वह दयालु हाथी मरा पडा है, वे उसके मास को काट रहे हैं, कुछ लोग मास भून रहे हैं, कुछ खा रहे है तथा कुछ लोग पानी लाते चित्रित हैं।

[illegible] जातक मंडप में प्रवेश करने पर बायी ओर की कोठरी के पहले [illegible] की कथा चित्रित है इस जातक के अनुसार महोसध नामक बालक को दैवी शक्ति प्राप्त थी

जिसके अनुसार वह कुछ गम्भीर विवादों का बुद्धिमत्तापूर्वक समाधान प्रस्तुत करते हुए चित्रित किया गया है। चित्र के ऊपरी भाग में महोसघ लागो के बिवादो को सुन रहा है। चित्र के नीचे असली माँ के निर्णय के प्रसंग का चित्रण है। एक दुष्ट स्त्री द्वारा दूसरी स्त्री के बच्चे को अपना बच्चा बताने पर यह निर्णय लेना कठिन हो गया कि असली माँ कौन है। महोसंघ ने बच्चे को दो भागों में काटकर बाँटने का आदेश दिया। ममतामयी माँ इस आदेश से पुत्र-मृत्यु-भय से अपने अधिकार छोड़ने को तत्पर हो जाती है। इससे महोसंघ समझ जाता है कि कौन असली माँ है। यही प्रसग यहाँ चित्रित है। नीचे दाये भाग मे इसी प्रकार रथ के स्वामित्व के विवाद का हल एक सरल परीक्षा द्वारा किया गया है। इसी भित्ति के कुड्य स्तंभ पर महोसघ द्वारा दिये गये तीसरे निर्णय का दृश्य अंकित है। महोसंघ के तालाब में एक स्त्री तालाब के किनारे सूत का गोला रख स्नान करने गयी। अवसर पा दूसरी स्त्री ने उसे चुरा लिया। फरियाद करने पर महोसंघ ने यह पूछकर कि गोला किस वस्तु पर लिपटा हुआ है अपना सही निर्णय दे देते है। इस प्रकार नकली दावेदारो के प्रसंग का चित्रण बड़ी कुशलता से किया गया है।

नन्द की दीक्षा—भित्ति स्तभों के बीच बायी दीवार पर नन्द की बुद्ध-धर्म-दीक्षा और उसकी पत्नी सुन्दरी का वियोग के कारण मृत्यु की कथा चित्रित है। भगवान् बुद्ध बोधि प्राप्त करने के बाद कपिलवस्तु आये। महल मे अपनी पत्नी यशोधरा एव पुत्र राहुल से मिलने के बाद अपने मौसेरे भाई नन्द से मिलने गये। नन्द उस समय अपनी पत्नी सुन्दरी के मोहपाश में बँधा उसके प्रसाधन में व्यस्त था। रनिवास से बाहर आने पर भगवान् बुद्ध अपना भिक्षापात्र उसके हाथ में रख देते हैं और वह उनके सम्मोहन में बँधा विहार गया जहाँ बुद्ध ने उसके सिर का मुडन करवाकर उसे प्रव्रज्या (संन्यास) दे दी। नन्द के दीक्षित होने पर सेवक नन्द का मुकुट लेकर उसकी पत्नी सुन्दरी के पास आता है। मुकुट देखकर सुन्दरी विरह व्यथा से व्याकुल हो मूर्छित हो खाट पकड लेती है और अन्ततोगत्वा मृत्यु को वरण करती है। इधर प्रव्रज्या स्वीकार करने के बाद भी नन्द का मन अपनी सुन्दरी पत्नी की ओर से हटा नहीं। यह जानकर बुद्ध उसे स्वर्ग ले जाकर अतिरूपवती अप्सराओं को दिखाते है और उसे आश्वासन देते हैं। कि भिक्षुव्रत के बाद ये अप्सराएँ उसे उपलब्ध हो जायेगी। वह इन्हें प्राप्त करने के उद्देश्य से कठोर व्रत साधना करता है लेकिन अपने साथियों द्वारा उपहास किये जाने के बाद वह सही रास्ते पर आ जाता है और उसे अर्हत्पद प्राप्त होता है। इस चित्रमाला का बहुत-सा भाग नष्ट हो गया है। पहले भाग में नन्द के दरबार का दृश्य अंकित है। दूसरे दृश्य में सुन्दरी के लिए नन्द विषाद करते हुए चित्रित हैं तथा बुद्ध के साथ दिव्य लोक की ओर जाते हुए दिखाये गये हैं कथा का उत्तरार्द्ध एक बडी चित्रपट्टिका के रूप में बायीं ओर चित्रित है। इस चित्र का नामकरण कुछ विद्वानों ने '**मरणासन्न रानी**' अथवा '**मरती हुई राजकुमारी**' के रूप में किया है जो इसी कथा का एक भाग है। इस कथा-प्रसंग का सबसे आकर्षक तथा कलात्मक भाग नन्द पत्नी सुन्दरी के चित्र में जीवन्त हो उठा है। सेवक द्वारा नंद का मुकुट ले आने पर वह समझ जाती है कि नन्द ने वैराग्य ग्रहण कर लिया है और वह शोक-विह्वल हो मूर्च्छित हो जाती है। यह विरह की दशमदशा कही जाती है। इस दृश्य को चित्रकार ने बड़ी कुशलता से रूपायित किया है। एक महल के कक्ष में सुन्दरी अधलेटी अवस्था में चित्रित है। पीछे से उसकी एक दासी बगल में हाथ डालकर उसे बैठने में सहायता प्रदान कर रही है। रानी सुन्दरी के दायीं ओर बैठी सखी उसे सान्त्वना देने की मुद्रा में उसका दायाँ हाथ पकड़े है। उसके बगल में एक लम्बे डंडेवाले पंखे को लिये दूसरी परिचारिका खडी है। उसके और बाये एक चिन्तित सेवक है और दायीं ओर दो स्त्रियाँ मौन खड़ी है बायीं

ओर की परिचारिका कुछ कहने की मुद्रा में हाथ आगे बढाये हुए है तथा दायीं ओर की स्त्री जो बायें हाथ में दवा का प्याला पकडे है दाहिने हाथ की दो उँगलियो मे कुछ सकेत कर रही है। हो सकता है यह सकेत दो घडी का हो। मडप में मोर का चित्रण प्रतीकात्मक रूप मे हुआ है। सुन्दरी को दु:खदायी सूचना देते प्रहरी, परिचारिकाओ की शोक-विह्वल सेवारत मुद्राएँ तथा सुन्दरी की **मर्मान्तिक** व्यथा को कलाकार ने जिस बारीकी से चित्रित किया है उससे पूरे कथा का भाव-ससार मुखर हो उठा है। यह चित्र विश्व की श्रेष्ठतम रचनाओ मे से एक है और इसकी प्रशसा मे 1872-73 मे यहाँ आये हुए जॉन ग्रिफिथ ने लिखा है कि व्यथा के **मर्मान्तक** भावो का इतना कलापूर्ण चित्रात्मक आविष्कार दुनिया मे अन्यत्र कहीं नहीं है। वह आगे लिखता है कि फ्लोरेण्टाइन की रेखाएँ प्राय: इससे सुन्दर है और वेनेशियन के रंग इससे ज्यादा अच्छे हैं पर भावो का आविष्कार इस जैसा दोनो जगह नहीं है। यह चित्र प्रसग अश्वघोष के काव्य सौन्दरानद की कथा से उद्धृत है।

आकाशचारी अप्सरा—बायी ओर की भित्ति के अन्तिम दाहिनी ओर एक अप्सरा का चित्र अकित है जो हवा मे उडती हुई दिखायी गयी है। इस अप्सरा का सुन्दर केश-विन्यास, जूडे मे लगा फूलो का हार, लहराती अलकावली, कान में झूलते कुण्डल तथा अन्य वस्त्राभूषण और अलकरणों से सुशोभित अप्सरा का भव्य एव मनोहारी चित्रण हुआ है।

बुद्ध आकृतियाँ—मण्डप की बायीं भित्ति के एक कोठरी के ऊपर सात मानुषी बुद्धों तथा बुद्ध मैत्रेय की आकृतियाँ दिखायी पड़ती हैं। ऊपर की पक्ति मे बुद्धो की छत्ररहित आकृतियाँ है जबकि निचले पक्ति मे इनके सिरो पर छत्रो का अकन है। ये दो रंगों में निर्मित हैं कुछ लोगो की धारणा है कि ये चित्र बाद के हैं। वही पर एक लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि छठी शताब्दी भदंत धर्मदत्त तथा भदंत बापुक द्वारा ये चित्र बनवाये गये थे।

अजातशत्रु—सम्मुख भित्ति की बायी ओर बुद्ध से अजातशत्रु के भेट का दृश्य चित्रित है। राजा अजातशत्रु को अपने दल-बल के साथ बुद्ध से मिलने जाते हुए दिखाया गया है। इस जुलूस मे सुसज्जित हाथी, पैदल सैनिक, वादक आदि सम्मिलित है। राजा अजात् शत्रु का हाथी प्रभावशाली रूप में तथा कुछ महिलाओ को भी हाथी के ऊपर सवार चित्रित किया गया है। कथा इस प्रकार है—अजातशत्रु का मन अपने पिता की हत्या करने के पश्चात् अस्थिर हो उठा। इसका पश्चात्ताप करने के लिए उसने किसी महापुरुष से मिलकर उपाय जानना चाहा। राजवैद्य जीवक ने भगवान् बुद्ध की चर्चा की जो उसके आम्रोद्यान मे ठहरे हुए थे। वह अपनी रानियो सहित हाथी पर सवार हो आम्रोद्यान पहुँचा। वहाँ उसने भगवान् बुद्ध से कई प्रश्न किये तथा समुचित उत्तर प्राप्त कर उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया तथा उनके शरण मे चला गया। इस कथा को चित्रकार ने बडी कुशलता के साथ चित्रित किया है।

बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित चित्र—दाहिनी दीवार पर बुद्ध-जीवन के विभिन्न दृश्य अंकित हैं। प्रथम दृश्य मे मायादेवी के स्वप्न का अकन है जिसमें मायादेवी को राजमहल के एक कक्ष मे पर्यङ्क पर सोते हुए दिखाया गया है। पास ही जमीन पर उनकी दो दासियाँ भी लेटी हुई हैं। इसके बाद मायादेवी शुद्धोधन को अपने स्वप्न के विषय मे बताती हुई चित्रित हैं। दूसरे दृश्य में ऋषि असित नवजात शिशु को अपनी गोद में लेकर उसके भविष्य के बारे मे बता रहे हैं। अगले दृश्य मे ऊँची नोकदार टोपी पहने सिद्धार्थ अपने सहपाठियो के साथ विद्याभ्यास कर रहे है इसके नीचे धनुर्विद्या के अभ्यास का चित्र है जो बडे ही ढग से चित्रित है दायीं

ओर आगे बढने पर गौतम बुद्ध द्वारा मनुष्य की चार अवस्थाओ वृद्ध, व्याधिग्रस्त, मृत तथा सन्यास को देखे जाने का चित्रण दिखायी पडता है जिससे बुद्ध को वैराग्य हुआ था। अगले दृश्य मे भगवान् बुद्ध बुद्धत्व प्राप्ति के बाद सुजाता से खीर ग्रहण करते हुए चित्रित है। यह चित्र बडा ही मार्मिक है। इसके बाद एक-दो और दृश्य है जिनमे बुद्ध को राजमहल जाते तथा व्यापारियो से भेट-उपहार स्वीकार करते हुए दिखाया है।

इस गुहा मंदिर मे विविध प्रकार के आलेखनों का भी चित्रण सुरुचिपूर्ण है।

गुहा मंदिर क्र० सं० 17

यह गुहा मंदिर आकार-प्रकार और शोभा में लगभग सोलहवें मंदिर के समान है। इन दोनो गुहा मंदिरों का निर्माण-काल भी एक है अर्थात् इसका निर्माण भी वाकाटको के राजा हरिषेण के जमाने में हुआ था। यहाँ स्थापत्य, शिल्प तथा चित्रकला का विकसित रूप देखने को मिलता है। सोलहवें गुहा मदिर की अपेक्षा यहाँ चित्रो का अकन विस्तार से हुआ है जिसमे जातक कथाओ के चित्रण को प्रमुखता मिली है। ये चित्र बडे भव्य, ताजे एवं सुरुचिपूर्ण है। बरामदे से लेकर मण्डप कक्ष तक नाना प्रकार के चित्र दिखायी पडते हैं जिसमे कलाकार ने अपने अद्‌भुत कलात्मक क्षमता का परिचय दिया है।

जीवन-चक्र — बरामदे की बायीं ओर की दीवार पर जीवन-चक्र का अकन बडा प्रभावशाली है। कुछ लोगो ने इसे 'ससार चक्र' का प्रतीक माना है। विदेशी कलाविदो ने इसे 'क्राति चक्र' कहा और इस गुहा मदिर का नाम 'क्रांति चक्र गुफा' रख दिया था। चक्र के आठ भाग के तीन भाग मे गवाक्ष हैं अत· शेष पाँच भाग को बॉटकर इसे चित्रित किया गया है। चक्र के केन्द्र भाग से परिधि तक अराएँ बनायी गयी हैं। कुछ विद्वानो ने इसे षट्‌चक्र भी माना है। इस चक्र के चित्रण के पीछे निश्चय ही कोई आध्यात्मिक अथवा दार्शनिक सदर्भ है जिसे ठीक से जाना नही जा सका है। इस प्रकार के चित्र तिब्बत मे भी उपलब्ध हुए हैं। जीवन-चक्र के केन्द्र मे वानर, मिथुन, कुम्हार, ऊँट आदि मानव एव पशु आकृतियाँ चित्रित हैं। चक्र के अराओ के बीच जीवन के विभिन्न दृश्य अंकित हैं। राजमहल के कार्य-कलाप, युगल प्रेमी, हाट-बाजार, नृत्य एवं संगीत सभा, किसानो की बस्ती, उद्यानगोष्ठी तथा अरण्य मे साधना करते हुए ऋषि-मुनियो आदि को इस जीवन चक्र में समायोजित कर उनका अपूर्व चित्रण हुआ है।

राजदम्पति द्वारा भिक्षादान—खिडकी के ऊपर की तरफ के चित्र में एक राजदम्पति को बैठे हुए दर्शाया गया है। दूसरे दृश्य में राजा दान दे रहे है। उनके पास दान प्राप्त करनेवाले भिक्षुओ, साधु-संन्यासी तथा राजकर्मचारियो की भीड एकत्रित है। इन मानव आकृतियो की भाव-भगिमा तथा उनकी अलग-अलग वेशभूषा देखते बनती है। कुछ लोगों ने इस दृश्य को विश्वतर जातक से सम्बन्धित माना है। हो सकता है कलाकार ने स्थानाभाव को देखकर इसे अधूरा छोड़ दिया हो और बाद मे अन्दर मण्डप की बायी दीवार पर इसका विस्तृत अंकन किया हो। आलंकारिक शैली में निर्मित यह चित्र रग संगति एव कलात्मकता के कारण दर्शको को सहज ही आकृष्ट कर लेती है।

आकाशचारी गन्धर्व तथा इन्द्र—मुख्य द्वार के बायीं तरफ बाहर बरामदे की दीवार पर देवेन्द्र तथा गन्धर्व कन्याओ का आकाशचारी दल चित्रित है जो बोधिसत्त्व को तुषित स्वर्ग मे आने पर स्वागत करने जा रहा है। बादलो की विशिष्ट रंग संगति के कारण स्वर्ग लोक के इन निवासियों की उड़ानें एकदम सजीव हो उठी हैं उड़ते हुए देवी देवताओं की मुद्राओं और घुटनों

के मोड एव अलकरणों के बिखराव से हवा में इनकी गतिशीलता का बोध होता है। आडी धारियो वाले अधोवस्त्र पहने इन्द्र किरीट, मुकुट, कुडल, एकावली, जडाऊ हार, मुक्ता-यज्ञोपवीत, केयूर, कटक तथा असि आदि आभूषणो से सुसज्जित हैं। इन्द्र के आगे-पीछे बाँसुरी, मजीरे, वीणा आदि वाद्य बजाती गन्धर्व क एँ एव पुरुष अकित हैं। थोड़े नीचे दाहिनी ओर चित्रित अप्सरा वंशी बजाती हुई, ग्रीवा को किंचित् मोडकर देवेन्द्र को देख रही है। उसकी देह-यष्टि का झुकाव बडा स्वाभाविक है। देवेन्द्र के पास की दोनो अप्सराओं के अग भी सुडौल हैं जिनकी मुख-मुद्रा में भोलापन एवं सौन्दर्य में आकर्षण है। कुछ लोगों ने इस चित्र का नामकरण '**दिव्य गायक**' के रूप मे भी किया है।

अप्सरा—मुख्य द्वार के दाहिनी ओर हवा मे उड़ती अप्सरा का अकन बड़ा ही लुभावना है और यह चित्र चित्रकला की ऊँचाई को स्पर्श करने मे सक्षम हुआ है। सिर पर बँधे उष्णीपट्ट (सम्भवतः बाटिक कला द्वारा तैयार कपडे की हल्की पगडी या टोप) पर शिरोभूषण (कलँगी) लगी है जिससे झूलती मोतियों की लडियाँ हवा से दाहिनी ओर उड रही है। कानो मे बडे आकार की बाली, गले में कण्ठाहार तथा जडाऊ अलकृत मुक्ताहार, बाँह मे बाजूबंद तथा कलाई में कंगन आदि आभूषणों से सुसज्जित अप्सरा बादलो के बीच दृष्टिगत होती है। उसके उडने की गति की व्यंजना उसके मोतियों की माला तथा फीते (रिबन) को दाहिनी ओर उड़ते हुए दिखाकर बड़े ही सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया गया है। चित्र में छाया-प्रकाश की सीमा रेखाएँ तूलिका के कुशल संचालन द्वारा सघनता का प्रभाव तथा चेहरे की अद्‌भुत भाव-भगिमा का अकन आदि चित्रकार की महान् प्रतिभा और उसकी अपूर्व कौशल की परिचायक हैं। इसके आस-पास का बहुत-कुछ भाग नष्ट हो गया है लेकिन जो कुछ है वह चित्रकला की बहुमूल्य थाती है।



मानुषी बुद्ध—द्वार के लिंटल के पैनल में मानुषी बुद्ध की सात आकृतियाँ चित्रित हैं। ये आकृतियाँ विपश्यी, शिखी, विश्वभू, क्रकुच्छंद, कनक मुनि, काश्यप, शाक्यमुनि तथा भावी बुद्ध मैत्रेय ""ी है। ये सभी बुद्ध अपने-अपने बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हैं। विभिन्न बुद्ध की चारित्रिक विशेषता के अनुसार चेहरे के भाव का सफल अंकन यहाँ दिखायी पड़ता है।

नलगिरिदमन—बरामदे के दाहिने भाग में दीवार के आखिरी सिरे तक नलगिरि नामक **खूँख्वार** का चित्र है जिसे भगवान् बुद्ध ने पालतू हाथी के रूप में परिवर्तित किया था

यह चमत्कार बुद्ध द्वारा दिखाये गये आठ चमत्कारों में से एक है। तथागत के सौतेले भाई तथा प्रतिस्पर्द्धी देवदत्त ने अजातशत्रु से मिलकर उन पर नलगिरि नामक एक पागल हाथी छुडवा दिया। मुक्त हाथी नगर के रास्तो से चिंघाडता और तहस-नहस करता हुआ भागने लगा। डर के मारे वहाँ के सारे नागरिक भयभीत हो उठे और उनमें आतक फैल गया लेकिन वही हाथी जब भगवान् बुद्ध के पास पहुँचा तो शात हो गया। भगवान् बुद्ध द्वारा माथे पर मृदुल थाप लगाते ही वह हाथी एकदम नम्र एवं पालतू बन गया। चित्र मे ऊपर देवदत्त और अजातशत्रु को भगवान् बुद्ध के प्रति षडयंत्र करते हुए दिखाया गया है। नीचे मदमत्त गजराज के भय से घबरायी हुई राजरानियो का चित्रण है। रास्ता, दूकानें तथा किवाड बन्द करते घबराये लोग आदि छोटे-बडे विवरणो से भरा यह पैनल कलाकार के निरीक्षण कौशल का परिचायक है। बुद्ध के सामने नत नलगिरि हाथी तथा उसके मस्तक को थपथपाते बुद्ध का चित्रण बडा भावपूर्ण है। अत में बुद्ध को उपदेश देते हुए चित्रित किया गया है। प्रभावशाली रग-योजना एव बात-व्यवहार के अनुसार मानव आकृति की भाव-भंगिमा का चित्रण चित्रकार ने बडी कुशलता से किया है।

षड्दंत जातक—मुख्य द्वार से मण्डप में प्रवेश करते ही बायी ओर की दीवार पर षडदत जातक का चित्रण दिखायी पडता है। इस जातक कथा का अकन सातवाहनकालीन गुहा मदिर क्र० स० 10 मे हुआ है और उसी को यहाँ दुहराया गया है। इस कथा-चित्र को देखकर स्पष्ट आभास होता है कि कलाकार को वैसी सफलता यहाँ नहीं मिली है जैसा कि गुहा मंदिर क्र० स० 10 में दिखायी पडती है। इस चित्र का कुछ भाग फीका पड गया है तथापि मुख्य दृश्य एव कथानक पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। चित्र मे बोधिसत्त्व को छह दातों वाले सफेद हाथी के रूप मे जन्म लेकर अपनी रानी महासुभद्रा एव क्षुद्रसुभद्रा के साथ जगल मे दिखाया गया है जहाँ साल वृक्ष से टक्कर के कारण क्षुद्रसुभद्रा पर लाल चींटी का गिरना और महासुभद्रा पर फूल गिरने की घटना घटती है। ऊपर बायी ओर रानी के महल का चित्रण शायद क्षुद्रशुभद्रा की वाराणसी की रानी बनने की आकांक्षा से सम्बन्धित है जिससे वह षड्दंत से इस घटना का बदला ले सके। इसके बाद गज-समूह के साथ गजराज को झील मे क्रीडा करते हुए तथा शिकारी सोनुत्तर को तीर चलाते हुए दिखाया गया है। षड्दत के दाँत को काटकर ले जाना, उसे रानी को दिखाना तथा रानी द्वारा राजा के हाथ में प्राण त्याग देने का अगला दृश्य भी बड़ा मार्मिक है।

महाकपि जातक—गवाक्ष से ऊपर वाला दृश्य महाकपि जातक का है। कथा कुछ इस प्रकार है। एक बार बोधिसत्त्व ने वानरराज के रूप मे जन्म ग्रहण किया। वे अपने समूह के साथ गगातट के आम्रकुंज में रहते थे। बन्दरो ने उस आम्रकुज में फल खाने के साथ खूब धमा-चौकडी मचायी जिसकी सूचना वहाँ के राजा ब्रह्मदत्त को मिली। राजा को यह अच्छा न लगा और उसने बन्दरो को पकड़ने के लिए एक दिन वहाँ शिकारी द्वारा जाल लगवा दिया। इस प्रकार बन्दर वहाँ फँस गये। यह देख बोधिसत्त्व रूपी महाकपि ने एक बाँस की सहायता से बन्दरों को वहाँ से निकालना चाहा लेकिन बाँस छोटा था इसलिए शेष भाग के लिए अपने शरीर का विस्तार कर उसका उपयोग किया अर्थात् उन्होने अपने शरीर को बीच का पुल बना दिया और बन्दरो को अपने शरीर के ऊपर से गुजरते हुए भाग जाने का निर्देश दिया। बन्दर उनके शरीर पर से होते हुए भागने लगे। उसी वानर समूह में देवदत्त नामक बन्दर भी था जो महाकपि का प्रतिद्वन्द्वी था और उनसे चिढता था। वह उनके शरीर से गुजरता हुआ इतनी जोर से कूदा कि उनका शरीर चूर हो गया बोधिसत्त्व के इस त्याग को देखकर राजा ब्रह्मदत्त द्रवित हो उठे और उन्होंने वहाँ से बोधिसत्त्व को धीरे से कम्बल पर उतरने को कहा बोधिसत्त्व रूपी महाकपि के

स्वस्थ होने पर उन्होंने उससे उपदेश ग्रहण किया। चित्र मे दायी ओर नदी का दृश्य चि
आगे राजा अपने धनुर्धारियो सहित घोड़े पर बैठा है। शिकारी बन्दरो पर धनुष से तीर
है। ऊपर की ओर बन्दर महाकपि के तने शरीर पर से गुजरते हुए अपने प्राण बचा रहे
राज-कर्मचारी महाकपि को उतारने के लिए कम्बल पकडे है। इसके बाद कपि रूपी व
के द्वारा वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त को उपदेश देना आदि दृश्यो का बड़ी कुशलता से
किया गया है।

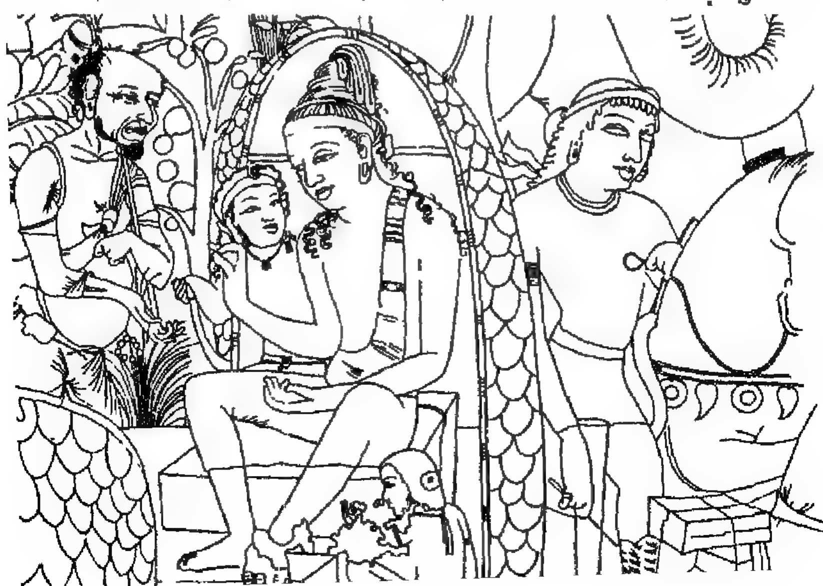
हस्ति जातक—दीवार के शेष भाग पर हस्ति जातक का अकन दिखायी पडता
मदिर क्र० सं० 16 में भी हस्ति जातक का चित्रण हुआ है जिसकी कथा का उल्लेख उ
के प्रसग मे किया गया है। इस स्थान पर उक्त कथा के कुछ सदर्भ ही दिखायी पडते है।
अधिकांश खराब हो गया है। मरे हुए गजराज का मास निकालकर खाते हुए लोगो
स्पष्ट है।

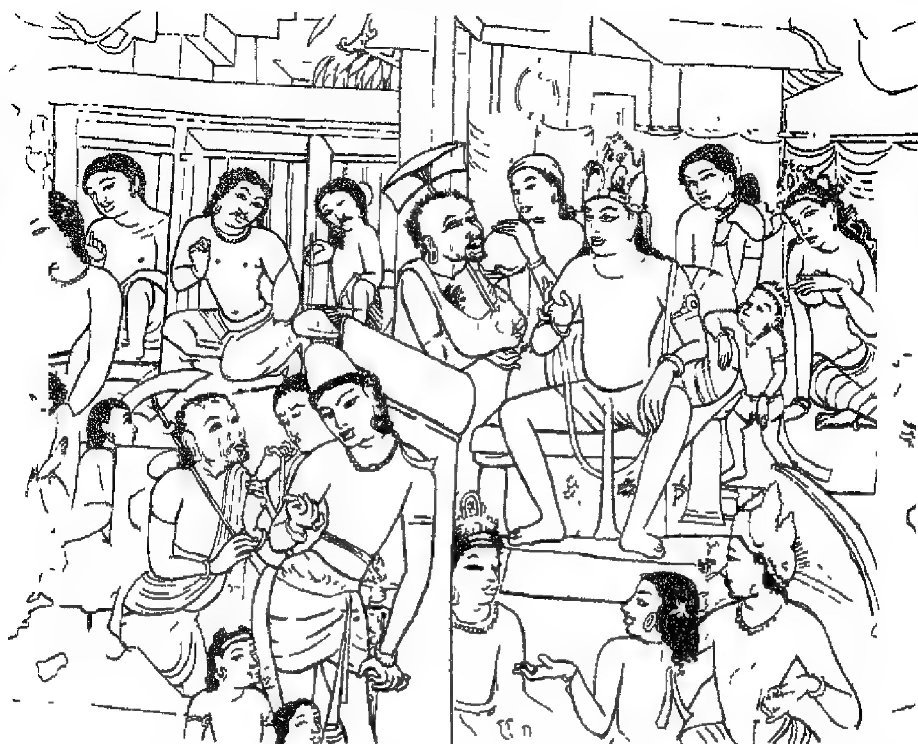
हंस जातक—इससे आगे बने हुए चित्र का विषय हंस जातक है। गुहा मंदिर क्र०
महाहंस जातक की कथा चित्रित है। यह चित्र भी उसी कथा से सम्बन्धित लगता हे। व
इसे एक दूसरी कथा से भी जोड़ने का प्रयास करते हैं जिसमे कमल सरोवर से शिकारी
को पकड़ते हैं और उन्हें वाराणसी के राजा के हाथ बेच देते हैं। राजा बाद मे उसस



ग्रहण करता है। कथा जो भी हो, कमल सरोवर से उठते हुए हंसो का चित्रण बड़ा ही मनोहारी ्है। दूसरे दृश्य में वाराणसी के राजा-रानी अपने सभासदों के साथ बोधिसत्त्व रूपी हंस से उपदेश सुन रहे हैं। यह भित्तिचित्र भित्ति के साथ लगे कुड्यस्तंभ के ऊपरी भाग तक चित्रित है।

विश्वंतर जातक (वेस्सन्तर)—बीथिका की बायीं तरफ की दीवार का पूरा क्षेत्र विश्वतर जातक कथा के दृश्यों से भरा है। अजन्ता की कला-वीथिकाओ की दीवार पर इतने विशाल फलक की चित्रकारी केवल यहीं मिलती है। जातक कथा के अनुसार एक बार बोधिसत्त्व राजा ने विश्वतर के रूप मे जन्म ग्रहण किया। स्वभाव से बहुत उदार एवं सम्वेदनशील होने के कारण विश्वतर ने दान दे देकर अपना राजकोष शीघ्र ही खाली कर दिया। यहाँ तक कि उन्होंने उस हाथी को दान मे दे दिया जिसके कारण अकाल मे भी वर्षा होती थी। इससे जनाक्रोश बढ़ा और राजा को राज्य छोडकर जाना पड़ता है। लेकिन उनकी दान देने की प्रवृत्ति यही समाप्त नहीं होती और आश्रम मे रहते हुए भी वे अपनी सम्पत्ति, आभूषण तथा बच्चों और पत्नी को दान में दे देते हैं। लालची ब्राह्मण जूजक राजा के पुत्रों को बेचने निकलता है जिसे विश्वंतर के पिता खरीद लेते है और उन्हें अपने सरक्षण मे ले लेते हैं। राजा की पत्नी जिस शक्र नामक ब्राह्मण को दान में दे दी गयी थी वे स्वयं इन्द्र थे जो विश्वंतर की परीक्षा ले रहे थे। वे उनकी दयालुता से प्रसन्न हो सब-कुछ उन्हे लौटा देते हैं। इस प्रकार विश्वतर अपनी पत्नी भाद्री के साथ अपने राज्य मे वापस लौटता है। प्रस्तुत भित्तिचित्र के अंकन मे तत्कालीन कलाकारो ने अपने कला-कौशल का अच्छा परिचय दिया है। चित्र की सशक्त योजना के अतिरिक्त पात्रों की चारित्रिक विशेषतानुसार उनके मुद्राओ और भावो के अंकन में चित्रकार विशेष रूप से सफल हुआ है। इन चित्रों को देखकर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि मानव शरीर संरचना और शारीरिक अवयवो के अंकन में चित्रकार को महारत हासिल थी। चित्र में विश्वतर के रूप में बोधिसत्त्व का जन्म लेना, राज्य का हाथी को दान मे देना, राज्य से बिदा लेना, चार अश्वों से युक्त रथ में बैठकर नगर से गुजरना, आश्रम में निवास, लालची ब्राह्मण को दान देना आदि प्रसंगों को चित्रकार ने बड़ी कुशलता से





चित्रित किया है। लोभी ब्राह्मण जिसका एक दॉत टूटा हुआ है, का चित्रण बड़ा ही प्रभावशाली एव आकर्षक है। चरित्र-चित्रण-कौशल इस समय अपनी सीमा छू गया है। विस्तृत भित्तिचित्र का आदर्श यहाँ देखने को मिलता है। यद्यपि चित्र अच्छी अवस्था मे नही है फिर भी चित्रों का विवरण स्पष्ट है।

सुतसोम जातक—अतराल की बायी ओर की भित्ति तथा बायी ओर के पिछले बरामदे की कोठरी के ऊपरी भाग पर इस जातक कथा का चित्रण दृष्टिगत होता है। जातक कथा के अनुसार राजा सुदास एक बार जंगल में शिकार खेलने जाता है। वहाँ वह अपने सहयोगियो से बिछुड जाता है। जंगल में अकेला थका-हारा वह एक स्थान पर सो जाता है। उसी समय एक सिहनी आती है और उसका तलुआ चाटकर उसे उठाती है। राजा उसके इस व्यवहार से भयमुक्त हो कुछ दिन उसके साथ रहता है। जगल में सिहनी को राजा से एक पुत्र प्राप्त होता है जिसे वह अपनी पीठ पर लेकर राजमहल आती है। सिहनी पुत्र होने के कारण सौदास की मनुष्य मास खाने की वृत्ति बनी रही। जब लोगो को उसकी इस वृत्ति का पता चलता है तो लोग उससे इस आदत को छोड़ने का अनुरोध करते हैं। सौदास राजा बनता है और अपनी मनुष्य मांस भक्षण की प्रवृत्ति को नही छोड़ पाता जिससे नाराज हो उसे देश निकाला दे दिया जाता है। सौदास जगल मे रहकर यात्रियो को पकड-पकडकर खाता रहता है। बोधिसत्त्व कुरु राज्य के राजकुमार सुतसोम के रूप में जन्म लेते हैं। एक दिन वह सुतसोम को पकड लेता है। बोधिसत्त्व ने उसे उपदेश दे उसके इस मांस खाने की घृणित आदत को छुडवा दिया भित्तिचित्र में कथा दायीं ओर के निचले चित्र से प्रारम्भ होती है जहाँ सुदास शिकार पर जाता है और जगल में अपने सहयोगियो से

विछड जाता है। घोडे पर सवार राजा को विभिन्न शस्त्रास्त्रो एव वस्त्राभूषण दिखाया गया है। ऊपर की ओर शिकारी कुत्ते हरिण के पीछे दौडते हुए चित्रित अगले दृश्य में राजा अकेले निद्रानिमग्न है और एक सिहनी वहाँ आकर उनका पै इसी के कुछ ऊपर सिहनी के साथ राजा को बैठे हुए चित्रित किया गया है। ऊपर बाजार से होते हुए महल के द्वार की ओर बढती सिंहनी, जिसकी पीठ पर उसक लोग आश्चर्य से देख रहे है। सबसे दायी ओर गोद में बालक लिये राजा तथा सि है। नीचे सौदास को शस्त्राभ्यास करते हुए दिखाया गया है। उसकी बायी अ राज्याभिषेक तथा मनुष्य मांस भक्षण का चित्र दिखायी पडता है। कुछ ऊपर सौदा भागा एक व्यक्ति तथा सौदास से अपनी आदत छोड़ने की प्रार्थना करते हुए लोग ि नीचे सौदास पर आक्रमण करते सैनिको को अकित किया गया है। बायी ओर बा के बन मे रहने का दृश्य है जो धुँधला होने के कारण स्पष्ट नही है। इसके बाद सुतसोम द्वारा पकड़ने का दृश्य है जिसमें सुतसोम को सौदास के कधे पर बैठे हु है। सौदास के हृदय परिवर्तन का प्रस्तुत दृश्य बड़ा ही प्रभावशाली है। चित्र का (वर्ष पहले रासायनिक प्रयोग से स्पष्ट हुआ है। आर्यसूर जातक तथा पालि जातक व बहुत अतर दिखायी पडता है। पालि जातक मे सौदास के पूर्वजन्म मे यक्ष होने के भक्षी होने की बात कही गयी है।

बुद्ध जीवन के दृश्य—प्रकोष्ठ की बायी दीवार पर भगवान् तथागत अपनी म देते हुए चित्रित हैं। साधु-सन्यासी के मध्य बुद्ध का प्रवचन, उनका पृथ्वी पर उ दृश्य पूर्ण होते हुए भी एक कथा-सूत्र मे बँधे हुए हैं। कथा की निरतरता इस चित्र है। गर्भगृह के दोनों ओर क्रमशः राहुल की दीक्षा तथा श्रावस्ती का चमत्कार चि



से राहुल का दीक्षा सम्बन्धी चित्र अत्यन्त भव्य तथा सर्वोत्तम है। इस चित्र को विश्व के कला समीक्षकों ने 'माँ एव शिशु' के रूप मे भूरि-भूरि प्रशसा की है। राजकुमार गौतम का बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद कपिलवस्तु में आगमन होता है। उनकी पत्नी यशोधरा राहुल को अपना दायभाग माँगने को प्रेरित कर महल के द्वार तक लाती है। भगवान् तथागत के महान् एव भव्य व्यक्तित्व के सामने दोनों आविर्भूत खडे रह जाते हैं। बुद्ध अपना भिक्षापात्र आगे करते है। यशोधरा के पास और है ही क्या ? वह अपने जीवन के टुकडे राहुल को आगे कर देती है। चित्रकार ने उक्त संदर्भ को लेकर यशोधरा के भावो का अद्वितीय चित्राकन किया है। रेशमी वस्त्र धारण किये तथागत के मुखमण्डल पर विश्वकरुणा और शाश्वत प्रेम की अद्भुत आभा दिखायी पडती है। बुद्ध यशोधरा और राहुल से कई गुना बडे आकार मे दिखाये गये हैं। यह उनकी आध्यात्मिक गुण गरिमा और महानता का प्रतीकात्मक अकन है। यशोधरा की मर्मान्तक करुणा और राहुल की द्वन्द्वात्मक स्थिति को चित्रकार ने इस खूबी के साथ प्रकट किया है कि दर्शक ठगा-सा देखता ही रह जाता है। यह चित्र अपने अनुपम अभिव्यक्ति मे बेजोड है और इसकी जितनी भी प्रशसा की जाय कम है।

शरभ जातक—प्रकोष्ठ द्वार के दाहिनी ओर यह जातक कथा चित्रित है। एक बार बोधिसत्त्व ने हरिण के रूप में जन्म लिया। वे एक वन मे अपने साथियो के साथ निवास करते थे। एक बार वाराणसी के राजा ने शिकार मे उनका पीछा किया और एक गहरे गड्ढे में घायल हो गिर पडा। हरिण जानता था कि वह राजा के भार को नही उठा पायेगा इसलिए उसने पत्थर उठा-उठाकर भार ढोने का अभ्यास किया और अत में राजा को अपनी पीठ पर बैठा उन्हे उस गड्ढे से बाहर निकाला। चित्र मे शिकारी राजा के अकन के बाद दायी ओर शरभ मृग का पत्थर उठाने का दृस्य है। अंतिम दृश्य मे वह राजा को अपनी पीठ पर बैठाकर गड्ढे से बाहर ला रहा है।

मातृपोषक जातक—पिछली दीवार के निचले हिस्से पर मातृपोषक जातक के कथा-सदर्भ चित्रित हैं। एक बार बोधिसत्त्व एक अधी हथिनी के पुत्र के रूप मे श्वेत हाथी के रूप मे अवतरित हुए। वे अपनी अधी माँ की सेवा शूश्रूषा मे सदैव सलग्न रहते थे। एक बार एक आदमी जगल मे भटक गया। उदार वृत्ति के कारण वे उसे अपनी पीठ पर बैठाकर जगल के बाहर तक छोड आये परन्तु उस कृतघ्न व्यक्ति ने वाराणसी के राजा से उसकी चर्चा की ओर उनका पता दे उन्हे पकड़वा दिया। मातृपोषक अपनी अधी माँ के पालन-पोषण और कुशल-क्षेम की चिन्ता मे अन्न-जल का त्याग कर दिया। राजा को जब इस बात का पता चला तो वह उनके पास आया और अन्न-जल त्याग करने का कारण पूछा। जब मातृपोषक ने राजा को बताया कि उसके माता-पिता अन्धे है और वह उन्हे बिना खिलाये कुछ नही खाता यह सुन दयालु राजा द्रवित हो उन्हें मुक्त कर दिया। मातृपोषक दौडते हुए अपनी माँ के पास पहुँचते है। माँ को खाना खिला उसे नदी में स्नान कराते हैं और इस प्रकार उसकी सेवा में सलग्न हो जाते है। चित्र मे हाथी के रूप में बोधिसत्त्व का पकड़ा जाना, हाथी का उपोषण, राजा को हाथी पर दया आना और गजमुक्ति आदि के दृश्य चित्रित किये गये हैं। हाथियों के कार्य-व्यापार तथा उनकी प्रकृति का चित्रण इस चित्रमाला मे बडे ही प्रभावशाली रूप मे किया गया है।

मत्स्य जातक—शरभ जातक के आगे मत्स्य जातक का चित्रांकन दिखायी पडता है। एक बार बोधिसत्त्व मछली के रूप में जन्म लेते हैं सूखा पड जाता है पानी की कमी के

कारण पक्षी आसानी से उनका शिकार करने लगे। इस प्रकार पानी के अभाव मे रने लगीं। बोधिसत्त्व इन्द्र से वर्षा करने के लिए प्रार्थना करते हैं जिससे उनके बन्धु-ान बच सके। मत्स्य की प्रार्थना पर इन्द्र वर्षा करते है इस प्रकार मछलियो के जी ोती है। चित्र में इस कथा का केवल एक अश मात्र ही बचा है जिसमे एक बडी ोटी-छोटी मछलियो को घेरते हुए तथा पक्षियों से युक्त सरोवर का चित्रण स्पष्ट है।

श्याम जातक (साम जातक)—आखिरी गुहा के दरवाजे के नीचे श्याम जातक चत्र का अकन प्राप्त होता है। ऊपर के भाग में कमल सरोवर के तट पर मटके सहि चत्राकन है। निचले भाग में श्याम अपने अधे माता-पिता को काँवर में ले जाता हु ाया है। इसके बाद आहत श्याम को उठाकर ले जाते हुए राजा को चित्रित किया ग ो राजा को उपदेश देते हुए बोधिसत्त्व श्याम का अकन है। इस जातक कथा का चि ुहा मंदिर मे भी प्राप्त होता है। यह जातक कथा श्रवणकुमार की कथा से बहुत-कु ुलती है।

महिष जातक—श्याम जातक के आगे महिष जातक की कथा का चित्राकन दृ । जातक कथा के अनुसार एक बार बोधिसत्त्व महिष के रूप मे जन्म लेते हैं। स्वभाव के कारण एक बंदर उन्हें बड़ा तंग करता था लेकिन वे उससे कुछ न बोलते हाँ एक अन्य भैंसा आता है और अपने स्वभाव के अनुसार बन्दर उसे छेडता हभैंसा क्रोधित हो उसे अपनी सीग से उछालकर जख्मी कर देता है। चित्र के निच महिष की आँखों को बन्द करता हुआ बन्दर चित्रित है। ऊपर दूसरे महिष द्वारा सीग ये बन्दर के चेहरे पर भय का अकन बडी कुशलता से किया गया है।

सिंहलावदान—मडप की दाहिनी दीवार पर अगले भाग का अकन सिंहलावदान ! सम्बन्धित है। 'महावस्तु' और 'दिव्यावदान' मे सिहलावदान की कथा मिलती है ाथा चित्रित कथा से कुछ अलग है। इस कथा का कुछ भाग वलाहस्य जातक से भी



चित्र के अनुसार उपर्युक्त संदर्भों का आधार लेकर कथा इस प्रकार बनती है। सिहल के साथ यात्रा पर निकले पाँच सौ यात्रियो का जहाज दुर्घटना-ग्रस्त हो जाता है। किसी तरह बचकर कुछ व्यापारी सिंहल के साथ राक्षसनियो के द्वीप में पहुँच जाते हैं जहाँ राक्षसनियाँ सुन्दर रूप धारण कर उन्हें लुभाती हुई चित्रित की गयी हैं। उडनेवाले घोड़े के रूप मे बोधिसत्त्व वहाँ पहुँचकर सिंहल को आने वाले संकट के प्रति सचेष्ट करता है तथा उसे अपनी पीठ पर बैठाकर उसके घर पहुँचा देता है। द्वार के निकट सिंहल बोधिसत्त्व के सामने घुटने के बल बैठा आभार प्रकट करते हुए अंकित है। शेष यात्रियो को राक्षसनियाँ खा जाती हैं। एक राक्षसनी अपने बच्चे के साथ सिंहल का पीछा करती उसके घर पहुँच जाती है तथा अपने को उसकी पत्नी बताती है। सिहल द्वारा अपमानित कर निकाले जाने पर वह राजा के पास फरियाद लेकर पहुँचती है। राजा उस पर मुग्ध हो जाता है और लोगो के मना करने पर भी उसे अपने महल में रख लेता है। वह राक्षसनी धीरे-धीरे महल के लोगों को खाने लगी और अन्त में महल का दरवाजा बन्द कर राजा सहित सब को खा गयी महल पर गिद्धों को मँडराते देख सिंहल सीढी द्वारा महल मे पहुँचता है और उस राक्षसनी को मारकर महल को मुक्त करता है तथा वहाँ का राजा बनता है। ताम्रपर्णी द्वीप पर आक्रमण कर वहाँ से भी नर माँस भक्षी राक्षसनियों को मार भगाता है। उस द्वीप का नाम सिंहल द्वीप हो जाता है। सूक्ष्म विवरण के साथ रग-रेखाओं की भाषा में वर्णित उक्त कथाचित्र सभी दृष्टिकोण से एक सर्वश्रेष्ठ कृति है।

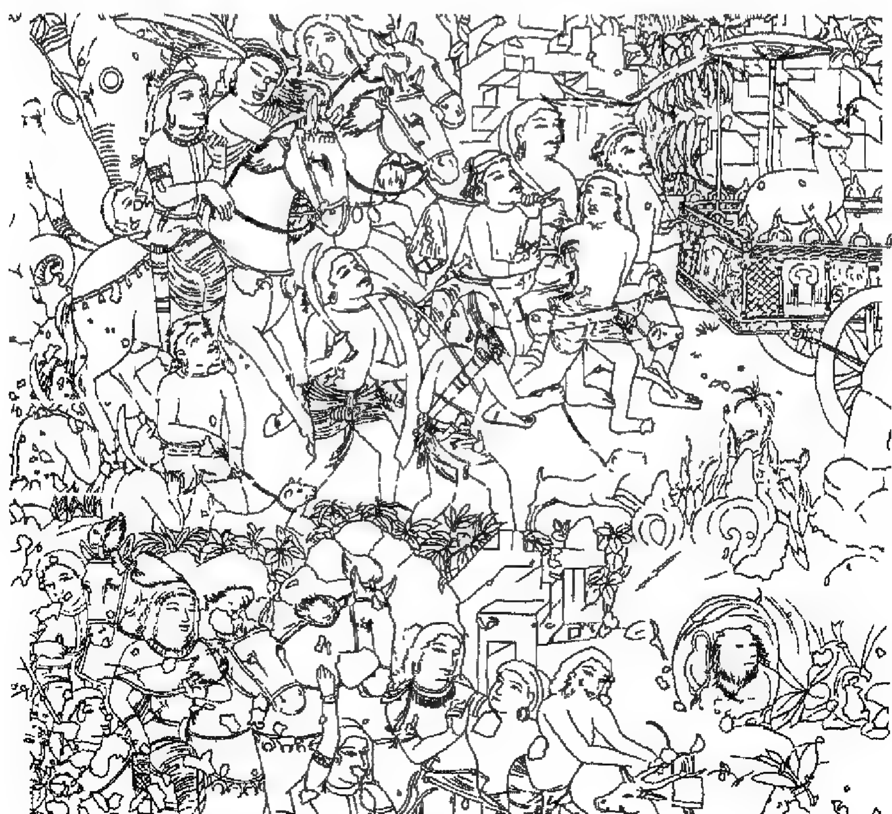
प्रसाधिका—इसके आगे कुड्यस्तभ पर 'प्रसाधन' चित्र है। चेहरे पर अनुपम गरिमा लिये हुए त्रिभंग मुद्रा में खडी शृगार-नायिका प्रसाधन कार्य मे निमग्न है। उसके बायें हाँथ मे एक गोल दर्पण है जिसमें वह अपना मुख देख रही है। स्त्री अत्यन्त सीमित वस्त्रों तथा विविध आभूषणो से अलंकृत है। शृंगार-नायिका के बगल मे दो परिचारिकाएँ तथा एक कुब्ज सेवक को अंकित किया गया है। बायीं ओर की परिचारिका चामरधारिणी तथा दायीं ओर की प्रसाधन सामग्री लिये हुए दिखायी गयी है जो नायिका के प्रसाधन में सहायता पहुँचा रही हैं। प्राकृतिक पृष्ठभूमि चित्र को विशेष गरिमा प्रदान करती है। कायिक सौन्दर्य को छाया-प्रकाश के माध्यम से व्यक्त कर कलाकार ने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। यह अजन्ता का बहुचर्चित चित्र है।

शिबि जातक—इसके आगे शिबि जातक का चित्रण दिखायी देता है। यह जातक पालि जातक पर आधारित है तथा गुहा मंदिर क्र० स० 1 की कथा से भिन्न है। कथा के अनुसार राजा शिबि ने किसी के माँगने पर अपने शरीर का कोई अग दान देने की प्रतिज्ञा की थी। शक्र (इन्द्र) उसकी परीक्षा लेने हेतु रूप बदलकर उसकी आँखो की माँग की। राज्य प्रमुखों के मना करने पर भी राजा शिबि अपनी आँखे निकालकर उसे दान में दे दिया। शक्र उसके इस त्याग को देखकर उसकी आँखे पुनः लौटा दीं। प्रथम दृश्य में शिबि अपने दरबार में बैठकर प्रतिज्ञा करते हुए चित्रित किया गया है। दायीं ओर अपनी आँखे निकालकर दान दे देने के बाद असह्य पीडा को झेलते हुए शिबि को दिखाया गया है। ऊपर स्वर्ग में कमल पर बैठे शक्र तथा शिबि का अकन मिलता है। पहले दृश्य के ऊपर समारोहपूर्वक शिबि को लौटते हुए दर्शाया गया है। इस चित्रकथा में मनुष्याकृतियों की भावभंगिमा का सुन्दर चित्रण हुआ है।

ऋक्ष जातक—इस कथा का चित्रण मण्डप के भीतरी दीवार पर बने दो गवाक्षो के बीच मे मिलता है। यद्यपि यह चित्र काला पड गया है फिर भी कथा की प्रमुख घटनाओ को पहचाना जा सकता है इस जातक कथा में रीछ के रूप में जन्मे बोधिसत्त्व द्वारा मृग की रक्षा की कथा का वर्णन है शिकारी द्वारा फैलाये गये जाल में फँसे हुए मृगों की मुक्ति से अपने स्वय के प्राणों

के मूल्य पर करते है। दृश्य में शिकारी, उसके द्वारा फैलाये गये जाल मे फँसे हरिण तथा भालू एवं पशुओ पर बाण चलाता शिकारी का चित्र अस्पष्ट होते भी पहचाने जा सकते हैं।

न्यग्रोधमृग जातक—द्वार तक के शेष भाग मे न्यग्रोध मृग जातक का चित्रण मिलता है। इसके पहले के कुछ दृश्यों को कुछ विद्वानों ने रूरु जातक से जोड़ा है लेकिन ऐसा लगता है कि ये सब एक कथामाला से ही सम्बन्धित हैं। कथा के अनुसार एक बार बोधिसत्त्व ने न्यग्रोध मृग के रूप में जन्म ग्रहण किया। पाँच सौ के अपने कुटुम्ब के साथ वे एक जंगल मे रहते थे। पास ही शाखामृग का कुटुम्ब था। वाराणसी का राजा शिकार तथा मृगमास का शौकीन था। एक दिन शिकार मे न्यग्रोध मृग तथा शाखामृग दोनों उसके पकड़ में आ गये लेकिन उनके सुनहरे एव आकर्षक रूप को देखकर राजा उन्हें मुक्त कर देता है। राजा आगे चलकर शिकार द्वारा बड़ी मात्रा मे मृगों का वध न करे इस उद्देश्य से उन दोनों ने मिलकर यह निश्चय किया कि बारी-बारी से एक हरिण प्रतिदिन राजा के पास भेजा जाय। एक दिन एक गर्भिणी हरिणी की बारी आयी। दयालु न्यग्रोध मृग उसके स्थान पर स्वय राजमहल मे जा पहुँचा। राजा को इस बात का पता चला तो उसके त्याग से प्रभावित हो न केवल उसे बल्कि जगल के समस्त चराचर को अभयदान दे दिया। बाद में राजा ने स्वयं बोधिसत्त्व से उपदेश ग्रहण किया। यद्यपि चित्र का निचला हिस्सा अत्यधिक क्षतिग्रस्त हो गया है फिर भी चित्र के घटनाक्रम को पहचानना कठिन



नहीं है। चित्र के निचले भाग मे उपवन मे मृगो का अंकन दिखायी पडता है। ऊपरी भाग मे राजा के महल मे वध के लिए उद्यत मृग का चित्रण दृष्टिगत होता है। राजसेवक द्वारा इसकी सूचना राजा के पास पहुँचाना और राजा द्वारा समस्त प्राणियो को अभयदान देने का दृश्य सुसम्बद्ध है। इसके बाद के चित्र में सिंहासन पर बैठे बोधिसत्त्व को भूमि पर बैठे राजा-रानी उपदेश देते हुए दर्शाया गया है। गवाक्ष के ऊपर के चित्र मे स्तूप के पास खड़े बोधिसत्त्व के आगे कृतज्ञता प्रकट करते हुए पशु-पक्षियों के समूह का अंकन बड़ा ही प्रभावशाली है।

अलंकरण—मण्डप मे अनेक स्थानो पर नाना प्रकार के अलंकरण अभिप्रायों का चित्रण प्राप्त होता है। छत पर अनेक वृत्तों मे एक के बाद एक आलेखन दिखायी पडते हैं जिनमें मध्य भाग में निर्मित छह नारी आकृतियो को नृत्य करते हुए दिखाया गया है। यद्यपि इन छह आकृतियो के छह हाथ है लेकिन उन्हें इस कौशल से बनाया गया है कि ऐसा लगता है जैसे बारहों हाथ हो। बरामदे की छत का चित्रण आज भी बहुत सुन्दर, चमकदार और ताज़ा दिखायी पडता है और ऐसा लगता है कि चित्रकार ने उन्हें अभी बनाकर बस अपने ब्रश को धोया ही है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 18

इस गुहा मदिर का निर्माण केवल बाह्य मडप (शिलाश्रय) के रूप मे हुआ है। सम्भवतः इसका प्रयोजन अगले चैत्य मंदिर मे पहुँचने के लिए सुरक्षित मार्ग के रूप मे रहा हो। इसकी लम्बाई 19′-4″ तथा गहराई 8′-10″ है। इसमे दो अठपहले स्तम्भ भी निर्मित हैं।

गुहा मंदिर क्र. सं. 19

यह गुहा मंदिर चैत्य स्थापत्य कला का आदर्श उदाहरण है। यह चैत्य मदिर पाँचवीं तथा छठी सदी के सन्धिकाल में निर्मित हुआ है जबकि 10 एवं 9 क्रम सख्या के चैत्य-मदिरो का निर्माण-काल ईसा पूर्व दूसरी सदी है। समय के इतने बड़े अन्तराल के कारण दोनो के स्थापत्य मे भी अन्तर दृष्टिगत होता है।

यह चैत्य मदिर अजन्ता गुहा समूह में सबसे छोटा है। इसकी लम्बाई 46′, चौडाई 24′ तथा ऊँचाई 24′-4″ है। आकार में छोटा होते हुए भी इसके विभिन्न अगों का निर्माण सानुपातिक एव भव्य है। इसे महायान-कालीन शैल चैत्यगृह का श्रेष्ठतम उदाहरण कहा जा सकता है। यद्यपि इसकी योजना हीनयान चैत्यगृहों के समान है लेकिन बुद्ध का मानवी रूप में अकन तथा शिल्पांकन, काष्ठशिल्प का शैलशिल्प मे रूपान्तर एवं महायान विचारधारा के अन्तर्गत हुई प्रगति और परिवर्तन को भलीभाँति प्रस्तुत करता है। यहाँ स्थापत्यकला, मूर्तिकला एव चित्रकला का सुन्दर एवं कलात्मक समन्वय दिग्दर्शित होता है।

यह चैत्यगृह पूर्णरूपेण पत्थर काटकर बनाया गया है। इसका गृहमुख अत्यन्त भव्य एवं आकर्षक हैं। ऊपरी भाग में एक विशाल चैत्यवातायन है जिसके दोनो ओर यक्षो को उकेरा गया है। प्रवेशद्वार तक हम दो स्तम्भों पर आधारित एक मण्डप से होकर पहुँचते हैं। इसमें एक चौकोर मण्डप (गर्भगृह), अर्द्धवृत्ताकार स्तूप स्थल और अगल-बगल दो गलियारे हैं। मण्डप और स्तूप को घेरे हुए 17 स्तम्भ बडे ही कलात्मक रूप से उकेरे गये हैं। इन स्तभों के शीर्षो का मध्य भाग आसनस्थ बुद्धों से युक्त है। स्तम्भों के ऊपरी भाग मे कोष्ठक निकाले गये हैं जिन पर आद्योपान्त चौडी तथा नकाशीदार मेहराबें निर्मित हैं। पूर्व चैत्य गृहों मे प्रयोग होनेवाले काष्ठ-शिल्प का अनुकरण पत्थर तराशकर किया गया है जिसे छत्त की तीलियो और धन्नियों तथा स्तूप की छत्रावली में लक्षित किया जा सकता है गोल गुम्बद की भाँति स्तूप एक ऊँचे चबूतरे पर

अवस्थित है। स्तूप के सामने की ओर ऊँचे चौखटे के भीतर वृत्ताकार आले मे बुद्ध की खडगासन प्रतिमा तथा द्वार के दोनो ओर की दीवारों पर कई आसनों में बुद्ध प्रतिमा तथा स्थानक मूर्तियाँ दिखायी पड़ती हैं।

सम्पूर्ण गुहा मदिर कभी अत्यन्त सुन्दर चित्रो एवं आलेखनो से सुसज्जित रहा होगा। अब केवल कुछ ही चित्र बचे हैं। राहुल का दायभाग माँगती यशोधरा से भिक्षा माँगते तथागत बुद्ध तथा छत एवं अन्य स्थानों पर पशु-पक्षियों एवं लतापत्रकयुक्त आलेखनो के सुन्दर अभिप्राय दिखायी पड़ते हैं।

गुहा मदिर क्र. सं. 20

यह एक छोटा विहार गृह है। द्वारमण्डप कुछ सीढ़ियो से युक्त ऊँचाई पर बनाया गया है जो दो पूर्ण एवं दो कुड्य स्तम्भों (दीवार के साथ बने अर्द्धस्तम्भ) पर आधारित हैं। स्तम्भ शीर्ष पर हर ओर शालभजिका उकेरी गयी है। द्वारमण्डप के दोनों ओर दो-दो कोठरियाँ निर्मित है। सभामण्डप की चौडाई 28'-2'', गहराई 25'-4'' तथा ऊँचाई 12'-6'' है। सभामण्डप में स्तम्भ नहीं है। अन्तराल सभामण्डप में आगे की ओर बढ़ा है जो दो स्तम्भों पर आधारित है। गर्भगृह की पिछली दीवार पर धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में बुद्ध, परिचारको तथा उड़ते गंधर्वों से युक्त उत्कीर्ण किये गये हैं। सभामण्डप के अगल-बगल कोठरियाँ बनी हैं जो अपूर्ण स्थिति में है। इस गुहा मदिर के एक लेख के अनुसार यह 450 से 525 ई० के मध्य निर्मित मानी जाती है।

यह गुहा मदिर भी पूर्ण रूप से चित्रित था जिसके अधिकांश चित्र नष्ट हो गये है। आलेखनो के कुछ भाग स्पष्ट हैं।

गुहा मंदिर क्र. सं. 21

अजन्ता के अन्य विहार मण्डपों की भाँति इस विहार गृह का भी निर्माण हुआ है। अनेक स्तम्भों से युक्त द्वार-मण्डप के प्रकोष्ठो की रचना कुछ अलग तरह की है। इसका बरामदा नष्ट हो गया है लेकिन दोनों सिरों पर स्थित दीवार से लगे अर्द्धस्तम्भों को देखने से प्रतीत होता है कि इसके स्तम्भ विधिवत अलकृत रहे होंगे। मकराकृत सयोजन में कमल-पुष्पो एवं रत्न-प्रतीको के अलकरणों से ये सुसज्जित हैं। बायीं ओर के मण्डप मे यक्षों से घिरे नागराज दम्पति तथा दाये मण्डप में परिचरों के साथ हारीति का अकन दृष्टिगत होता है। सभा-मण्डप लगभग चौकोर है जो 51 फीट गहरा है। सभामण्डप में कुल 12 स्तम्भ हैं जो बहुत-कुछ गुहा क्र० सं० 1 के समान ही निर्मित हैं लेकिन उतने उत्कृष्ट नहीं हैं। सभामण्डप में सामने अन्तराल एवं गर्भगृह खोदे गये हैं तथा अगल-बगल दो-दो कोठरियाँ और निर्मित की गयी हैं। सभामण्डप के दायें-बायें दीवारों पर 5-5 कोठरियाँ निर्मित हैं। गर्भगृह में चामरधारियों के मध्य धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा में भगवान् बुद्ध को प्रतिष्ठित किया गया है।

यह गुहा मंदिर भी कभी सम्पूर्ण रूप से चित्रित रहा होगा लेकिन अब केवल कुछ स्थानो पर ही चित्राकन के चिह्न दृष्टिगत होते हैं।

गुहा मंदिर क्र. सं. 22

यह एक छोटा विहार गृह है जो यहाँ कुछ ऊँचाई पर उत्खनित है। सँकरे बरामदे में दो खण्डित स्तम्भ दृष्टिगत होते हैं। प्रवेश-द्वार अलंकृत है। सभामण्डप साढ़े सोलह फीट वर्गाकार है तथा इसकी ऊँचाई नौ फीट है। इसमें अन्तराल का अभाव है तथा कोठरियाँ अपूर्ण हैं। गर्भगृह मे प्रलम्ब पाद्‌वासन में बैठे भगवान् बुद्ध की प्रतिमा उकेरी गयी है यहीं पर दायीं भित्ति पर मैत्रेय सहित सात मानुषी बुद्ध आकृतियाँ चित्रित हैं

गुहा मंदिर क्र. सं. 23

यद्यपि यह विहार अपूर्ण स्थिति में है फिर भी पुरोभाग (बरामदे) के खम्भे तथा प्रकोष्ठ मण्डप कलाकारो के कौशल का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। सभामण्डप 50' 5'' चौडा तथा 51' 8'' गहरा है। इसकी ऊँचाई 12' 4'' है। बरामदे, सभामण्डप एव प्रकोष्ठ मण्डपों के स्तम्भ विभिन्न पुष्पो, पशु-पक्षियो तथा मानव आकृति के साथ सुन्दर अलंकरणों से सुशोभित है। द्वार पर नाग द्वारपाल का उद्रेखण आकर्षक है। यहाँ के भित्ति स्तम्भो की शोभा देखते ही बनती है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 24

यह एक अधूरा विहार मंदिर है। यदि यह पुरा हो पाता तो निःसदेह अजन्ता गुहा-समूह मे यह श्रेष्ठ होता। बीस स्तम्भों से युक्त एक विस्तृत सभामण्डप (75 फीट गहरा) की योजना बनायी गयी थी जिसका मात्र एक स्तम्भ ही पूर्ण हो सका। प्रवेशद्वार, स्तम्भशीर्ष, वातायनों आदि पर की गयी नक्काशी देखते ही बनती है। गर्भगृह मे प्रलंबपादासनस्थ भगवान् बुद्ध की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इस गुहा का केवल बाहरी बरामदा ही पूँरा हो पाया है जिसे देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि यह पूर्ण हो पाता तो समूचे समूह में यह विहार गृह सर्वश्रेष्ठ होता।

गुहा मंदिर क्र. सं. 25

यह एक अर्द्धसमाप्त विहार है जो कुछ ऊँचाई पर उत्खनित है। द्वार-मण्डप दो पूर्ण और दो अर्द्धस्तम्भ (कुड्य स्तम्भ) पर टिका हुआ है जिसके बायीं ओर एक कोठरी है जिसके अन्तर्गत एक कोठरी और उत्खनित की गयी है। सभामण्डप लगभग 26 फीट गहरा चौकोर है। यहाँ गर्भगृह या कोठरी की रचना नही हुई है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 26

यह चैत्य मंदिर 19वे चैत्य से बडा है इसकी गहराई 68 फीट, चौडाई 36 फीट एवं ऊँचाई 31 फीट है। यह चैत्य मदिर 19 के कुछ बाद का है और चैत्यकला के विकास मे एक लक्षणीय मोड प्रस्तुत करता है। इसकी स्थापत्य रचना-व्यवस्था और योजना 19वें चैत्य के सदृश है। इस चैत्य मदिर का अलकरण अधिक सघन, समृद्ध और सूक्ष्म है। पूजा केन्द्र स्तूप पर समृद्ध नक्काशी देखने योग्य है। सामने की ओर चौकोर स्थान पर प्रलम्बपाद आसन मे बुद्ध मूर्ति को उत्कीर्ण किया गया है। इस चैत्य को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उपासको और भक्तो के पूजा-पद्धति विषयक दृष्टिकोण मे पहले से अधिक परिवर्तन आ गया। यही नही, विभिन्न प्रकार की आकृतियों और मूर्तियो को उत्कीर्ण करके बाहर और अन्दर के प्रत्येक स्थान को अलकृत और सुशोभित करने की प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है।

कामदेव द्वारा बुद्ध को मोहित करने का प्रसंग इस मण्डप के शिल्पो मे एक प्रमुख शिल्प है। वस्तुतः यहाँ के शिल्प अभिव्यक्ति में उन चित्रो के समरूप हैं जिनमे रग और रेखाओं द्वारा मनुष्य के सूक्ष्म भावों को प्रदर्शित किया गया है। बायीं दीवार पर बुद्ध के महानिर्वाण का दृश्य है जिसमे बुद्ध को निर्वाण मुद्रा मे लेटे हुए दिखाया गया है। इस मूर्ति के नीचे तथागत के व्यथित शिष्य और ऊपर की ओर स्वर्गलोक के उत्साहित देवताओं का अंकन है।

यह चैत्य गुहा चित्रों से पूर्णतः सुसज्जित थी किन्तु अब कुछ चित्र ही शेष बच गये हैं। छताधार तथा स्तम्भ शीर्ष पर आलेखन की ताजगी आज भी देखी जा सकती है। चतुर्भुज बौनो का चित्राकन भी स्पष्ट है

गुहा मंदिर क्र. सं. 27

अजन्ता गुहा समूह की यह अन्तिम गुहा है जहाँ दर्शक आसानी से पहुँच सकता है। कहा जाता है कि यह विहार 26वे चैत्य के साथ ही नियोजित था। यह लगभग 44 फीट चौडा तथा 31 फीट गहरा विहार है। पिछले भाग के मध्य गर्भगृह तथा अगल-बगल एक-एक कोठरी उत्खनित है तथा बायी ओर दो तथा दायीं ओर एक कोठरी बनायी गयी है। अन्तराल सभामंडप मे निकला हुआ बनाया गया है तथा गर्भगृह की पिछली भित्ति पर धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा में भगवान् बुद्ध की मूर्ति उकेरी गयी है। ऊपरी मंजिल अपूर्ण एवं क्षतिग्रस्त है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 28

यह विहार 27वें गुहा के आगे स्थित है। इसको केवल 6 खम्भों से युक्त मात्र बरामदे तक ही उत्खनित किया गया है। साधारणतया यहाँ तक पहुँचना कठिन है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 29

यह अगम्य गुहा मंदिर है जो 21वें विहार गृह के ऊपरी भाग में उत्खनित है जिसमे चैत्य वातायन का ऊपरी भाग ही दृष्टिगत होता है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 30

यह छोटा-सा विहार बहुत बाद में मलबा साफ करने के बाद प्रकाश में आया है। इसकी रचना सादी है तथा अजन्ता समूह में प्राचीनतम गुहाओ में से एक है। चौकोर सभामण्डप के तीन ओर एक-एक कोठरियाँ उत्खनित है जिसमे दो-दो शिला-शयनासन काटी गयी है।

अजन्ता चित्रकला की विशेषताएँ

अजन्ता चित्रकला अपूर्व सौन्दर्य एवं उत्कृष्ट कलात्मकता के लिए विश्वविख्यात है। यहाँ की कलाकृतियाँ की रचनापद्धति इतनी शास्त्रशुद्ध, सुनिश्चित, वेगवान एव सामर्थ्यशील हैं कि इन्हें विश्व की प्रथम श्रेणी की कलाकृतियों मे स्थान प्राप्त है। यहाँ की कलाकृतियों की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

अजन्ता के भित्ति-चित्रों का मुख्य-विषय गौतम बुद्ध और उनके पुर्नजन्म से सम्बन्धित है। बुद्ध भगवान् के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न घटनाओं का अंकन जिस आदर्श रूप मे यहाँ के कलाकारों ने किया है उससे यह भलीभाँति परिलक्षित होता है कि बौद्ध धर्म के अनुयायियो ने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार में कला का माध्यम स्वीकार कर लिया था। यद्यपि यहाँ कुछ पौराणिक तथा नाटकों में वर्णित राजदरबार एवं जनसाधारण के जीवन से सम्बन्धित चित्र भी हैं लेकिन धर्मोपदेशकता अजन्ता चित्रकला की प्रमुख विशेषता है।

अजन्ता के कलाकारों ने धर्म के साथ लोकमत एव पार्थिव जगत् की घटनाओं का नानाविध चित्रण किया है। उन्होंने पार्थिव जगत् के अनुभवों से युक्त जीवन-व्यापारों के सफल अकन मे सर्वत्र सफलता प्राप्त की है लेकिन यह अंकन उच्चतम धरातल पर धार्मिक चेतना से युक्त है। यही कारण है आकृतियों की भावभंगिमा, मनोभावों एवं मुद्राओ में उनके आत्मिक शक्ति की अनुगूँज है जो जीवन को अनासक्त बनाती है। सासारिक जीवन के ऊपर गहन आध्यात्मिक अनुभवों को विशेष रूप से महत्त्व दिया गया है।

अजन्ता चित्रों का प्रमुख लक्ष्य आनन्द को उद्घाटित करना है। लौकिक आकर्षण से भरपूर समकालीन जीवन-दृष्टि की यथार्थ झलक यहाँ की विशाल चित्रावली में दृष्टिगत होती है। नगर



निवासी और क्रीडाविलासी, वनवासी और पथचारी, ससारी एवं गगनविहारी इन सभी मे जीवन के सहज उल्लास मुखर हो उठे हैं। राजा और प्रजाजन, योद्धा और सामन्त, दाता एवं भिखारी, बालक एव वृद्ध, नर एवं नारी सभी यहाँ की कलावीथिका में प्रकट होते हैं और अपनी-अपनी भूमिका का सफल निर्वाह कर दर्शको को आविर्भूत कर लेते है। इन सभी पात्रों के चेहरे पर कुलीनता, गौरव, शिष्टता और आनन्द का भाव परिव्याप्त है।

मानवीय आकृतियों मे शारीरिक सौन्दर्य का उदात्त निखार अजन्ता के चित्रों की सबसे बडी विशेषता है। आकृतियों के अवयवों में लोच, मृदुता, वक्रता और सुकोमलता सर्वत्र परिलक्षित होती है। विशेष रूप से नारी आकृतियो मे स्त्रीत्व का नैसर्गिक चित्रण बडा ही मनोरम एवं लुभावना है। स्त्रियों के नितम्बों और स्तनों का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण काव्यात्मक स्पन्दन को व्यक्त करता है। प्रच्छन्न नग्नता का प्रदर्शन विकार-रहित है। यहाँ की नारी को आदर्श रूप मे चित्रित किया गया है और उन्हें उच्च सामाजिक मान-मर्यादा प्राप्त है। यहाँ की नारी कला की अधिष्ठात्री देवी है और वह रूप सौन्दर्य के दिव्य सिहासन पर प्रतिष्ठित है। यहाँ की नारी आध्यात्मिक शक्ति, प्रेरणा, वात्सल्य, प्रेम, करुणा और दया की जीती-जागती प्रतिमूर्ति है।

यहाँ के कलाकारो का उपास्य विषय नारी चित्रण है। सौन्दर्य बोध की साधना में नारी आकृति श्रद्धा-सुमन के रूप सर्वत्र दिखायी पडती है। जीवन के प्रत्येक कार्य-व्यापार मे वह पुरुष की सहधर्मिणी है। यहाँ की चित्रशाला में वे सर्वत्र सौन्दर्य के पतिमानो को उद्घाटित करती हैं। वे चाहे युगल हों या एकाकी, चाहे वे क्रीडारत हो या प्रसाधनरत, चाहे वे बैठी हों या खडी, चाहे वे वस्त्राभूषणो से अलकृत हो या निराभरण सभी जगह विशुद्ध मानवीय स्वरूप में आनन्द और रूप सौन्दर्य की अभिवृद्धि कर रही हैं।

नारी आकृति की केश-रचना, वेश-भूषा एव अलंकरण उनके रूप माधुर्य को द्विगुणित करते हैं। यहाँ की नारी विविध आभूषणो से सुसज्जित है। शिरोभूषण, कर्णाभूषण, ग्रीवाभूषण, हस्ताभूषण तथा कटिप्रदेश एव पैरों के विविध आभूषणो से युक्त नारी आकृति अपने रूप माधुर्य से सभी को प्रभावित करती है। केश-विन्यास की अनेक शैली आधुनिक नारी के आदर्श सज्जा मे सहायक हैं। विविध प्रकार से केश-सज्जा को यहाँ के कलाकारों ने संयोजित कर विभिन्न नारियो के स्वचरित्रगत वैशिष्ट्य को उद्घाटित किया है।

अजन्ता की चित्रकला रेखांकन प्रधान है। विश्व की कोई चित्रशैली इनके रेखाकन की समता नहीं कर सकता। यहाँ की प्रत्येक रेखा सिद्धहस्त कलाकारों के कुशल कूर्चिका संचालन का परिणाम है। अजन्ता का चित्रकार अपने हृदयगत भावो को कुछ ही रेखाओ में जिस चतुरायी से व्यक्त किया है वह कला जगत् के लिए बेजोड़, अनुपम एवं श्लाघनीय है। यहाँ की रेखाओ मे सतत् प्रवाह है जो सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावों को व्यक्त करने मे सक्षम है।

रेखाओं का अंकन विविध भावो के अनुरूप कोमल, गहरा, कठोर, सरल, शिथिल, सशक्त, मृदु, वक्र, तिर्यक एव कटावदार हैं। जहाँ शक्ति और साम्यभाव दर्शाये गये हैं वहाँ रेखायें स्पष्ट और गहरी हैं। दु:ख, करुणा, दया, ममता के भाव दर्शाने के लिए किचिंत शिथिल रेखाओ का प्रयोग किया गया है। प्रेम, उन्माद और दाम्पत्य आदि लालित्य भाव दर्शाने के लिए कोमल एव मृदु रेखाओं को प्रवहमानयुक्त बनाया गया है। व्यथा, निराशा, क्षमा, दया, मरण आदि के लिए जटिल वक्र रेखाओं का सौम्य अंकन दिखायी पडता है शारीरिक मांसलता के लिए रेखाओ की गोलाई एव उभार का जिस प्रकार प्रयोग किया गया है वह छाया प्रकाश विधि से भी

सम्भव न हो सका है। रेखाओ द्वारा शारीरिक भाव-भगिमा एव मुद्राओं का ऐसा असाधारण भावाभिव्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है।

भावाभिव्यक्ति किसी भी कलाकृति की सर्वोपरि विशेषता होती है जो अजता की चित्रकला मे उत्कृष्टतम रूप में व्यक्त हुआ है। यहाँ मनुष्य के अन्तःकरण की समस्त भावनाओ का सफलतम चित्रण हुआ है। मानवमन के समस्त कार्य-व्यापारों को भावनाओं की परिधि मे लाकर उनका सफलतम अकन अजन्ता चित्रावली की विशेषता है। यहाँ कलाकार प्रेक्षक को उस भाव लोक तक ले जाने में सफल होता है जहाँ रस की धारायें हिलोरें लेती हैं। भाव-लोक की इन असीम लहरियो मे डूबता उतराता यहाँ का दर्शक उस स्थिति तक सहज ही पहुँच जाता है जहाँ उसे दिव्यानन्द की अनुभूति होती है।

अजन्ता के चित्रकारों ने मानवमन के समस्त भावों को व्यक्त करने में अद्‌भुत सफलता प्राप्त की है जिसमें दुःख, करुणा, वात्सल्य, दया, प्रेम, आनन्द वीरता, त्याग, सौहार्द्र, विनय, व्यग्रता, उत्सुकता कौतुक एवं व्यंग आदि समस्त मानवीय भावनाओ की अभिव्यक्ति दिखायी पड़ती है। यहीं नहीं मानवीय भावनाओं को पशु-पक्षी, लता-वृक्ष आदि के माध्यम से व्यक्त कर यहाँ के कलाकारों ने अपनी असाधारण चित्रांकन क्षमता का परिचय दिया है।

अजन्ता के चित्रण विषय विविधता से युक्त हैं। यहाँ के चित्रों में धार्मिकता के साथ-साथ लौकिकता का भी प्रदर्शन हुआ है। ये भित्ति-चित्र दर्शनार्थियो के लिए चित्रित कथा है जो भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं से परिचित कराती हैं। भगवान् बुद्ध को बोधिसत्त्व प्राप्त करने के पूर्व सांसारिकता के सभी मार्गों से होकर गुजरना पडा था अतः अजन्ता के भित्तिचित्रों में तत्कालीन भारतीय जीवन की विस्तृत झाकी दृष्टिगत होती है। इसलिए यह कहना असंगत होगा कि यहाँ के चित्र बौद्ध धर्म की ऐतिहासिक विरासत मात्र हैं। विषय की दृष्टि से अजन्ता चित्रों में धार्मिक एवं सांसारिक दोनो पक्षों का सुन्दर समन्वय दिखायी पड़ता है।

अजन्ता के भित्तिचित्र एक ओर जहाँ बौद्धभिक्षुओ और दर्शनार्थियो का ज्ञानवर्द्धन कर उनकी सौन्दर्य-चेतना को जाग्रत करने में समर्थ थीं वहीं दूसरी ओर बौद्धधर्म के प्रचार एव प्रसार में उनका अभूतपूर्व योगदान भी था। ये चित्र अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनकर देश-विदेश के जिग्यासुओ को आकर्षित करती रही है और उनकी बौद्धिक जिज्ञासा को परिपुष्ट और शान्त कर उन्हें अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

अजन्ता के चित्रो में तत्कालीन समाज के विभिन्न पात्र अपनी-अपनी भूमिका निभाने मे सफल रहे हैं। विभिन्न प्रकृतियो एवं प्रवृत्तियों के नर-नारी का इतना उत्कृष्ट एवं विविधता पूर्ण अंकन इसकी सर्वोपरि विशेषता है। वीर क्षत्रिय, विनम्र सेवक, निरीह ब्राह्मण, न्यायप्रिय राजा, ममतामयी रानी, कर्तव्यपरायण प्रतिहारी, नृत्यकुशल अप्सरा, बहुज्ञ सभासद वैश्या तथा खूखार दरिन्दे आदि सभी पात्रों का अंकन उनके स्वभावनुसार यहाँ बडी कुशलता से चित्रित किया गया है। जीवन के रंगमंच पर प्रत्येक पात्र अपना-अपना जीवन्त अभिनय प्रस्तुत कर दर्शको को मनोमुग्ध कर लेते हैं। प्रत्येक में वैयक्तिकता है। इतने चेहरे किन्तु कोई एक दूसरे से नहीं मिलते। तत्कालीन जीवन, समाज एवं विश्वासो पर प्रत्येक पात्र की आस्था दिखायी देती है। इस प्रकार तत्कालीन सम्पूर्ण लोक जीवन ही यहाँ पर एक सुन्दर वैभवपूर्ण कला के रूप में परिणत हो गया है।

अजन्ता के चित्रकारो ने भावना की अभिव्यक्ति के लिए हस्तमुद्रा का विशेष आश्रय लिया। यद्यपि मुख-मुद्रा एव नेत्रो की भगिमा का लालित्य भी इन चित्रो का आकर्षण है किन्तु हस्तमुद्राओं का ऐसा सार्थक प्रदर्शन अन्यत्र नहीं दिखायी पडता। मानव आकृतियों की अलग-अलग हस्तमुद्राये उनके हृदयगत भावो को प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त करते हैं। जो बात लेखनी द्वारा सम्भव नहीं हो सकता था वह तूलिका द्वारा यहाँ व्यक्त हो गया है। ये हस्तमुद्रायें मानव के समस्त भावो—आनन्द, विशाद, त्याग, विरक्ति, करुणा, शान्ति, उल्लास, विलास आदि को सम्यक रूप से व्यक्त करते हैं। हस्तमुद्राओ के कारण ही अजन्ता की कला चतुर्दिक जानी पहचानी गयी और उसे विदेशों मे भी मान्यता प्राप्त हुई। यहाँ के चित्रो की भावभगिमा के साथ हस्तमुद्रा का ऐसा तालमेल एव सामजस्य है कि आकृतियाँ जीवन्त हो उठी है।

अजन्ता के भित्ति पर पशु-पक्षियो का चित्रण बहुलता से हुआ है। विविध प्रकार जानवरो एव पक्षियों का अकन यहाँ मानवीय भाव भूमि पर हुआ है। ये पशु-पक्षी मूक अवश्य है लेकिन उनकी चेष्टाये एवं मुद्राओ के सफल अकन के द्वारा उनके अन्तर की भावना मुखर हो उठी हैं। प्रत्येक प्रकार के पशु-पक्षी, वृक्ष लता, पुष्प-पल्लव, नदी-पहाड़, वन-उपवन आदि का चित्रण वास्तविक एवं वैज्ञानिक निरीक्षण पर आधारित है। पशु-पक्षियों, लता-पत्रो और पुष्प-पल्लव को लेकर बनाये गये आलेखनों की यहाँ भरमार है। यहाँ के आलेखन वैविध्यपूर्ण एवं बडी कुशलता से रूपायित किये गये है।

अजन्ता चित्रो की रगयोजना साधारण होते हुए भी अपने आप से निराली एवं अनूठी है। इन चित्रो के निर्माण हुए लगभग 20 शताब्दी बीत चुके हैं और न जाने कितने दिन अज्ञात पड़ रहे लेकिन आज भी इन चित्रों के रगों की चमक दर्शको को मत्रमुग्ध कर लेती है। यहाँ रंग सपाट लगाये गये है लेकिन हल्के और गहरे रंग को इस प्रकार लगाया है कि आकृतियाँ भली-भाँति उभर आयी हैं। रंगीय परिपेक्ष्य को भी बड़ी कुशलता से निरूपित किया गया है। अजन्ता चित्रों मे प्राकृतिक रंग यथा-गेरू, पीली मिट्टी, हरा (देरावाट) लाल तथा नीले (नील) रंग का ही प्रयोग किया गया है। इन रंगों में सफेद एव काला (काजल) मिलाकर रंग के तान को हल्का और गहरा किया गया है। द्वितीया रंगों का प्रयोग भी दिखायी पड़ता है। उष्ण एवं शीलत रंगों का अभिनव प्रयोम विषय वस्तु की माँग के अनुसार किया गया है। बहुवर्णी-योजना का सफलतम प्रयोग यहाँ दिखायी पडता है। सब मिला कर अजन्ता चित्रों की रंगयोजना अपने आप में पूर्ण एव प्रभावशाली है।

अजन्ता चित्रों का संयोजन विधान पूर्ण रूप से शास्त्रीय है और कलाकार ने इस बात का बराबर ध्यान रखा है कि प्रेक्षक की दृष्टि सहायक पात्रों से होती हुई मुख्यपात्र पर ठहर जाय। मुख्य विषय के निरूपण मे सम्पूर्ण पृष्ठभूमि एव अग्रभूमि का चित्रण सहायक होता है। कहीं-कहीं प्रमुख आकृत्ति को इसलिए बड़ा बनाया गया है कि कलाकार विषयानुकूल उन्हें महत्त्व देना चाहता है। चित्र को इस क्रम से व्यवस्थित किया गया है कि चित्र की सम्पूर्ण कथा एक-एक करके प्रेक्षक के सामने आती जाती है और इस प्रकार विषयवस्तु को समझने मे दर्शक भूल नहीं कर पाता। किसी गतिरोध के कई दृश्यों एवं सदर्भों को एक साथ सयोजित कर यहाँ के कलाकारों ने अपनी संयोजन क्षमता का अपूर्व परिचय दिया है। कथात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से यहाँ का संयोजन विधान सर्वथा उपयुक्त है।

अजन्ता चित्रो की जितनी ही विशेषताओं को गिनाया जाय कम है। यहाँ की चित्रकला इन्हीं के कारण ही विश्व में इतनी ख्याति प्राप्त कर सकी है

बाघ की कलाकृतियाँ

सामान्य परिचय—मध्य प्रदेश के धार जिला में इन्दौर से उत्तर-पश्चिम मे लगभग 140 कि मी. की दूरी पर, बाघिनी (बाघ) नदी के तट पर और विन्ध्य पर्वत के दक्षिणी ढलान पर ये गुहा मंदिर स्थित हैं। धार से 80 कि मी दूर बाघ ग्राम है जहाँ से लगभग 8 कि मी. दूर बाघ-कुक्षी मार्ग से थोडा हटकर बाघ की ये गर्भ-शालाएँ उत्कीर्ण हैं। बाघ ग्राम से चलने पर खुला हुआ जंगली मार्ग है और बाघिनी नदी जो सर्पाकार बहती है, को तीन-चार बार पार करना पड़ता है। बाघ का गुहा मंदिर 22.4 अक्षाश उत्तर तथा 74 8 देशान्तर पूर्व और समुद्र की सतह से लगभग 850 फीट की ऊँचाई पर स्थित है। हरी-भरी घाटी के निसर्ग सौन्दर्य मे इन गुहा मंदिरो की कलात्मक छवि मन-मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड जाती है लेकिन इन कला-मण्डपो का जिस प्रकार विनाश हुआ है उसे देखकर हृदय विदीर्ण हो उठता है, वेदना से मन तिक्त हो उठता है। 60-70 वर्ष पूर्व यदि हमारे महान् कलाविदों ने इन गुहा मण्डपों के चित्रों की प्रतिलिपियाँ न तैयार किये होते तो आज हम यहाँ की श्रेष्ठ कृतियों के बारे मे कुछ भी न कह सकते। आज जो भी अध्ययन सम्भव है इन्हीं प्रतिकृतियों के द्वारा किया जा सकता है। पचीस वर्ष पूर्व पहली बार जब मैंने इन गुहाओ की यात्रा की थी उस समय इनकी विनाशपूर्ण अवस्था मेरे समक्ष महती समस्या बनकर उपस्थित हुई थी। इनकी कलाकृतियों को देखना तो दूर, इनके भीतर प्रवेश करना भी बडा कठिन हो गया था। फिर भी जो कुछ देखा उससे मेरा कल्पना-शील मन इनके अतीत की स्वर्णिम रश्मियों से आलोकित हो गया। इन गुहा मंदिरो के चित्रो को देखकर तत्कालीन भारतीय कलाकारो के अदम्य साहस, कलात्मक सूझबूझ तथा भावाभिव्यक्ति की अद्‌भूत क्षमता का परिचय मिलता है।

इन गुहा मदिरों का निर्माण कब हुआ ? इसके बारे मे विद्वानो के भिन्न-भिन्न मत है। फर्ग्यूसन एव बर्गेस ने अपनी एक ही पुस्तक में दो मत प्रस्तुत किये हैं। एक स्थान पर इन गुहा मदिरो का निर्माणकाल 350 से 450 ई० बताया[1] जबकि उसी के आगे दूसरे स्थान पर 450 से 500 ई० निर्धारित किया।[2] विन्सेण्ट स्मिथ ने इन्हे उत्तर गुप्तकाल तथा अजन्ता की सबसे बाद मे बनी गुहाओ के पूर्व बताया। इस तरह से इनका निर्माण-काल छठी शताब्दी बनता है। यहाँ चित्रित अक्षर 'क' के अनुसार भी लोगो ने यही अनुमान लगाया है।

प्रारम्भ में निर्माणकाल निश्चित करने में इसलिए भी कठिनाई थी क्योंकि यहाँ प्राप्त एकमात्र अभिलेख में तिथि अभिलुप्त थी लेकिन ताम्रपत्र पर लिखे अभिलेख से ज्ञात हुआ कि माहिष्मति के राजा सुबन्धु ने दासिलकपल्ली के पठक नामक ग्राम को बौद्ध भिक्षुओं के भरणपोषण, मठ के सधारण तथा बुद्ध भगवान् की पूजा के लिए दान दिया था। ऐतिहासिक गणना के आधार पर इस ताम्रपत्र के लेख का समय 416-417 ई० निर्धारित किया गया है अतः स्पष्ट है कि बाघ गुहाओ का उत्खनन चौथी शताब्दी के मध्य हुआ होगा। अन्य गणना एवं सन्दर्भों से भी यही सिद्ध होता है।

जिन पहाडियो में इन गुहा मंदिरो का निर्माण हुआ है वह उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम दिशा में हैं तथा कला-मण्डपों का मुख उत्तर-पश्चिम की ओर है। इसलिए सूर्यास्त के समय ही भीतरी कक्षों मे थोडा प्रकाश पहुँच पाता है। दूर से पहाड़ी मे छोटे-छोटे छिद्रों के समान

---

1 फर्ग्युसन एण्ड बर्गेस केव टेम्पिल्स आफ इण्डिया, पृ० 86
2 वही पृ० 366

दिखनेवाली ये गुहाऍ कितनी भव्य, विशाल एव कलात्मक है यह निकट से देखने पर ही समझ मे आता है। इन गुहा मदिरो को गुफाएँ कहकर मन मे जो प्राकृतिक गुफाओ की कल्पना सहज रूप से बनती है उसके विपरीत भव्यता, विशालता एवं महान् कलात्मक थाती सॅजोये हुए इन अद्‌भुत कला-मण्डपों की वास्तु कला, मूर्तिकला एव चित्रकला विश्व की किसी भी महान् रचना से बेजोड हैं। नर्मदा की सहायक नदी बाघिनी (बाघ) पहाडी के समानान्तर बहते हुए इन गुहा मदिरों के चरण पखारती हुई सी प्रतीत होती है। नदी के पास ही केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग का कार्यालय है जहाँ चौरस स्थान पर उद्यान बना दिया गया है। यहाँ पेड के नीचे बैठकर थका हुआ यात्री विश्राम कर सीढियो से इन गुहा मदिरो की ओर बढता है। यहॉ से एक सीढी दो-ढाई सौ मीटर दूर दिखायी पडती है जो गुहा मदिर एक के लिए है। दूसरी सीढ़ी उद्यान के बाद ठीक सामने है जो गुहा मदिर सं० 2 पर पहुंचती है। बाघ नदी पर कोई पुल नही है फिर भी इन गुहा मदिरो तक पहुॅचने मे वर्षा ऋतु के अतिरिक्त कभी भी कठिनाई नही होती।

ज्यादातर यात्री गुहा मंदिर सं० 2 से ही इन कला-मण्डपो को देखना प्रारम्भ करते है क्योंकि गुहा मदिर सं० 1 दूर भी है और उन्हे पता भी होता है कि उस गुहा मदिर में देखने योग्य कुछ शेष नही है। बाघ में कुल 9 गुहा मदिर है जिसमे गुहा मदिर 2 का अनुविक्षेप 2 अ भी सम्मिलित है। कुछ लोग अलग से गुहा मदिर स० 9 के होने की बात करते हैं लेकिन इस गुहा की स्थिति का किसी को ज्ञान नही है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 1

इस गुहा मंदिर के नीचे से ही बाघ नदी गुहाओं के समानान्तर मोड़ लेती है। नदी से लगभग सवा सौ फीट ऊपर गुहाओं तक पहुँचने के लिए लगभग 20-22 सीढियाँ चढने के बाद एक चौरस स्थान है और इसके बाद 20 सीढ़ियाँ और चढ़ने पर हम गुहा के पतले बरामदे मे पहुँच जाते है जिसमे मण्डप में प्रवेश के लिए प्रायः चौकोर द्वार बना हुआ है। इस मण्डप में न तो कोई गवाक्ष है और न ही कोई कीर्तिमुख जिससे इस मण्डप में रोशनी या हवा पहुॅच सके इसलिए इसके कक्ष में अँधेरा छाया रहता है।

यह गुहा मदिर 'गृह' के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें पतले बरामदे के साथ 24 ×22 फीट का एक आयताकार कक्ष है जिसकी ऊँचाई लगभग 8 फीट होगी। बरामदे तथा कक्ष के बीच की दीवार लगभग 5 फीट मोटी होगी। कक्ष के भीतर के चार स्तम्भो में एक तो पूर्णतया विनष्ट हो चुका है शेष तीन भी समाप्त होने की अवस्था में हैं। अपक्षयता इस गुहा मदिर पर पूर्ण रूप से छा चुकी है। कक्ष की दीवार पर छेनी के चिह्न अभी तक देखे जा सकते है।

ऐसा प्रतीत होता है कि यह गुहा गृह महास्थापति अथवा मुख्य मठाधिकारी का निवास रहा होगा। इसके मनोरम एवं आदर्श स्थिति के कारण भी ऐसी कल्पना असंगत नही लगती। यहाँ से सम्पूर्ण घाटी का विहंगम दृश्य दिखायी पडता है।

इस गुहा मंदिर का निर्माण कब हुआ ? इसका अनुमान करना कठिन है क्योंकि यहाँ कोई शिलालेख, मूर्ति अथवा चित्र आदि उपलब्ध नही हैं फिर भी इसकी स्थिति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यहाँ बृहत् पैमाने पर काम प्रारम्भ होने के पहले इस गुहा मदिर का उत्खनन परीक्षण के लिए किया गया होगा जो बाद मे महास्थापति का निवास बना होगा जहाँ से वह अन्य गुहा मदिरों के एव उनके साज सज्जा सम्बन्धी कार्यो की योजना बना अपने को दिशा-निर्देश देता रहा होगा

गुहा मंदिर स० 1 से 2 तक पहुँचने के लिए एक पगडंडी है जिसके बीच में एक छोटी-सी प्राकृतिक गुहा भी दिखायी पड़ती है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 2

यह कलामण्डप बाघ गुहा मंदिर समूह में सबसे अच्छी दशा में है। इसे पहले स्थानीय लोग 'गुसाई गुफा' कहते थे लेकिन अब इसे 'पाण्डवों की गुफा' कहा जाता है। इस गुहा मंदिर की कई बार मरम्मत हो चुकी है अतः यह कहना कठिन है कि प्राचीन काल मे इसका मूल स्वरूप क्या रहा होगा। इसके पास तक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं और प्रायः दर्शक यहीं से इन कलात्मक मंदिरो को देखना प्रारम्भ करते हैं। प्रकारान्तर से यह गुहा मंदिर बौद्ध स्थापत्य का प्रतिनिधित्व करता है। आकार-प्रकार में यह बडा है। इस गुहा मंदिर मे महाराज सुबधु का एक ताम्रपत्र मिला है जिससे पता चलता है कि इसका निर्माण चौथी शताब्दी के पूर्व हो चुका था और इस गुहा मंदिर का नाम 'कलायन' (कला-वीथी) था।

सीढियों द्वारा जैसे ही इस गुहा मंदिर के निकट पहुँचते है द्वार मण्डप के छह षड्भुजीय स्तम्भ के ठूँठ दिखायी पडते हैं जो कभी द्वार-मण्डप का विशाल भार उठाये रहे होगे। द्वार-मण्डप के सामने का अधिकाश भाग ध्वस्त हो गया है जो कभी कमल-पुष्प, सिह, हाथी आदि आकृतियो से सुसज्जित रहा होगा। द्वार-मण्डप के उत्तरी एवं दक्षिणी छोर के बाहरी हिस्से मे दो छोटे कोष्ठ (7×4 फीट) बने हुए है जिनमे मूर्तियाँ स्थापित हैं। बायीं ओर के कोष्ट में अभी तक अत्यधिक विकृत अवस्था मे मूल मूर्ति है जिसके बारे में स्पष्ट रूप से कुछ कहना सम्भव नही है लेकिन इतना तो स्पष्ट होता ही है कि यह ललितासन मे बैठी कोई देव प्रतिमा है। फोगेल ने इस प्रतिमा के ऊपर सर्पफण के कुछ धूमिल चिह्न देखे थे और दोनों ओर एक-एक दासी के अवशेष भी थे। डॉ० इम्पे के अनुसार ये दासियाँ चामरधारिणी थीं।[1] इस प्रकार यहाँ नागराज की मूर्ति होनी चाहिए लेकिन इस कोष्ठ के ऊपर अश्वनालाकार तोरण के दोनों ओर उड़ती हुई दिव्य प्रतिमाएँ जो अपने हाथ मे हार लिये हुए हैं को देखकर बुद्ध मूर्ति होने की भी बात कही जा सकती है।

दाहिने कोष्ठ में मूल प्रतिमा के स्थान पर बाद में लगायी गयी गणेश प्रतिमा के दर्शन होते है। इस प्रतिमा के नीचे कीर्तिमुख एवं अन्य अलकरण देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ भी गणेश के पहले बुद्ध प्रतिमा रही होगी। द्वार-मण्डप के दोनों ओर इन कोष्ठकों के बगल मे एक-एक कोठरियाँ हैं।

द्वार-मण्डप से सभा-मण्डप में जाने के लिए बीच में एक बडा दरवाजा है तथा इसके दोनो ओर दो छोटे दरवाजे हैं। बड़े दरवाजे एवं छोटे दरवाजे के बीच दो बडे गवाक्ष है। सभी क्रमबद्ध पट्टियों में उद्भृत हैं। केवल मुख्य द्वार अशतः अलंकृत है। द्वार से विशाल सभा-मण्डप मे पहुँचते ही चारों ओर 20 स्तम्भ तथा बीच मे 4 गोलाकार स्तम्भों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ के वास्तुकार बालुकाश्म की अवचूर्ण प्रकृति से भलीभाँति परिचित थे इसीलिए इन स्तम्भ-समूहो की विशेष रचना की। सभामण्डप के चार कोनो में चार अर्द्ध स्तम्भ भी हैं। मध्य के चार गोल स्तम्भो पर सर्पिल पहलूदार अलकरण है जबकि आन्तरिक बीस स्तम्भ एव 4 अर्द्ध स्तम्भ नीचे से वर्गाकार हैं और ऊपरी भाग विभिन्न पहलुओं में कटे हैं इन स्तम्भों के शीर्ष भाग अलंकरण से युक्त हैं

सभामण्डप के दाहिने एवं बाये ओर सात-सात कोठरियाँ हैं और सामने अन्तराल एव गर्भगृह के अगल-बगल दो-दो कोठरियाँ बनायी गयी है। सामान्यतः इनकी लम्बाई-चौड़ाई 9 फीट है। प्रत्येक कोठरी के द्वार सभामण्डप की ओर हैं और उसके अन्दर दीपक रखने के आले बनाये गये है। बायीं (उत्तर) ओर की प्रथम एव सातवी कोठरी का विस्तार किया गया है। पहली कोठरी के अन्दर तीन और कोठरियाँ बनायी गयी है। इन गुप्त कक्षों का निर्माण किस लिए किया गया इसका पता नहीं लगता। ऐसा प्रतीत होता है कि गुहा मंदिर 2 अ के निर्माण के दौरान इनका विस्तार किया गया होगा।

मुख्य द्वार के ठीक सामने सभा-मण्डप के दूसरी ओर एक बडा अन्तराल है जिसकी लम्बाई 20 फीट तथा चौडाई 12 फीट है। अन्तराल के सामने दो षड्भुजीय स्तम्भ है। इसकी दीवारें उत्कीर्ण प्रतिमाओं से सुसज्जित हैं। इसके बाद एक गर्भ-गृह है जो वर्गाकार है और उसके मध्य मे 15 फीट ऊँचा एक शैलकृत स्तूप बना है। अष्टभुजी आधारक पर एक बेलनाकार अलंकृत ऊँचाई के ऊपर स्तूप का गोलार्द्ध गुम्बद है जिस पर धर्मिका एवं छतरी का निर्माण हुआ है। यह स्तूप छत को छूता हुआ बनाया गया है। गर्भगृह के दायी तथा बायी दीवार में मूर्तियो के लिए आलय बने हैं तथा द्वार की भित्ति पर दीपक रखने के लिए आले बने हैं जिससे स्तूप पर सामने से प्रकाश पड़े। गर्भ-गृह में स्तूप तथा उसके बाहर अन्तराल मे बुद्ध प्रतिमाओ का होना, इन गुहाओं में सदियों तक कार्य किये जाने की पुष्टि करता है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह वह सक्रमणकाल रहा होगा जब बौद्ध धर्म प्रतीक अर्चना से प्रतिमा आराधना की ओर बढ रहा था।

अन्तराल की भित्तियो पर अनेक शैलकृत आकृतियो का निर्माण किया गया है। गर्भ-गृह द्वार के अगल-बगल अवलोकितेश्वर एव मैत्रेय की प्रतिमाएँ हैं जो मेहराबदार आलय मे स्थित हैं। द्वार के बायी ओर कमल पुष्प पर खड़े अवलोकितेश्वर की प्रतिमा भव्य एव विशाल है। इनके शरीर के विभिन्न अंगो को तरह-तरह के आभूषणो से सुसज्जित किया गया है। सिर पर उन्नत जटा-मुकुट तथा पुष्प अलंकरण मे प्रभा-मण्डल दिखाया गया है। चेहरा एक अनुपम तेज से देदीप्यमान है। शरीर पर कण्ठहार, कुण्डल, कंगन, करधनी और वलययुक्त परिधान एव तीन लडो वाला यज्ञोपवीत शोभायमान है। यह प्रतिमा स्थान-स्थान पर खण्डित हो गयी है। द्वार के दाहिनी ओर कमल-पुष्प पर खड़े मैत्रेय की प्रतिमा है। शिरोवेश मे अभय मुद्रा में बैठे बुद्ध का लघु रूप इस प्रतिमा का प्रमुख आकर्षण है। अधोवस्त्र पहने मैत्रेय की आकृति आभूषण-रहित है। मैत्रेय का दाहिना हाथ अशतः खण्डित है तथा दूसरे हाथ में वे एक पात्र लियो हुए है। प्रतिमा भव्य एवं विशाल (8' 9'' ऊँची) है। मूर्तियो का शिल्प कुषाणकालीन मूर्तियों के समकक्ष है।

इसी अन्तराल के उत्तरी एव दक्षिणी दीवार पर खडी हुई बुद्ध आकृति के साथ राजपुरुषों को उनके अगल-बगल सेवार्थ खड़े हुए दिखाया गया है। ये राजपुरुष कौन हैं इस पर तो प्रकाश नहीं पडता लेकिन बुद्ध आकृति से थोडी छोटी इन आकृतियो मे राजपुरुषों की भगिमा एव वेश-भूषा स्पष्ट रूप से लक्षित होती है। दोनो ओर लगभग एक-सी मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियो मे गुप्तकालीन मूर्तियों की समस्त विशेषताएँ दिखायी पडती है।

इस गुहा मंदिर की दीवारें तथा छत सम्पूर्ण रूप से चित्रित रहे होगे ऐसे स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं लेकिन बौद्ध धर्म के के बाद यहाँ रहनेवाली जनजातियो ने इस गुहा मंदिर में आग इसे धुएँ एव कालिख से पोत दिया प्रकृति का प्रकोप एव मनुष्य की अ ने

इन कला-कृतियो को नष्ट होने मे बराबर योगदान दिया। इस प्रकार जो कृतियाँ 50-60 वर्ष पहले यहाँ आये लोगो को दिखी थीं आज नही दिखती। केवल इसी गुहा मदिर मे ही नही यहाँ के अन्य सभी कलामण्डपो मे यही स्थिति हैं।

धुएँ एवं कालिख से दबे चित्रो को कुछ वर्ष पूर्व रासायनिक परिमार्जन कर स्पष्ट किया गया। इन चित्रो मे छत पर अकित एक-एक फुट के वर्गाकार उपखण्डो मे विभिन्न प्रकार की सुन्दर डिजाइने है जो पुष्प, लता-बल्लरी, पक्षी, पशुओ आदि विशेष चित्रणो से शोभायमान हैं इस प्रकार के आलेखन अजन्ता के छतो पर भी दिखायी पड़ते है। इन अलंकरण अभिप्रायों के चित्रण विशेष उद्देश्य से किये जाते है क्योकि ये पवित्रता, शुद्धता तथा सद्‌गुण को प्रतीक रूप में व्यक्त करते हैं। यद्यपि ये आलेखन अत्यधिक क्षतिग्रस्त हो गये हैं फिर भी इनकी कलात्मकता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

यहाँ से प्राप्त प्रसिद्ध चित्र बोधिसत्त्व पद्‌मपाणि का है जिसकी अनुकृति ही प्राप्त होती है। भाग्यवश इस चित्र की मुखाकृति अभी भी दिखायी पडती है। यद्यपि यह चित्र अत्यधिक क्षतिग्रस्त हो चुका है लेकिन इसकी भाव-भंगिमा तथा रेखीय लयात्मकता से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह किसी उत्कृष्ट कलाकार की रचना होगी। शिरोमुकुट, कुण्डल, मुक्ताहार, बाजूबद आदि विविध आभूषणो से युक्त किंचित् त्रिभग मुद्रा मे खड़े बोधिसत्त्व के महामानव स्वरूप का जिस कुशलता से चित्रण किया गया है वह कलाकार की अथक साधना का ही परिणाम हो सकता है। बोधिसत्त्व के आभायुक्त मुखमण्डल पर गहन चिन्तन, त्याग, वैराग्य आदि भावो का उत्कृष्ट अकन हुआ है। उनके अधोनिमीलित भावपूर्ण नेत्र समस्त ससार की करुणा को समेटे हुए है। उनके दाहिने हाथ मे कमल-पुष्प है जो मंगल का प्रतीक है। इस प्रकार इस चित्र मे सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् त्रयी का अद्‌भुत सगम दिखायी पडता है।

गुहा मंदिर क्र. स. 2 (अ)

इस गुहा मदिर को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि गुहा मदिर स० दो के मण्डपों के निर्माण के बाद इनके निर्माण की योजना बनायी गयी जो उत्खनन की किसी कठिनाई के कारण स्थगित कर दी गयी। यह गुहा मदिर सं० 2 की विस्तार-योजना भी कही जा सकती है क्योंकि अन्दर से कोठरियाँ जुड़ी हुई हैं।

इस गुहा मदिर के द्वार-मण्डप का निर्माण ही पूर्णरूप से किया जा सका था जो गुहा मदिर दो के बाह्य कोष्ठको के लगभग बराबर ही बना है। द्वार-मण्डप की लम्बाई 31 5 फीट तथा चौड़ाई 12 5 फीट है। द्वार-मण्डप के सामने की सीढ़ियाँ अभी तक सुरक्षित है। यहाँ दर्शनीय कुछ नही है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 3

यह विहार मंदिर गुहा मदिर स० 2 से 7-8 मीटर दूर पर ही स्थित है जिसे स्थानीय लोग 'हाथीखाना' कहते हैं। इसके मुख-पट पर हाथियो की पक्ति उत्तकीर्ण थी जो अब गिरकर नीचे आ गया है। शायद इसी कारण से इसे 'हाथीखाना' कहा जाने लगा। इस गुहा मंदिर का निर्माण बौद्ध भिक्षुओ के उच्चपदस्थ गणमान्य सदस्यों के निवास के लिए किया गया होगा क्योंकि इस गुहा मंदिर में परिष्कृत डिजाइन तथा नक्काशी के दर्शन होते हैं। 'पाण्डव' मदिर एव 'रंगमहल' के बीच में होने के कारण भी इस तरह का अनुमान लगाना सम्भव हो सका है निवास स्थान (विहार) होने के कारण भी इसका वास्तु अन्य गुहा मदिरों से भिन्न है एक दूसरा अनुमान यह

भी लगता है कि इस स्थान की शैल रचना वास्तुकारो को स्पष्ट नही थी इसलिए खुदाई के साथ-साथ इसके वास्तु की योजना बनती रही।

इस गुहा मदिर का अग्रभाग काफी कुछ ध्वस्त हो चुका है लेकिन इसके मूलरूप की कल्पना सहज ही की जा सकती है। अग्रभाग के चित्रवल्लरी का कुछ भाग अभी भी सुरक्षित है जिसमे एकान्तरित सिह एव युग्म आकृतियों से युक्त गवाक्ष का पक्तिबद्ध अलकरण बडा ही आकर्षक है। इस गुहा मदिर मे दो पृथक् बड़े मण्डप (सभागृह) है। बाहरी मण्डप मे आठ अष्टभुजी स्तम्भ है और दाहिनी ओर चार कोठरियाँ हैं जबकि बायी ओर दो चौकोर खम्भे पर टिका अन्तराल के साथ पूजागृह है और उसके अगल-बगल दो-दो काठरियाँ है। इस मण्डप के सामने तीन द्वार दिखायी पडते है जो दूसरे मण्डप मे ले आते है। यह दूसरा मण्डप आठ चौकोर खम्भो पर टिका हुआ है। इस मण्डप मे सम्बद्ध कोठरियाँ नहीं है। इसके अपूर्ण उत्खनन को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी खुदाई बाद मे की गयी होगी। इस गुहा मदिर मे प्रवेश करते ही एक आँगन है जिसके बायीं ओर प्रथम मण्डप की तरह दो चौकोर खम्भो पर टिके अन्तराल के बाद पूजागृह और कोठरियाँ हैं। इसकी एक कोठरी प्रथम मण्डप मे खुलती है।

इस अतिथि गृह या विश्राम स्थली की वास्तु योजना अत्यधिक परिष्कृत और सुरुचिसम्पन्न है जिसकी गहराई 150 फीट के लगभग है। इस गुहा मंदिर का लगभग सम्पूर्ण भाग चित्रित था। विशेष रूप से अन्तराल एवं पूजागृह मे उत्कृष्ट चित्रकारी रही होगी। अभी भी यहाँ कुछ आकृतियाँ स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं। पूजागृह के दोनो ओर सुन्दर नारियों के चित्र सुस्पष्ट है। ये नारियाँ फूलो का शृगार किये हुए हैं जिनके कानों में कुण्डल तथा बाँहों में भुजबन्ध अभी भी लक्षित किया जा सकता है। बायी ओर की युवती थोडी झुकी हुई दिखायी पडती है। दाहिनी ओर की नारी आकृति इतनी स्पष्ट नहीं है। कोष्ठ के चित्र अवशेष में प्रभा-मण्डल चित्रित दिखायी पड़ता है जिससे अनुमान होता है कि यहाँ बुद्ध और बोधिसत्त्वों के चित्र रहे होगे। फोगेल ने उन्हें उष्णीष के साथ शीर्ष तथा कधो को ढके वस्त्रो मे देखा था। पृष्ठभूमि में सफेद कमल दिखाये गये थे। इस कोष्ठ में कमल-पुष्प पर खडे बुद्ध के चित्र थे। कमल-पुष्प पर चित्रित बुद्ध के पैरों के पास एक-एक झुके हुए उपासक के चित्र भी थे।[1] पूजागृह के बाहर अन्तराल की छतो में छोटे वर्गाकार आलेखन बनाये गये हैं जो उन कलाकारो की कलात्मक अभिव्यक्ति एव कार्यकुशलता के परिचायक है जिन्होंने यहाँ रहकर निरंतर कला साधना कर इस महती चित्र-वीथी की रचना की थी।

गुहा मंदिर क्र. सं. 4

गुहा मदिर क्र स. 3 से लगभग 250 फीट की दूरी पर यह कला-मण्डप स्थित है। गुहा मदिर 4, 5 एवं 6 एक समूह मे है जिसमे 4 एवं 5 सख्या के गुहा मंदिर एक द्वार-मण्डप (बरामदे) में स्थित है। गुहा मदिर 5 के सभा-मण्डप (व्याख्यान कक्ष) से एक द्वार द्वारा गुहा मदिर क्र० सं० 6 जुडा हुआ है। चार एव पाँच गुहा मदिरों के अग्रभाग मे बना विशाल द्वार-मण्डप (बरामदा) 220 फीट लम्बा तथा 14 फीट चौडा है जो कभी 22 विशाल खम्भों पर टिका रहा होगा। आज इसके सभी स्तम्भ गिर चुके हैं और प्रलम्बित छत भी ध्वस्त हो गया है। किन्तु इसके दोनों छोर पर बने अर्द्ध स्तम्भ अभी भी विद्यमान हैं जिससे ध्वस्त हो गये स्तम्भो की भव्यता

1 द बाघ केव्ज इन ग्वालियर स्टेट, लदन 1927 पृष्ठ 62-63

का बोध किया जा सकता है। इसी द्वार-मण्डप के सामने की दीवार पर सबसे अधिक तथा सुरक्षित चित्र बिद्यमान है जिनकी गणना विश्व की श्रेष्ठ कृतियो में किया जाता है। शायद यही कारण है कि इस गुहा मंदिर को 'रंगमहल' कहा जाता है। द्वार-मण्डप के बायी ओर एक बडा आलय है जिसमे एक बैठी प्रतिमा प्रतिस्थापित है जिसकी पहचान विघटन के कारण नहीं हो सकी। गुहा मदिर क्र सं. 2 की तरह बायी ओर द्वार-मण्डप के बाहर एक कोष्ठक है जिसमे नर-नारी की बैठी हुई मूर्ति है। इन विघटित मूर्तियो के बारे में जोर देकर कुछ नही कहा जा सकता। डॉ० इम्पे और फोगल के अनुसार यह नागराज एवं नागरानी की युगल मूर्ति है क्योकि उन्होने मूर्ति के ऊपर नाग के सात फण स्पष्ट देखे थे। इसके ऊपर अश्वनालाकार तोरण मे भी मूर्ति रही होगी ऐसा आभास होता है।

गुहा मंदिर 4 यहाँ के सभी गुहा मदिरों मे बडा है और इसका अनुविक्षेप गुहा मदिर 2 से समानता रखता है। इसके अग्रभाग मे तीन द्वार हैं जिनके बीच में दो वर्गाकार खिडकियाँ हैं। मुख्य द्वार विशेष रूप से अलकृत है। द्वार की पट्टियो मे पुष्प-लता का सुन्दर आलेखन उत्कीर्ण है। द्वार के लिटल के ऊपर पक्ति मे बैठे हुए बुद्ध तथा भावाकृतियाँ बनायी गयी हैं। इसके अगल-बगल मकरवाहिनी गंगा की मूर्ति उत्कीर्ण है जो मगर के ऊपर विशेष मुद्रा मे खडी है। सभी सरिताओ मे श्रेष्ठ पवित्रतम नदी गंगा अपने दर्शन से दर्शनार्थियों को पवित्र कर उनके मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती हैं और उन्हें इस गुहा मदिर मे प्रवेश की अनुमति देती है। इसी के नीचे द्वारपाल, गण तथा अन्य प्रतीक आकार बड़ी कुशलता के साथ उत्कीर्ण हैं जो मूर्तिकार की कला कुशलता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

द्वार से प्रवेश कर हम एक विशाल सभामण्डप मे पहुँचते है जो 38 स्तम्भों पर टिका हुआ है। चौकोर आधारक के 28 स्तम्भ सभामण्डप के चारो ओर एक गैलेरी का निर्माण करते हैं। मध्य मे चौकोर आधारक के चार स्तम्भ और है। मध्य स्तम्भो तथा गैलरी स्तम्भो के बीच सामने तथा अगल-बगल दो-दो स्तम्भ भी हैं। इस प्रकार कुल छह पूरक स्तम्भों का निर्माण और किया गया है। इन पूरक स्तम्भों के बारे मे कुछ विद्वानों का मत था कि ये बाद मे लगाये गये हैं किन्तु इनके आधार देखकर स्पष्ट होता है कि ये प्राकृतिक शिला से ही काटे गये हैं। सभागृह से 27 कोठरियाँ सयुक्त हैं। पृष्ठभाग मे एक बड़ा पूजागृह है जिसके मध्य स्तूप स्थित है। यहाँ गुहा मंदिर दो की तरह अन्तराल, स्तम्भ तथा मूर्तियों का अभाव है लेकिन सुसज्जित एवं चित्रित सभा-मण्डप, अलंकृत कोठरी द्वार तथा स्तम्भों की नक्काशी और चित्रण आदि कुछ ऐसे पहलू है जो इसके महत्त्वाकांक्षी योजना के द्योतक हैं। गुहा मंदिर 4 की छत जो जगह-जगह से टूटकर गिर रही है की सम्पूर्ण छत कलात्मक आलेखनों से चित्रित थी तथा यहाँ के स्तम्भो और भित्तियों पर भी चित्र थे लेकिन आज इनके कुछ अंश ही दिखायी पड़ते हैं। 70-75 वर्ष पहले जिन लोगो ने यहाँ कुछ चित्र देखे थे उनका आज कुछ पता नही है। कुछ अस्पष्ट-से रेखाकन और कुछ रगो से पता चलता है कि यहाँ कभी कोई चित्र रहा होगा। प्रसिद्ध कलाविद् प्रो० असितकुमार हालदार ने 1917 में इन गुहा मंदिरो को देखा था और यहाँ के चित्रों की प्रतिकृति भी तैयार की थी उन्होंने अपनी पुस्तक ललित कला की धारा में के चित्रों का वर्णन इस प्रकार किया है

की है जैसी अल्प-कालिक देवी-देवताओ की मूर्तियों के पीछे होती है। यह स्पष्ट रूप से एक ही कलाधर की बनायी हुई है। सामान्य पूजा करनेवालों द्वारा प्रतिदिन बनाये चित्रों का चलन चीन, जापान और तिब्बत मे अब भी दिखायी देता है। रंगमहल के बडे कमरे मे करीब छह फीट चौडान में गोलाई के साथ चारों ओर रंगीन नक्काशी की हुई है। इसमें विशेषतया काले, सफेद, पीले और हरे रगो का प्रयोग किया गया है। इसी कमरे के एक खम्भे पर किश्ती मे बैठी-जैसी कुछ आकृतियाँ है। इन किश्तियों के उठे हुए भाग मानव बाहु जैसे प्रतीत होते है। इस प्रकार ये आकृतियाँ चार-चार भुजाओ वाली मालूम पडती है। इनका चित्रण काले और सफेद रंगो द्वारा किया गया है। इस समय इन चित्रों की शोचनीय अवस्था है। छत के नीचे विभिन्न चौखटों पर फल, फूल और पक्षियो से अलंकृत नक्काशी हैं। ऊपर की छत बिलकुल गिर गयी है। इस गुहा की अन्दरूनी छत किसी समय अलंकृत चित्रों द्वारा विभूषित थी। गुहा के भीतर बने चित्र इस बात के प्रमाण है कि उनमें रगो के बजाय चित्रकला की अधिक महानता है। पहले द्वार के ठीक ऊपर परकोटे के अन्दर भूमि पर बैठे हुए एक मनुष्य का चित्र है। उठे हुए घुटने पर उसके दोनो हाथ हैं और दूसरी टाँग जमीन पर सीधी रखी है। पास ही कदली के बगीचे में एक खड़ी हुई लडकी को आकृति है जो कोहनी को आगे बढाकर एक हाथ कमर पर और दूसरा ठुड्डी पर जमाये मुडकर पीछे देख रही है। इसके ठीक ऊपर एक आदमी लम्बा लेटा हुआ है। सस्कृत के प्राचीन साहित्य मे गर्मी के दिनो मे कदली वन मे विश्राम करने के काफी संकेत मिलते हैं। दूसरे चित्र मे एक विलक्षण आदमी के मुख का कुछ भाग दिखायी पडता है। इसके एक तरफ द्वार से मिली दीवार पर पीले और लाल रंगो मे बगीचे से उभरती हुई पहाडियों के रूढ प्रतिरूप प्रदर्शित है। पहाडी के नीचे उपवन में दो-तीन आदमी दिखायी देते हैं, कुछ लड़कियो के मुख भी हैं किन्तु उनके शरीर के और भाग बिलकुल मिट-से गये है। इसी से मिली हुई एक और भी दीवार है जिसके पास की जमीन कुछ उठी हुई है और उस पर कोट पहने एक आदमी (सम्भवत साधारण मनुष्य) ध्यान की मुद्रा मे गाल पर हाथ रखे बैठा है। साथ ही, एक चौकी के ऊपर अपने दोनो हाथ एक-दूसरे मे फँसाये योगी की आकृति है। इसके मुख पर धर्म की गम्भीर भावना है। इस योगी के चरणों मे एक छोटा बौना जो सम्भवत· उसका नौकर है, बैठा दिखायी पडता है। गुहा के इसी द्वार के ऊपर एक काली लडकी धारीदार गद्दे के ऊपर बैठी है। इसके सामने बेंच के ऊपर बैठी एक और आकृति बनी है। प्रतीत होता है किसी गहन विषय पर वार्तालाप हो रहा है। काली लड़की का रूप लावण्य अवर्णनीय है। यह चित्र जताता है कि काली त्वचा पर इतना अद्वितीय सौन्दर्य व्यक्त करने का दूसरा साधन नही। उसी द्वार के दूसरी ओर एक लड़की पेड से कुछ तोड रही है, साथ ही, दूसरी लड़की के मुख अथवा हाथों के कुछ भाग दिखायी पड़ते हैं। चित्र की पृष्ठ-भूमि में परम्परा रीति से बादल और पहाड़ियाँ व्यक्त की हुई हैं। पहाडियाँ अजन्ता चित्रो की भाँति त्रिकोण में सजायी हुई हैं। पहाडियो के ऊपर दो-तीन लगूरी बन्दर दिखायी पडते हैं। दो द्वारों के ऊपर बीचवाली जगह पर इन चित्रो के साथ-ही-साथ मुकुट धारण किये स्वर्ग के द्वारपाल की एक दीर्घकाय आकृति है। यह चित्र अजन्ता गुफा नम्बर एक को दोनों तरफ वाली दीवारों पर बने दोनों द्वारपालो की रचना से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। अजन्ता के ये दोनो चित्र अब पहचान लिये गये है कि उनमे से एक बोधिसत्त्व पद्मपाणि तथा दूसरा बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर हैं। इन दोनों की ऊँचाई साधारण मनुष्य की ऊंचाई से दुगुनी है बाघ चित्र में इस दिव्य द्वारपाल के साथ ही समाधि में लीन कोई राजकीय श्रेष्ठ पुरुष है और साथ ही पहाडी के ऊपर बादलों में दो मोर बने हैं सम्भव है यह स्वर्ग का वर्णन हो

द्वारपाल के सिर के ऊपर सितार बजाती हुई पक्षियो के पैर वाली किन्नरियो के चित्र है। इन सब चित्रों को देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि उसके द्वारा यह दर्शाने का प्रयत्न किया गया था कि ये गुहाएँ देवी-देवताओ की रक्षा में थीं।"[1]

उपर्युक्त वर्णित चित्रों मे से शायद ही कहीं कोई चित्र वर्तमान हो। अब तो इस गुहा मन्दिर में घुसना भी खतरे से खाली नहीं है।

गुहा मंदिर क्र स० 4 से निकलकर हम जैसे ही बाहर आते है बायी ओर द्वार-मण्डप की दीवार पर चित्रों का एक अद्भुत संसार दिखायी पडता है। गुहा मदिर 4 के द्वार से गुहा मदिर 5 के द्वार तक लगभग 40 फीट लम्बी विस्तृत दीवार पर किसी महान् ऐतिहासिक घटना से जुडे चित्रों का अंकन किया गया है। लेकिन यह किस ऐतिहासिक घटना अथवा धार्मिक आख्यान पर आधारित है इस विषय में किसी भी प्रकार का मतैक्य नहीं है। 25 वर्ष पहले जब मैंने इन चित्रो को पहली बार बाघ जाकर देखा था उस समय भी ये चित्र काफी अस्पष्ट थे और यदि इनकी प्रतिकृतियाँ पहले से न देखी होतीं तो शायद इनकी पहचान भी कठिन होती। लेकिन किसी चित्र को टुकडे-टुकड़े में देखना और एक साथ एक बार में देखना हमारे अपन विचारों में कितना अन्तर लाता है यह बात मैं वहीं समझ सका। चौथे गुहा मंदिर को किसी भाँति देखकर जब मै सायं-कालीन प्रकाश के आलोक मे प्रथम चित्र के सम्मुख खडा हुआ तो अचानक इसकी विषयवस्तु पर एक विचार कौध गया और इस चित्र की अमिट छाप मन-मस्तिष्क पर छा गयी। आप-पास के चित्र भी मेरी विचारधारा की पुष्टि करने लगे और लगा कि विश्व की यही वह सर्वश्रेष्ठ कृति है जिस पर लियोनार्डो द विन्सी की अमर कृति 'मोनोलिसा' ने अपना आधिपत्य जमा रखा है। सालो इस विषय पर लिखने के लिए कलम उठाता लेकिन इसके गहन करुणा एव पीडा से ओतप्रोत हो रुकता रहा।

इस चित्र की करुणा और मानवीय संवेदना के अपूर्व सागर मे हिचकोले खाता इधर-उधर दृष्टि दौडाता रहा कि कहीं से कोई सम्बल मिल जाय जिसका सहारा लें मै अपने मन की बात कह सकूँ। इसी चक्कर में मुझे जहाँ भी इन चित्रों के बारे में कुछ भी देखने को या पढने को मिला मैंने सभी को देखा लेकिन मन को तुष्टि न मिली। कभी लगता कलाकार की इस समग्र, सम्पूर्ण और भावाभिव्यक्ति मे सर्वश्रेष्ठ कृति को क्या शब्दों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। इन्हीं सब बातों को लेकर 10-15 वर्ष किस प्रकार खिसक गये पता न चला। सन् 1985 मे इस विषय पर एक विस्तृत लेख 'रूपशिल्प' में 'The Mystery of a Painting in Bagh Cave' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।[2] इस लेख मे 'दो शोकाकुल नारी' चित्र की विषय वस्तु पर बिल्कुल नये रूप से विचार किया गया। पुनः दूसरा लेख 1989 में उत्तर मध्य सांस्कृतिक केन्द्र के अंग्रेजी मासिक 'Sundaram' पत्रिका के VoL 1 No 8 मे 'The Enigma of a Painting in the Bagh Cave' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इस लेख से अनेक कलाविदो एवं कला-समीक्षकों ने लेखक के विचार से सहमत होते हुए इस नये संदर्भ का स्वागत किया। उत्साहित हो इस काल की कला पर एक समग्र विचार प्रस्तुत करने का मन बना।

प्राचीन भारत में कला जीवन से किस प्रकार जुड़ गयी थी और कलाकारों को मानवीय सवेदनाओं की कितनी अच्छी पकड थी यह बात यहाँ के चित्रो को देखकर भलीभाँति समझा जा

सम्मित कला की धारा असितकुमार हालदार, 96 पृष्ठ 75 76

डॉ० श्यामबिहारी अग्रवाल, मिस्ट्री आफ अ पेन्टिग इन बाघ केव रूपशिल्प 1986 पृ० 69 74

सकता है। इस विशाल फलक पर निर्मित चित्र एक-दूसरे से गुँथे हुए हैं। यह बात घटनाओ के तारतम्य और रचना विधि से स्पष्ट है लेकिन वह ऐतिहासिक घटना कब घटी ? किसके शासनकाल मे घटी या किस महान् आख्यान के संदर्भ मे है इस पर प्रकाश पडना अभी बाकी है लेकिन इतना तो स्पष्ट ही है कि यह जातक कथा पर आधारित नही है।

द्वार-मण्डप के चित्रों का हम उसी क्रम से अध्ययन करेगे जिस क्रम से प्रसिद्ध पुस्तक 'द बाघ केव्ज' मे दिया गया है क्योकि अब यहाँ शायद कुछ भी शेष नहीं है। सभी चित्र नष्ट हो चुके हैं जिन्हें अब देखा नहीं जा सकता। प्रो० असितकुमार हालदार ने यहाँ रहकर इन चित्रो का रेखाकन तैयार किया है जिसका क्रम मूल चित्र के समान है। बाघ गुहा के गुहा क्र स 4 से 5 तक के द्वार-मण्डप में निर्मित चित्रो के माप के बराबर अकित यह बृहद् रेखाकन इलाहाबाद सग्रहालय में संगृहीत है। इन चित्रो के विस्तृत अध्ययन में अब इन्ही प्रतिकृतियों का सहारा लिया जा सकता है जिन्हें महान् कलाकारों ने यहाँ आकर कठिन श्रम कर तैयार किया है।

दृश्य-1

प्रथम दृश्य में दो नतयुवतियाँ एक मण्डप मे साथ-साथ बैठी हुई चित्रित की गयी हैं। पहली अर्द्धनग्न युवती राजवंश की है, सम्भवत रानी या युवरानी है और दूसरी उसकी सेविका है। युवरानी के शरीर पर विविध प्रकार के आभूषण दृष्टिगत होते है जबकि सेविका को सादे मलिन वस्त्रो मे चित्रित किया गया है। रानी के हाथ में दो-दो कंगन हैं जबकि सेविका के हाथ में मात्र एस सादा कंगन है। युवरानी गम्भीर मुद्रा में अपने बायें हाथ को गाल पर टिकाये अपनी सेविका को अन्यमनस्क भाव से देख रही है जो अपने आँचल से मुँह ढके हुए है और उसका बायाँ हाथ रानी के अनावृत वक्ष पर है। छत पर नीले रंग की दो पक्षियो का अकन है जिसमें एक छोटी तथा दूसरी बडी चिडिया है। सम्भवतः मादा पक्षी अपने बच्चे को दाना चुगा रही है।



भारतीय चित्रकला के प्रसिद्ध विद्वान् राय कृष्णदास जी का कथन है कि 'मुँह ढककर रोती हुई स्त्री का चित्र जिसे उसकी सखी सांत्वना दे रही है बडा भावपूर्ण है।'[1] कुछ इसी तरह की बात महान् कला-समीक्षक प्रो.सी. शिवराम मूर्ति ने भी व्यक्त की है 'चित्रित विषय स्पष्ट रूप से जातक अथवा अवदान से है जिसे पहचाना जाना अभी बाकी है। पहला दृश्य एक रानी और उसके साथ रहनेवाली महिला (सखी) का है। एक महान् दु:ख से पीडित है और दूसरी उसको सांत्वना दे रही है।'[2] महान् कलाकार प्रो० असितकुमार हालदार जिन्होंने यहाँ के चित्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार की थी का कथन है 'रंगमहल की गुहा नम्बर चार और गुहा नम्बर पाँच के द्वार के बीच बरामदे के कुछ हिस्से मे इन चित्रो का फैलाव पचास फीट लम्बा और सात फीट चौडा है। घटनाओ का तारतम्य अथवा रचना-विधि स्पष्ट रूप से यह व्यक्त करते है कि सारे चित्र किसी महान् ऐतिहासिक घटना के रूप में आपस मे एक-दूसरे से गुँथे हुए हैं। हमने उनकी बौद्ध जातक कथाओ से तुलना की है परन्तु कुछ अंश मे ही समानता दृष्टिगोचर होती हैं, पूर्ण

1 रायकृष्ण दास भारत की चित्रकला भारती भण्डार, लीडर प्रेस, सम्वत् 2023 वि० पृ 2
2 सी शिवराममूर्ति इण्डियन पेण्टिंग नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया नई दिल्ली पृ० 31




बाघ गुहा का प्रथम दृश्य

(अपार दुःख-सागर मे डूबी एक महारानी और उसकी -

रूप से नही। इस भाग के चित्रो का प्रतिरूप उतारने में हम सफल हुए। उनके पहले दृश्य मे अपार दु:ख-सागर मे डूबी एक महारानी और उसकी परिचारिका है। उसके साथ ही दो राजकुमार दो अतिथियों से परामर्श करते हुए प्रतीत होते है।[1]

उपर्युक्त कथन से मिलते-जुलते विचार अन्य विद्वानों ने भी व्यक्त किये है लेकिन चित्र की विषय-वस्तु पर सम्यक् रूप से किसी ने पकाश नहीं डाला। इस विषय पर नये सिरे से विचार प्रस्तुत कर प्रसिद्ध पुरातत्त्व विशेषज्ञ श्री माहेश्वरी दयाल खरे ने इस ओर और अधिक विचार करने के लिए प्रेरित किया। उनका कहना है कि यह दृश्य दु:ख से नहीं, वरन् लज्जा से सम्बन्धित है। उन्होंने अपने कथन की पुष्टि के लिए बताया—'दोनो स्त्रियाँ समवयस्क हैं। अत: सम्भवत: रानी ने सेविका का हाथ देखने के बहाने उसके प्रेम-सम्बन्ध का रहस्योद्घाटन कर दिया है। बात को गम्भीरता देने के लिए वह स्वयं भी बहुत शांत व गम्भीर हो गयी। लज्जावश सेविका ने अपने दाहिने हाथ से मुँह ढँक लिया है।'[2]

इस चित्र को देखकर 25 वर्ष पहले जो विचार मन मे कौंधा था आज भी वही स्थिर है और उसमे इतने सारे विचार जानने के बाद भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है बल्कि वह और अधिक परिपुष्ट ही हुआ है। मेरा स्पष्ट मत है कि यह चित्र ऐसी दुखियारी युवरानी का है जिसका नवजात शिशु काल कवलित हो गया। इस दुर्घटना से रानी मर्माहत तो थी ही, उसकी पीडा और बढ जाती है, जब शिशु को दूध न पिला पाने के कारण उसके उरोजों मे दूध एकत्रित हो जाता है जो शोकाकुल रानी को अत्यधिक पीड़ा से विह्वल कर देता है।इस पीड़ा से मुक्ति हेतु उसकी दासी को वक्ष से दुग्ध दोहन का कार्य सौंपा जाता है। इस कार्य को करते-करते दासी इतनी अधिक दु:खी हो जाती है कि वह अपने को रोक नही पाती और कपडे से मुँह ढककर रो पडती है। चित्र में अपार करुणा और असहनीय दु:ख को और अधिक उभारने के लिए चित्रकार ने ऊपर एक चिडिया को अपने बच्चे को दाना चुगाते हुए चित्रित किया है।[3] इस परिप्रेक्ष्य मे और अधिक कार्य कर,यहाँ के चित्र,किस ऐतिहासिक घटना से सम्बिन्धित हैं,को जानने का प्रयास किया जा सकता है।

दृश्य-2

इस चित्र मे दो राजाओ को उनके अपने दो राजकुमारो के साथ चित्रित किया गया है। यह चित्र पहले दृश्य की ही अगली कडी है जिसमे राजवधू के पिता एव भाई शोक-सवेदना व्यक्त करने के लिए अपने समधी राजा एवं युवराज दमाद के पास आये हुए हैं। इन दोनों ने अपने मुकुट आदर एवं सम्मान हेतु उतार दिया है। दोनो राजाओं में शोक-सन्तप्त राजवधू की पीड़ा एव समस्याओं पर विचार-विमर्श हो रहा है जो उनकी मुखाकृति तथा हाथों के अर्थपूर्ण मुद्रा से सहज ही ज्ञात हो जाता है। चारो आकृतियो के चेहरे पर पीडा एव दु:ख के भाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। दोनो राजाओं के वेशभूषा से भी यही बोध होता है कि वे दो अलग-अलग राजघराने के हैं। यह वार्ता राजदरबार मे न होकर राज उद्यान के किसी मण्डप मे हो रहा है इससे भी यह स्पष्ट आभाषित होता है कि विचार-विमर्श व्यक्तिगत और दो परिवारो से जुडी

---

1 असितकुमार हालदार ललित कला की धारा, चन्द्रलोक प्रकाशन, इलाहाबाद, 1960, पृ० 76-77।
माहेश्वरी दयाल खरे, बाघ की गुफाएँ, म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 97 पृष्ठ 63 64।
3 विस्तृत विवरण के लिए देखें रूपशिल्प 1986, पृ० 69-174

समस्याओ पर आधारित है। प्रो० असितकुमार हालदार ने बाघ के यात्रा विवरण में इस दृश्य को पहले चित्र से जोड़ते हुए बताया है कि 'उसके साथ ही दो राजकुमार दो अतिथियो से परामर्श कर रहे हैं।'[1]

प्रसिद्ध कलाकार मुकुल डे के अनुसार दाहिनी ओर बैठे राजा अपने राजकुमार के साथ जो उनके पीछे है, एक दूसरे राजा और राजकुमार से विचार-विमर्श कर रहे हैं। ऐसा अनुमान होता है कि उन्होने अभी हाल ही में बौद्ध धर्म ग्रहण किया है। उनके सिर पर राजमुकुट नही है। उनके पीछे राज उद्यान के गहरे हरे वृक्ष दिखायी पड़ रहे हैं।[2]

उपर्युक्त विचारों से कुछ अलग हटकर महेश्वरी दयाल खरे ने अपने विचार दिये हैं। उनके अनुसार 'इस चित्र में दो युग्म लगभग एक-दूसरे के सम्मुख बैठे, किसी धार्मिक व्याख्या में तल्लीन हैं। उनको मुखाकृति तथा हाथो के अर्थपूर्ण संकेतो से भी ऐसा ही प्रतीत होता है। सभी लोग गद्दियों पर पधारे हुए हैं तथा धारीदार अतरीय पहने हैं। प्रतिष्ठित शिरोवस्त्र से स्पष्ट है कि बायीं ओर का युग्म दाहिनी ओर बैठे युगल से उच्च स्तर का है। इनमें से जिनके शीर्ष पर दीर्घ व रत्नजटित मुकुट है वह सम्भवत: राजा तथा उसके निकट उसकी रानी बैठी है।[3] श्री खरे का यह कहना कि इन चार आकृतियों में दो महिलाओं की आकृति है इस विचार की परिपुष्टि किसी भी विद्वान् ने नहीं की है। चारों मानव आकृतियाँ जो केवल अधोवस्त्र ही पहने हुए हैं, को देखने के बाद भी यह विचार उपयुक्त नहीं लगता। शिवराम मूर्ति ने मुख्य आकृति जिन्होंने विशेष प्रकार के मुकुट को धारण किया है को 'शक्र' माना है।[4]

दृश्य-3

इस चित्र के ऊपरी भाग मे 6 पुरुष आकृतियाँ दिखायी पड़ती हैं जो आकाश मे बादलों के बीच उभर रही हैं। मुकुल डे ने यहाँ 7 आकृतियां देखी थीं।[5] ये आकाशचारी गन्धर्व एवं उनके अनुचर नीचे के भाग में चित्रित अप्सराओं के द्वारा आयोजित गायन-वादन का आनन्द ले रहे हैं तथा उनके हाथ संगीत की लहरियो में थिरक रहे है। इस चित्र का बहुत-सा भाग नष्ट हो चुका है। ऊपरी भाग के पुरुषाकृतियों को कुछ विद्वानों ने बौद्ध भिक्षु माना है क्योकि इनके शीश मुण्डित हैं और ये आभूषण रहित हैं। सम्भव है ये तुषित स्वर्ग में विचरण कर रहे हों। कुछ विद्वानों ने इन्हें उड़ते हुए गंधर्व समझा जो नीचे सगीतज्ञो पर पुष्पवर्षा कर रहे हैं।

नीचे के समूह में पाँच सुन्दर नारियों का चित्रण है जिनके शरीर का निचला भाग नष्ट हो चुका है। बीच को नारी के हाथ में वीणा के अवशेष दिखायी पडते हैं जिसके कारण अन्य स्त्रियों के हाथों में भी अन्य वाद्य-यंत्रों के होने की बात सोची जा सकती है और इस प्रकार इस समूह को गायन-वादन में रत अप्सराएँ समझने मे कोई परेशानी नही होती। इन रमणियों का केश-विन्यास सादा किन्तु आकर्षक है। कानो में कुण्डल धारण किये हुये वे उचित वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं। चित्र अपूर्ण एवं क्षतिग्रस्त होने के कारण इनका समुचित अभिज्ञान कठिन है।

---

1 असितकुमार हालदार 'ललितकला की धारा' 1960, पृष्ठ 76-77।
2 मुकुल डे, 'माई पिलग्रिमेज टू अजन्ता एण्ड बाघ', 1950, पृ० 176।
3 महेश्वरी दयाल खरे, 'बाघ की गुफाएँ' 1971, पृ० 64।
4 सी शिवराम मूर्ति, 'इण्डियन पेन्टिंग' 1970, पृ० 31।
5 मुकुल डे 'माई पिलग्रिमेज टू अजन्ता एण्ड बाघ, 950 पृ० 176

दृश्य-4

चतुर्थ दृश्य मे तत्कालीन समाज मे प्रचलित पारिवारिक नृत्य नाटिका का सुन्दर आयोजन दिखायी पडता है। नृत्य, गायन एवं वादन का यह समारोह महल के आन्तरिक उद्यान मे आयोजित है जो ऊँची चहारदीवारी से घिरा हुआ है। मध्यस्थ की दो स्त्रियाँ विचित्र वेशभूषा धारण कर कोई स्वाँग कर रही हैं और चारो ओर से उन्हे घेर कर नवयुवतियाँ गायन-वादन के साथ उन्हे सहयोग दे रही हैं। प्राय. स्त्रियाँ किसी विशेष पारिवारिक उत्सव में इस प्रकार के स्वाँग द्वारा आपस में मनोरंजन एवं चुहल किया करती हैं। यह आयोजन पुत्र-जन्म अथवा लड़के के विवाह पर विशेषरूप से आयोजित होता है। चित्र के अग्रभूमि पर अंकित चौकी पर रखे हुए गोल बटुये पर रखी हुई सामग्री एवं तकिये इस बात को पुष्ट करते हैं कि इस आयोजन की भावधारा शृंगारिक है और इसका स्वरूप पूर्वी उत्तर प्रदेश मे प्रचलित 'नकटा' की तरह है।



चित्र के दोनो ओर मध्य भाग में चित्रित स्त्री अथवा कंचुकी ने कंचुक (जामे या अचकन की तरह का एक पुराना पहनावा जो घुटने तक लम्बा होता था) धारण किया है और वह स्त्री-पुरुष पात्र के रूप मे स्वाँग कर स्त्रियो का मनोरजन कर रही है। दाहिनी ओर की मँजीरा बजाने वाली नवयौवना उनकी हरकतो एव बात-व्योहार से किंचित शर्मायी हुई-सी प्रतीत होती है। मध्य मे चित्रित स्त्री ढोलक या मृदग बजा रही है जिसके नग्न शरीर पर डोरियाँ स्पष्ट दिखायी पड रही है तथा मृदग बजाने के लिए उठी हुई उँगली का चित्रण बडा स्वाभाविक है। गोलाई मे खडी पीछे की कुछ स्त्रियो के हाथ मे करताल, डडे तथा मँजीरे है और बाकी की हस्त मुद्राएँ कौतुक, हास्य व्यंग्य को इंगित कर रही हैं। इन स्त्रियो की कुल सख्या 13-14 है और कुछ अस्पष्ट आकृतियाँ भी दिखायी पडती है। ज्यादातर स्त्रियों का केश-विन्यास जूड़े से युक्त सादा है। जूडे मे श्वेत पुष्प गुँथा है। कुछ स्त्रियों ने विभिन्न रंग-रूप की चोलियाँ या 'ब्लाउज' पहन रखा है तथा कुछ का ऊपरी भाग नग्न है। एक स्त्री ने दुपट्टा पीछे फेक रखा है।

यहाँ के कलाकारो ने बडे ही उन्मुक्त भाव से जीवन के आनन्द एव मृदु भावों को व्यक्त किया है। चित्र के सयोजन मे एक दीर्घवृत्त की रचना कर उसके अन्तर्गत दो लघु वृत्तो को सयोजित किया गया है। इस प्रकार चित्र कथा धारा गोल-गोल घूम कर मध्यस्थ की आकृति पर टिक जाती है जो अपनी अद्भुत भाव-भंगिमा एव विचित्र वेशभूषा के कारण दर्शक को विशेषरूप से आकर्षित करते हैं। कुछ विद्वानो ने इन्हें पुरुष नर्तक माना है और कुछ ने विदेशी। शिवराम मूर्ति ने इस नृत्य समारोह को 'हल्लिसलास्य' नामक लोक नृत्य बतलाया है।[1] कुछ लोगों ने इसे दो भागों मे बाँट कर अध्ययन प्रस्तुत किया है।

दृश्य-5

पाँचवें दृश्य मे घुडसवारों के जुलूस को चित्रित किया गया है। यद्यपि चित्र बहुत स्पष्ट नहीं है फिर भी घोड़ो का अकन बडा सजीव एवं स्वाभाविक है। डॉ० इम्पे ने 13 घोड़े पर सवार

---

1 सी शिवराममूर्ति इण्डियन पेन्टिंग 970 पृ 31

लोगों को देखा था तथा फोगेल के अनुसार इनकी सख्या 17 से कम नहीं थी। घोडे पर सवार कुछ लोग आपस में वार्तालाप कर रहे है तथा इनकी कई पंक्तियाँ हैं। दल के मध्य मे एक अश्वारोही के शीर्ष पर छत्र है तथा शरीर पर गोल बिन्दुदार वस्त्र धारण किये हुए है। उसके छत्र धारण करने एव विशेष वस्त्र के कारण उसे राजकुमार अथवा सेनानायक कहा जा सकता है। उसने अपने बाये हाथ से घोड़े की लगाम को पकड़ रखा है। डॉ० इम्पे का कथन है कि उसके घोड़े का रग सफेद था। अन्य घुडसवारो ने लम्बे चोंगे (कचुक) पहन रखे हैं। सभी घोडे अच्छे नस्ल के हैं और उनका अंकन भावपूर्ण है। घोडे का शरीर, उसकी मांस-पेशियाँ तथा टाँगो की छाया को इतनी कोमलता से दिखाया गया है कि हम उसकी तुलना किसी भी महान् कृति से कर सकते हैं।

दृश्य 6

उपर्युक्त दृश्य के बाद हाथियों के जुलूस का दृश्य है जिनपर सम्भवत: राज-परिवार के व्यक्ति बैठे हैं। यहाँ पर डॉ० इम्पे के अनुसार छह हाथी तथा तीन अश्वारोही देखे गये थे जब कि फोगेल ने केवल एक ही अश्वारोही देखे थे। इस चित्र का बहुत-सा भाग विनष्ट हो चुका है। सबसे आगे मुख्य हाथी पर बैठा व्यक्ति सम्राट् अथवा अत्यधिक प्रतिष्ठित व्यक्ति था जिसके पीछे बैठे हुए सेवकों के हाथ में चामर तथा छत्र दिखायी पडते हैं। महावतो के हाथ में लम्बे अकुश का चित्रण किया गया है। छत्र और झूल में लटकन का बड़ा स्वाभाविक अकन हुआ है। हाथियो पर रमणियों का समूह बैठा हुआ है। आगे के हाथी पर बैठी तीन युवतियो मे से दो के शरीर कटि भाग तक नग्न हैं किन्तु मध्यस्थ युवती ने सफेद ब्लाउज पहन रखी है। आगे एक पुरुष आकृति का अंकन भी दिखायी पड़ता है। इसी प्रकार दूसरे पीछे की हाथी पर भी एक व्यक्ति तथा तीन युवतियाँ बैठी हैं। यहाँ के मध्य युवती के तन पर कंचुकी नहीं है। सभी कामिनियाँ विभिन्न प्रकार के आभूषणों से अलंकृत हैं। इनके पैर में पायलों का अकन विशेष रूप से आकर्षित करता है। आगे के हाथी पर बैठी आकृतियाँ जितनी स्पष्ट है उतना पीछे के हाथी पर बैठी आकृतियाँ नहीं हैं। ऐसा आभास होता है कि कलाकारों को परिप्रेक्ष्य का अद्भुत ज्ञान प्राप्त था जो इस प्रकार के भित्ति चित्रण में बहुत कम दिखायी पड़ता है। दोनो समूहों की स्त्रियो के केश-विन्यास जूड़े से युक्त हैं तथा जिन्हे बड़े सलीके से सवारा गया है। मुकुल डे न लिखा है "इसके बाद हाथियों का शाही जुलूस है जो रानी तथा उनकी सेविकाओ और महिला संगीतकारों को लिये हुए राजमहल और नगर-द्वारों से निकल रहा है। हाथियों का अकन बडा सशक्त है और उनकी निरभ्र गति, भव्य शोभा एव उदात्त रूप का चित्रण बहुत ही कुशलता एव लगन से किया गया है। जहाँ तक मैं समझता हूँ हाथियों का ऐसा श्रेष्ठ चित्र विश्व मे अन्यत्र कही नहीं है।"[1]

अन्य चित्र

इसके आगे का दृश्य जब मैने इन्हें देखा था सम्पूर्ण रूप से मिट चुके थे और आज जो मैंने उस समय देखा था वे भी नहीं हैं। फिर भी मुझसे पहले वहाँ गये कलाविदो ने जो विवरण दिये हैं उनके अनुसार छठे दृश्य के बाद भी चित्र बने थे। छठे दृश्य के बाद एक द्वार है और उसके बाद डॉ० इम्पे ने लिखा है—"इसके आगे का दृश्य बड़ा ही रोचक व विशिष्ट है। आकृतियाँ उल्टी दिशा में देख रही हैं। इनमें चार हाथी तथा तीन घोड़े हैं। सम्भवत: ये सब अपने गन्तव्य

1 मुकुल डे माई पिलग्रिमेज टू अजन्ता एण्ड बाघ 1950 पृ० 176

पर पहुँच चुके हैं। हाथी विश्राम कर रहे है तथा महावत हाथियों के शीश पर हाथ रख शांत पडे हैं। हाथी व घोडे अपने सामने देखते हुए स्थिर खड़े हैं। एक हाथी अपने सूँड़ में कोई कपडा लपेटे है। हाथ मे तलवार एव भाला लिये दो पैदल सैनिक भी चित्रित हैं। इनका ध्यान आगे की ओर आम्र वृक्ष के नीचे रखे दो पानी के पात्र तथा तुम्बे पर है। वृक्ष की शाखा पर एक नीला वस्त्र लटक रहा है जिसके पीछे चक्र है। इसके आगे केले के वृक्ष के नीचे विशिष्ट आसन मे बुद्ध बैठे है। उन्होने दाहिने हाथ के अँगूठे को बाये हाथ से पकड रखा है तथा समीप ही उनका एक शिष्य बैठा है जो उनके धर्म सिद्धान्त को बडी निष्ठा से सुन रहा है। इस चित्र में बुद्ध के सिर पर घुँघराले बाल नहीं हैं। इसके आगे एक द्वार है जिससे इसकी निरंतरता रुक गयी है।''

डॉ० इम्पे के वर्णन से भी ऐसा लगता है कि उनके समय मे ऐसे चित्र वहाँ थे जो बहुत धूमिल हो चुके थे और जिन्हें ठीक से पहचाना नहीं जा सकता था। इस बात की पुष्टि इस बात से होती है—'सर्वोत्तम अवशेष उत्तरी द्वार के समीप हैं अन्य स्थानों के समान यहाँ भी ऊपर-नीचे की पंक्तियो मे चित्र मिलता है। यद्यपि यहाँ के चित्रो की रूपरेखा बहुत ही अस्पष्ट है फिर भी उद्यान में बैठी आकृति अंशतः दिखायी पड़ रही है। ऊपर के भाग में स्वस्थ एवं अस्वस्थ जैसा दृश्य है। एक जर्जर व्यक्ति बैठा है तथा दूसरा लेटा हुआ है। दोनों के अंग क्षीण हो चुके हैं। तीसरे व्यक्ति को चौथे के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है जो उसे शायद परामर्श दे रहा है। इसके बाद दो महिलाओ को विलाप मुद्रा में चित्रित किया गया है। इसके बाद चार नृत्यरत आकृतियाँ तथा एक दौड़ता बालक पीछे की ओर दौडते हुए चित्रित हैं।

चित्रों के इन वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि ये चित्र यहाँ की गुहा क्र सं 5 तक चित्रित थे। दीवारों के अतिरिक्त भी यहाँ कभी छतो एवं स्तम्भों को चित्रों से अलंकृत किया गया होगा। ऐसे अवशेष अंशतः दृष्टिगत होते है। विहार के चारों ओर अलंकृत चित्र-वल्लरी के अंश भी दिखायी पड़ते है। सम्पूर्ण छत पर चित्रित डिजाइनें कितनी अनुपम एवं आकर्षक रही होगी इसका अनुमान कुछ छोटे-छोटे वर्गाकार डिजाइन को देख कर किया जा सकता है जो यहाँ किसी तरह बची रह गयी हैं।

गुहा मंदिर क्र. स. 5

इस गुहा मदिर को स्थानीय लोग 'पाठशाला' कहते हैं। शायद कभी इस गुहा का उपयोग व्याख्यानकक्ष के रूप मे होता रहा होगा। इस आयताकार मण्डप की लम्बाई 98 फीट तथा चौड़ाई 44 फीट है जिसमे 16 स्तम्भ दो पंक्तियो मे निर्मित हैं। ये स्तम्भ भित्तियों से 12 फीट दूर मध्य में हैं तथा आपस में 6-6 फीट की दूरी पर निर्मित हैं। सभी स्तम्भ एक शैली में हैं जो साधारण हैं। इस गुहा मे कोई कोष्ठ (कोठरी) स्तूप अथवा मूर्ति आदि नहीं हैं। यहाँ अलंकरण का भी अभाव दिखायी पड़ता है। भित्तियों के लेपित सतह को देखकर सहज ही अनुमान होता है कि यहाँ कभी चित्रकारी की गयी होगी जिनका अब कोई अस्तित्व नहीं है। इस गुहा में चार खिड़कियाँ तथा एक द्वार है जो उस बृहद् द्वार-मण्डप (बरामदे) में खुलती है जहाँ चित्रकारी के उत्कृष्ट नमूने प्राप्त हुए हैं। द्वार-मण्डप के अन्तिम छोर पर एक कोष्ठ निर्मित है। द्वार एव खिड़कियो पर यद्यपि कोई अलंकरण उद्रेखित नहीं है फिर भी विद्यमान गच को देखते हुए ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि इन्हें भी कभी आलेखनो द्वारा सुसज्जित किया गया होगा। जिस गुहा के बरामदे मे इतने उत्कृष्ट एव मनोमुग्धकारी चित्र हों उसके आंतर कक्ष मे चित्र न रहे हो ऐसा सम्भव नहीं दिखता इस कक्ष में कहीं कहीं अंशत चित्र दृष्टिगोचर होते हैं

गुहा मंदिर क्र. सं. 6

गुहा स० 5 से गुहा स० 6 एक पॉच फीट चौडे मार्ग से जुडा हुआ है जो एक कक्ष (17' 6'' ×13' 3'') से होता हुआ गुहा स० 6 मे पहुँचता है। इस कक्ष में कभी बुद्ध की हस्व प्रतिमाएँ देखी गयी थीं। इस कोष्ठ के अर्द्धस्तम्भ मे पूर्ण कुम्भ तथा पर्णावली आलेखन का उद्रेखण सुघड एव कलात्मक है। गुहा स० 6 वर्गाकार है जिसकी लम्बाई-चौडाई 46 5 फीट है। मण्डप के मध्य मे चार अष्टभुजी स्तम्भ हैं। इसके दाहिनी ओर दो अपवरक (कोठरियाँ) हे तथा पीछे की ओर एक साथ तीन अपवरक निर्मित है जिसमे मध्य अपवरक गहरी एव आयताकार हे। प्रतीत होता है कि यह पूजा-स्थल रहा होगा। मण्डप के आगे की ओर एक द्वार तथा दो खिड़कियाँ हैं। इसके अग्रभाग में द्वार-मण्डप का कोई अस्तित्व नही दिखायी पडता। इस गुहा की भित्तियाँ भी लेपित थीं जिन पर उत्कृष्ट चित्रकारी कभी रही होगी ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। यह गुहा पूर्णरूप से क्षतिग्रस्त हो चुकी है और स्तम्भो के ठूठ मात्र दिखायी पडते है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 7

लगभग 15 गज दूर यह गुहा स० 2 की ही भाँति निर्मित है। इसका द्वार-मण्डप (बरामदा) 89 फीट लम्बा तथा 11 फीट चौडा है जो 6 अष्टभुजी स्तम्भों पर टिका हुआ है। इसके दोनो ओर अपवरक (कोठरियाँ) हैं। द्वार-मण्डप के बायीं ओर की कोठरी मे एक युग्म मूर्ति निर्मित है तथा ऊपरी भाग में एक बैठी हुई प्रतिमा है। सभी मूर्तियाँ खडित व विघटित अवस्था मे है।

द्वार-मण्डप से सभा-मण्डप मे प्रवेश के लिए तीन द्वार हैं। मुख्य द्वार 7 फ़ीट चौडा है जबकि अगल-बगल पूरक द्वार लगभग 4 फीट ही चौडे हैं। मुख्य द्वार के दोनों ओर 1-1 खिडकियाँ हैं जो पूरक द्वार से चौडी हैं। इन्ही द्वारो एवं खिडकियों से गुहा के सम्पूर्ण आन्तरिक भाग मे प्रकाश व हवा पहुँचती है। द्वार तथा वातायन (खिडकियो)को अलंकृत नही किया गया है। द्वार से प्रवेश करते ही हम विस्तृत सभामण्डप मे पहुँचते है जो वर्गाकार है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई 50 फीट होगी। इसमें चारों ओर 20 स्तम्भ और मध्य मे 4 मुख्य स्तम्भ की गणना की जा सकती है। टूटे स्तम्भ खण्डो पर चित्रकारी देखी जा सकती है जिससे अनुमान होता है कि सम्पूर्ण आन्तरिक भाग चित्रित रहा होगा। इस मण्डप के अगल-बगल 7-7 कोठरियाँ हैं तथा पिछले भाग के मध्य में दो स्तम्भ वाले छोटे बरामदे के साथ एक पूजा-गृह तथा अगल-बगल 2-2 कोठरियाँ निर्मित हैं। दाहिने ओर की छठी कोठरी से एक रास्ता गुहा नम्बर आठ को जाता है। इस तरह से गुहा नं० 7 एवं 8 एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं।

गुहा मंदिर क्र. सं. 8

यह गुहा सम्पूर्ण रूप से क्षतिग्रस्त है। केवल इसका मूल द्वार लगभग बद हो गया है। एक छिद्र के द्वारा सर्पण कर अन्दर केवल झाँका भर जा सकता है लेकिन अँधेरे के कारण कुछ भी दिखायी नही पड़ता अत. इसके बारे में कुछ कहा नही जा सकता। प्रवेश-द्वार को देखकर ही इसके अतीत की कल्पना की जा सकती है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 9

इस गुहा के बारे में किसी को कोई ज्ञान नहीं है। कभी किसी ने इसे देखा होगा जिससे इसकी गणना होती आयी है। अब यहाँ इसके मिलने की सम्भावना बहुत ही धूमिल हो चुकी है। मुकुल डे ने इस गुहा के अस्तित्व को स्वीकार किया है किन्तु इसके अन्दर किसी भी भाँति नही पहुँचा जा सकता।[1]

---

[1] मुकुल डे माई पिलग्रिमेज टू अजन्ता एण्ड बाघ 1950 पृ० 74

बाघ चित्रों की विशेषताएँ

बाघ के चित्र अजन्ता शैली की प्रधान परम्परा से सम्बद्ध है। चित्रो की रचना-शैली अजन्ता से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। शैली और रचना-पद्धति की दृष्टि से बाघ के चित्र उत्कृष्ट हैं और अपनी भावधारा मे महान् है। उनमें चित्रकारी की प्राविधि प्रचुर मात्रा मे विद्यमान थी जिसके कारण ये चित्र विश्वविख्यात हुए।

बाघ के चित्र किसी महान् ऐतिहासिक घटना से जुडे हैं जिसमे जीवन के विभिन्न पक्षो, सुख-दु.ख, आनन्द-पीडा, विरह-वेदना, संयोग-वियोग आदि मनोभावों का सुन्दर चित्रण हुआ है। नृत्य, गायन, वादन, चल समारोह का ऐसा उत्कृष्ट और भव्य चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। एक तरफ मानव मन की गहन वेदना का चित्रण दिखायी पडता है तो दूसरी ओर जीवन के उत्साह एव आनन्द का अकन मिलता है। यहाँ के चित्र चित्रकार के आन्तरिक अनुभूति की सहज अभिव्यक्तियाँ है।

पशु चित्रण मे बाघ के चित्रकारो को महारत हासिल है। हाथी की सूँड पर पड़ी महीन सुकड़नों अथवा गर्दन के ऊपर का कोमल भाग आदि का चित्रण कलाकार के सूक्ष्म निरीक्षण और उन्हें चित्रित करने की अद्‌भुत क्षमता के परिचायक है। घाडे के शरीर एवं उनकी मासपेशियों का छाया प्रकाश के द्वारा जो उत्कृष्ट चित्रण यहाँ प्राप्त होता है वैसा अकन शायद ही कही दिखायी पड़े। सजीव दृढ रेखायुक्त चित्रण बाघ की विशेषता है। अजन्ता मे हमे अश्वो का इतना पूर्ण एव उत्कृष्ट चित्रण नही मिलता। हाथियो के चित्र भी अजन्ता से कम सुन्दर नही हैं। अन्य पशुओं का चित्रण भी बड़ी कुशलता से हुआ है।

बाघ के चित्रो मे पक्षियो का चित्रण प्रभावशाली और मुग्धकारी है। शुक, सारिका, कलहंस, मयूर, सारस, कुक्कुट, कोयल सभी का उत्कृष्ट चित्रण यहाँ दिखायी पडता है। पक्षी-चित्रण मनुष्य के मनोभावो को प्रतीक के रूप में भी अभिव्यक्ति देता है। छत के नीचे सजावट वाले पक्षी सम्बन्धी चित्रो में कलहस बने हुए है। कबूतरों के चित्र में रगो का प्रभाव अद्वितीय है। बाघ के विभिन्न आलेखनों में मन मुग्धकारी पक्षियो का अंकन कमल, कमलनाल, लताओ तथा पुष्पों के साथ किया गया है। जगली कबूतर एवं मोरों के चित्रण में यहाँ के कलाकारो ने विशेष रुचि ली है।

जीवन में प्रयोग आनेवाली अनेक वस्तुओ का चित्रण बडी ही कुशलता से किया गया है। काष्ठ निर्मित वस्तुओ के अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ यथा-बेलबूटों वाली तलवार की म्यान, ढीले-ढाले धारीदार कपडे, झूलते हुए हौदे तथा विभिन्न प्रकार के साज-सामानो का यहाँ उत्कृष्ट चित्रण दिखायी पड़ता है। वस्त्राभूषण यहाँ अजन्ता की तरह भव्य नही है फिर भी सादे रूप मे मनोहारी चित्रण प्रभावशाली है। केश प्रसाधन की सामग्री, वस्त्र, आभूषण—कठहार, नेकलेस, कंगन, चूडी और पायल आदि का चित्रण स्वाभाविक है। हीरे-मोती जडित राजमुकुट, गले के हार, यज्ञोपवीत आदि का चित्रण भी यहाँ बहुतायत से उपलब्ध होता है।

बाघ के कलाकारों ने जीवन के विविध पक्षों का चित्रण यहाँ किया है। वे धर्म के प्रति निरपेक्ष नही थे फिर भी उन्होने जीवन के विविध पक्षों को बहुत करीब से देखा था इसलिए धार्मिक चित्रण से ज्यादा मानव मन की गूढ़तम भावों की अभिव्यक्ति मे उनका मन ज्यादा रमा है जीवन के सुख दु ख और आन्तरिक अनुभूति बाघ की भित्तियों पर हो उठी है
सवेदना, स्वाँग नृत्य गायन वादन गजारोहण चल समारोह

आदि विषयों पर चित्रण कर उन्होने अपनी महान् प्रतिभा का परिचय दिया है। वैसे तो यहाँ अनेक विषयो के चित्र मिल जाते हैं लेकिन ख्याति उन्हे जनजीवन से सम्बन्धित विषयो के चित्रण से ही मिली है। जीवन के विविध पक्षों की कलात्मक अभिव्यक्ति उनकी प्रथम रुचि रही है।

बाघ के कलाकारो ने प्रकृति का चित्रण पूर्ण मनोयोग से किया है। प्रकृति के विविध उपादान, यथा-लता-वृक्ष, पेड-पौधे, फल-फूल का बडा सजीव चित्रण यहाँ दिखायी पड़ता है। प्रकृति के सहयोगी पशु-पक्षी भी इसी मे इस प्रकार रच-बस गये है कि उन्हें अलग से नही देखा जा सकता। प्राकृतिक सौन्दर्य की अनुपम छटा यहाँ चारो ओर फैली हुई है और मनुष्य की अनुभूति के आलम्बन के रूप मे उनका प्रभावी चित्रण दिखायी पडता है।

बाघ के चित्रकारों ने अपनी कृतियो में तारतम्य का सन्तुलन बडी कुशलता से किया है। उनके चित्रो मे एक गति है एक छन्द है जो उन्हे उस भावभूमि तक ले जाने में समर्थ होती है जहाँ रस का समुद्र हिलोरे लेता है। रस का ऐसा सुन्दर परिपाक विश्व की महानतम कृतियो मे भी दुर्लभ है। बाघ की चित्रकारी मे भावनाओं का चित्रण उसका प्राण है। मानव के सभी भाव और भावनाओं की अभिव्यक्ति यहाँ मुखर रूप से व्यक्त हुई है।

बाघ का रग-विधान साधारण है लेकिन रगो का अतर-प्रदर्शन तथा छाया पकाश युक्त प्रयोग अपने-आप में बेजोड़ है जिसकी तुलना विश्व की महान् कृतियो से की जा सकती है। ससार में बाघ के समकालीन चित्रो मे कहीं कोई ऐसा नही है जो तकनीक और विधान की दृष्टि से इतने महान् हों। बाघ के चित्रों मे स्थानीय खनिज रंगो का ही प्रयोग दिखायी पडता है लेकिन जितने भी रग उपलब्ध थे उनका प्रयोग बडी कुशलता से किया गया है।

बाघ के चित्र अपने अनुपम संयोजन-विधान के कारण भी श्रेष्ठ माने जाते हैं। संयोजन की सबसे बडी विशेषता यह होती है कि दर्शक की दृष्टि मुख्य विषय पर सहजता से पहुँच जाय और चित्र के आन्तरिक भावना से आत्मसात् कर ले। लेकिन दर्शक की दृष्टि को कलाकार अपने तरीके से मुख्य विषय तक ले जाता है क्योंकि अपनी अनुभूति तक पहुँचाने के लिए उसे उस भावभूमि तक भी लाना पड़ता है जहाँ वह रस का बोध कर सके। इस प्रकार प्रेक्षक की दृष्टि को शनैः-शनैः बढाता हुआ वह केन्द्रीय विषय पर लाता है। बाघ का कलाकार इस बात को बखूबी समझता था इसलिए उसका चित्र-संयोजन बडा ही सशक्त एव प्रभावी है। विषय के अनुसार प्रेक्षक की दृष्टि को वह गति देता है और उसे उस दिव्य आनन्द का बोध कराता है जो सहृदय को इन कृतियों को देखकर प्राप्त होना चाहिए।

बाघ का नारी चित्रण अजन्ता की तुलना मे सहज एवं साधारण है। यहाँ की नारी को किसी के श्रीवृद्धि का साधन नहीं माना गया है बल्कि उसे सामान्य रूप से दया, ममता, वात्सल्य और प्रेम की प्रतिमूर्ति के रूप मे चित्रित किया गया है। उसका सौम्य रूप सभी को आकर्षित करता है किन्तु कहीं भी किसी भी प्रकार के विकार को जन्म नहीं देता। वे समाज की साधारण ललनाएँ हैं जो स्वच्छन्द और उन्मुक्त जीवन की आकांक्षी हैं। उनकी निश्छल एव स्वाभाविक गतिविधियाँ सभी को आकर्षित तो करती हैं लेकिन किसी भी कुत्सित विचार को पनपने नहीं देती। विविध भावों में डूबती-उतराती ये नारियाँ अपनी भाव-भंगिमा और सौन्दर्य सौष्ठव के कारण अलग से जानी पहचानी जाती हैं

बादामी की कलाकृतियाँ

सदियों पहले धूप, वर्षा और ठंड की मार से बचने के लिए मनुष्य ने गुफाओं में शरण ली। सभ्यता के विकास के साथ वह गुफाओ से बाहर आ गया और गुफाओं को उसने देवताओ का निवास बना दिया। अपनी आदिम गुफाओ को काट-छाँटकर उसने उन्हें अलंकृत किया और अपनी कलात्मक प्रतिभा को व्यक्त करने के लिए शिल्पकला एवं चित्रकला की अनुपम कृतियो से उसे मडित किया। दक्षिण भारत के अनेक स्थानो में इस प्रकार के शिलागृही मंदिर प्राप्त होते हैं जहाँ प्राचीन भारत की सभ्यता और सस्कृति की महान् विरासत सँजोयी हुई है जो हमारी कलात्मक प्रतिभा को मुखरित करते हैं। ऐसा ही एक स्थान है बादामी।

कर्नाटक राज्य के ऊपरी हिस्से में एक कस्बा बादामी है जो कभी वात्यापी (वात्यपिपुरम्) के नाम से चालुक्य साम्राज्य की राजधानी थी। कर्नाटक संगीत में आज भी यहाँ के गणपति की सर्वप्रथम वंदना की जाती है। पर्वतों के बीच स्थित यह प्राचीन नगरी अपने प्राकृतिक वैभव एव कलात्मक मंदिरो से समृद्ध है। यहाँ चालुक्यो ने चट्टानों को तराशकर गुहाएँ (लेण) बनवायी जो बादामी गुहाओ के नाम से जानी जाती हैं। कहा जाता है कि तीसरी सदी मे चालुक्यो ने पहली बार गुहाओ से बाहर भी मंदिरों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया। चालुक्यो के शासनकाल में कलाकारों को अत्यधिक सम्मान प्राप्त हुआ और नये-नये कला-रूपों की खोज हुई। तरह-तरह के मंदिर एवं आकृतियाँ बनायी गयीं। इसी समय मंदिर के दक्षिण भारतीय शैली का जन्म हुआ। चालुक्य, पल्लव, होलशिला, विजय नगर साम्राज्य, टीपू सुल्तान सबने बादामी पर राज्य किया और कई गौरवशाली स्मारक बनवाये किन्तु बादामी चालुक्यों द्वारा बनवाये गये इन शिलागृही मदिरों के कारण ही विख्यात हुआ।

बादामी मे चार गुहाएँ हैं जो एक ही पहाडी में अवस्थित है तथा प्रत्येक गुहा कठिन सीढियो द्वारा एक-दूसरे से जुडी हुई है। पहली गुहा शिव गुहा है, दूसरी एवं तीसरी वैष्णवी है तथा चौथी गुहा जैन धर्म की है। इन गुहाओ मे चित्रकला, मूर्तिकला तथा वास्तुकला की अनुपम त्रिवेणी दिखायी पड़ती है। चित्रकला की दृष्टि से तीसरी गुहा महत्त्वपूर्ण है। इस गुहा मे वैष्णव धर्म से सम्बन्धित सबसे प्राचीन चित्र मिलते है जो अजन्ता आकृतियों से अत्यधिक साम्य रखते हैं। शिल्प-सज्जा तथा चित्रण की दृष्टि से यह गुहा सर्वश्रेष्ठ है। इस गुहा मदिर मे चालुक्यवशीय राजा मंगलीश के शासनकाल के बारहवें वर्ष का एक लेख प्राप्त हुआ है जिसका समय लगभग 578 ई० (500 शाका) है। लेख के अनुसार विष्णु की प्रतिमा इस गुहा मंदिर के मुख्य मडप मे स्थापित की गयी और मदिर में पूजा एव प्रबध के लिए इसे लजीसवाड़ा नामक ग्राम की जागीर प्रदान की गयी। उक्त लेख से यह भी विदित होता है कि इस गुहा को राजा मगलेश ने बनवायी थी। चालुक्यवंशीय राजा मंगलेश, महान् शासक कीर्तिवर्मन् का भाई था जो उसके बाद चालुक्य साम्राज्य का शासक बना। वह एक-कला प्रेमी शासक था जिसने शिलागृही मदिरो एवं भवनो के निर्माण में रुचि लिया। उसके शासनकाल में ही ये गुहा मदिर बनकर पूर्ण हुए। बादामी नगर के बीच के एक लेख से यह भी विदित होता है कि राजा मंगलीश के पुत्र पुलकेशिन द्वितीय की राजधानी बादामी को पल्लव-वंशीय राजा ने ध्वस्त कर दिया।

शिल्प की दृष्टि से इन गुहाओं में बहु आयामीय आकृतियों के सुन्दर उदाहरण दिखायी पडते हैं। शिव की शिल्पाकृति मे नौ जोडी हाथ हैं। इनमें से कोई एक जोड़ी हाथ चुन लीजिए जिसमें की एक मुद्रा दिखेगी इस तरह से की अलग अलग 81 मुद्राओं का

दिग्दर्शन इस महान् शिल्पाकृति में देखी जा सकती है। एक दूसरे स्थान के पैनेल में तीन सिर चार हाथ और तीन पाँव उत्कीर्ण है लेकिन अलग-अलग कर देखने पर तीनो आकृतियाँ पूर्ण लगती हैं जबकि पूर्णता के लिए छह हाथ और छह पैर उत्कीर्ण किया जाना चाहिए था। कुछ ब्रैकेट फीगर्स भी हैं जो शिला बालिग की आकृतियाँ है जिसका परिष्कृत रूप होलशिला राजाओ ने बेलूर मे बनवाया।

चित्रकला की दृष्टि से इन गुहाओं मे तृतीय गुहा ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। इन चित्रों को देखने से यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि चालुक्यवशीय सम्राट् मगलेश के दरबारी कलाकार वाकाटक कलाकारो की शैली को पूर्ण रूप से आत्मसात् कर लिया था और वे उन परम्पराओ का अनुसरण कर रहे थे जिन्हे अजन्ता के कलाकारो ने अपनाया था। इस गुहा की छत पर विभिन्न पैनलों के चार दृश्य बनाये गये हैं। दो पैनलो का आकार 5×5 5 फीट तथा दूसरे दो पैनलो का आकार 1 5× 1 9 फीट है। यहाँ के चित्रों के बारे मे सर्वप्रथम स्टेला क्रैमरिख ने प्रकाश डाला।[1] इसके पहले बर्गीज एव बनर्जी ने इस गुहा के बाहरी भाग में चित्र के धुँधले चिह्न पाये जाने का उल्लेख किया है लेकिन चित्रो के बारे मे कुछ नही कहा। स्टेला क्रैमरिख ने इन चित्रों को शिव-विवाह से सम्बन्धित बताया लेकिन इन चित्र को भलीभाँति देखने से यह बात ठीक नहीं लगती। वाराह पैनल के समीप उत्कीर्ण लेख से भी यह इंगित किया गया है कि दर्शको को मंगलेश की कला का रसास्वादन करने के लिए गुहा की छत (जहाँ चित्र अंकित हैं) दीवारों तथा मूर्तियों को देखना चाहिए। ऐसा लगता है यह दृश्य चालुक्य सम्राट् कोर्तिवर्मन् के शासन एवं उसके दरबार से सम्बन्धित है। सम्राट् कीर्तिवर्मन् मंगलीश का बडा भाई था जिसे वह हृदय से प्रेम करता था। तृतीय गुहा के छत पर बने चित्रो का विवरण कुछ इस प्रकार है :—

प्रथम दृश्य—पहले पैनल मे एक राज प्रासाद का दृश्य अंकित है जहाँ नृत्य सगीत का भव्य कार्यक्रम अपने उत्कर्ष पर है। केन्द्र की बैठी हुई आकृति नृत्य एव संगीत का आनन्द ले रही है। प्रालिन्द (बाल्कनी) के ऊपर बाहर से आये हुए गणमान्य अतिथि इस दृश्य को देख रहे है। मुख्य आकृति जो मृदु नीलिमायुक्त हरे वर्ण की है, का एक पैर आसन पर तथा दूसरा पैर पाद-पीठ पर टिका हुआ है। यह भाग इतना क्षत-विक्षत हो चुका है कि इसे पहचाना नही जा सकता। यहाँ केवल बृहद् धड एव सुन्दर हाथ ही दृष्टिगत होता है। इस आकृति की मुखाकृति नष्ट हो गयी है लेकिन मुकुट का एक भाग बच गया है जिससे यह प्रतीत होता है कि यह आकृति चालुक्य सम्राट् की है जिसके गले मे चालुक्य कला शैली मे दिखायी पडने वाला कण्ठहार (कम्बुकठ), लटकते हुए आभूषण की लड़ियाँ तथा मोतियों से सन्नद्ध यज्ञोपवीत इसके साक्षी हैं। इस आकृति के बायें कान का कुण्डल दिखायी पड़ रहा है। इस विशिष्ट व्यक्ति के पैर के पास अनेक बैठी हुई आकृतियाँ हैं और इधर-उधर सेवक एवं सेविकाएँ खडी है। सेविकाएँ चामरधारणी है। चित्र का यह भाग क्षत-विक्षत हो गया है इसलिए बहुत-कुछ स्पष्ट नहीं है।

चित्र के बाये भाग में वाद्यवृन्द के साथ सगीतज्ञों की टोली है जिसके बीच एक नर्तक और नर्तकी नृत्य कर रहे हैं। नर्तक दर्शकों की ओर उन्मुख है और शायद चतुरा मुद्रा में है। नारी नर्तकी पुरुष नर्तक का साथ दे रही है।

पुरुष नर्तक जंघाओ पर धारीदार अर्द्धोरुक वस्त्र धारण किये हुए है और उसकी केशराशि जटाजूट की तरह है। कानो में पत्र-कुण्डल, कण्ठाभरण, बाजूबंद, कंगन आदि आभूषणो से

---

[1] स्टेला क्रैमरिख पेन्टिंग एट बादामी जनरल आफ दी इण्डियन सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्ट, पृष्ठ 57 61

सुशोभित इस नर्तक को ही देखकर शायद स्टेला क्रैमरिख ने इसे शंकर मान लिया और चित्र की विषय-वस्तु को शिव-विवाह से सम्बन्धित बता दिया। जबकि वस्तुतः ऐसा नही है।

पुरुष नर्तक के साथ की नृत्यागना हल्के नीले हरे वर्ण की है तथा उसका केशविन्यास कलात्मक है। वस्त्राभूषणो से सुसज्जित उसके शरीर मे लोच के साथ एक आकर्षक घुमाव है जो लयात्मक गति का बोध कराती है। इसके चारो ओर विभिन्न वाद्ययत्रो को बजाती हुई नारियाँ अकित की गयी हैं जो साधारण वस्त्राभूषणो से सुशोभित हैं। इनमे से दो तन्वगी बाँसुरी बजाती हुई चित्रित की गयी है दायीं ओर थोड़ा आगे एक ढोलकिया है। उसके आगे एक श्यामवर्णी नारी अपनी गोद मे लेकर मृदग बजा रही है एक अन्य नारी मजीर बजा रही है।

इस चित्र के बारे मे एक दूसरा मत यह भी है कि इन्द्र अपने वैजयन्त भवन मे नृत्य और सगीत का आनन्द ले रहे है तथा ताडु एव अप्सरा नृत्य का प्रदर्शन कर रहे है।

दूसरा दृश्य—दूसरे पैनल मे राज प्रासाद के एक कक्ष मे एक राजदम्पति एव उसके दरबार का चित्रण है। सम्भवतः ये दोनो चालुक्य सम्राट् मगलेश एवं उसकी रानी है। सम्राट् को पीठासीन दिखाया गया है जिनका बाया हाथ घुटने पर तथा दाया हाथ त्रिपतका मुद्रा मे है। शीश पर उन्नत मुकुट, दाहिने कंधे पर यज्ञोपवीत तथा कुछ आकर्षक आभूषणो से उनका व्यक्तित्व और निखर उठा है। नरेश के बायी ओर प्रसाधिकाओ और परिचारिकाओ के मध्य रानी चित्रित की गयी है। रानी आयताकार पीठासीन पर विराजमान है। आकर्षक मुख-मुद्रा वाली रानी का दाहिना हाथ आसन पर तथा बाया हाथ सोच मुद्रा मे चेहरे को नीचे टिकाये हुए है। उनका बाया पैर मुड़ा हुआ आसन पर तथा दूसरा दाहिना पैर पादपीठ पर है जिस पर एक प्रसाधिका महावर लगा रही है। कमर से नीचे जघाओ पर धागेदार अर्धारुक पहने रानी की सुन्दर देहयष्टि नाना आभूषणो से युक्त है। कानो मे पत्र-कुण्डल, भुजाओं पर अनन्त एव भुजबन्द तथा ग्रीवा विभिन्न कण्ठहारो एवं मालाओ से सुशोभित है। रानी का केश-विन्यास बड़ा आकर्षक है। सम्भवतः वह धम्मीला फैशन मे बाँधा गया है। केश की कुछ लटे माथे पर आ गयी है। रानी की भाव-भगिमा तथा सुन्दर देहयष्टि का निरूपण कलाकार ने बडी कुशलता से किया है।

रानी की सेवा में खडी चामर धारिणियों के केश खुले या बँधे दिखाये गये है। एक परिचारिका के हाथ मे दंड है। राज दम्पति के नीचे तीन आकृतियाँ क्रमशः गौर, ताम्र एवं हरित वर्ण की हैं जो सम्भवतः नरेश के सेनानायक है। दायीं ओर अनेक मुकुटधारी दरबारी धरती पर बैठे मानो आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन आकृतियों के छोर पर एक नारी प्रतिहारी भी चित्रित की गयी है। इस चित्र के राजदम्पति यदि मंगलीश एव उनकी रानी नही हैं तो वह उसका बडा भाई कीर्तिवर्मन् भी हो सकता है जिसे मंगलीश बहुत चाहता था।

तीसरा दृश्य—इस चित्र का बहुत-सा भाग नष्ट हो गया है। चित्र मे विद्याधर तथा विद्याधरी को एक-दूसरे के गले मे बाँहे डाले हुए चित्रित किया गया है। दोनों के शीश पर मुकुट है। विद्याधर को गौरवर्ण और विद्याधरी को गहरे वर्ण में निरूपित किया गया है।

चतुर्थ दृश्य—इस पैनल मे विद्याधर एव विद्याधरी के युगल आकृति को और अधिक सुन्दर अंकित किया गया है। विद्याधर को जटाओं जैसे केश-विन्यास, कर्ण-कुण्डल पहने, कमल-पुष्प से सुसज्जित गहरे नीलिमायुक्त हरे वर्ण मे चित्रित किया गया है जबकि विद्याधरी को वीणा लिये हुए गौर वर्ण में दिखाया गया है। इसके कान में कुण्डलों का अभाव है।

बादामी शिला गृही मदिर वास्तु शिल्प कला एव चित्रकला की बेजोड सगम स्थली है जो चालुक्य वशीय राजाओं के अन-य पर प्रकाश डालते हैं

सित्तनवासल की कलाकृतियाँ

तमिलनाडु में तंजौर के निकट सित्तनवासल नामक स्थान पर पल्लव नरेश महेन्द्रवर्मन तथा उनके उत्तराधिकारी पुत्र नरसिंहवर्मन ने कई गुहा मंदिरो का निर्माण कराया। ये गुहा मंदिर उत्कृष्ट भित्ति चित्रण के लिए प्रसिद्ध हैं। यहाँ पल्लव कला की श्रेष्ठ कृतियाँ पायी जाती हैं जो हमारी शास्त्रीय कला की श्रेष्ठ परम्परा की अनुगामिनी हैं। यहाँ के चित्रो के भलीभाँति निरीक्षण से यह विदित होता है कि यहाँ के चित्रों के दो स्तर हैं— पहले के और बाद के। कुछ विद्वानो का मत है कि इन गुहा मंदिरों का निर्माण तो पल्लवों द्वारा किया गया किन्तु चित्रण पाण्ड्या काल के हैं।

यहाँ की छत पर एक सुन्दर कमल-सरोवर का चित्रण किया गया है जिसमें कमल-पुष्प एव कलिकाओं के मध्य मीन, मकर, कच्छप, हाथी, महिष और हस को दिखाया गया है। इनके मध्य तीन युवा मानव आकृतियाँ (शायद देवता) अधोवस्त्र धारण किये हुए चित्रित हैं जिनके हाथ मे कमल-पुष्प है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी कार्य हेतु (पूजा-अर्चना) ये कमल-पुष्प का चयन कर रहे हैं। इनमें से दो मानव आकृतियों को लाल रंग में तथा तीसरे को पीले रग में चित्रित किया गया है। आकृतियो का चित्रण बडे मनोयोग से पूर्ण भावाभिव्यक्ति के साथ किया गया है। इनकी मुद्राएँ तथा भंगिमा आकर्षित करती हैं।



सित्तनवासल की सर्वोत्तम कृति एक राजदम्पति का चित्र है। राजा एक सुन्दर किरीट मुकुट धारण किये हुए हैं। उनके कान में कुण्डल तथा गले मे कण्ठहार सुशोभायमान है। अन्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित उनकी देहयष्टि कलाकार की चित्रण प्रतिभा का परिचायक है। उनकी अर्द्धउन्मीलित आँखें दया, करुणा और सहानुभूति से परिपूर्ण हैं। उनके मुखमंडल पर अद्‌भुत शान्ति का भाव उनकी आन्तरिक दिव्यता को प्रकट करता है। इस चित्र को देखने के बाद अजन्ता के बोधिसत्त्व पद्मपाणि की भावाभिव्यक्ति की याद आना स्वाभाविक है। राजा का अनुसरण करते हुए उनके पीछे उनकी रानी का चित्र है। प्रसन्न मुखमुद्रा जिसमें किंचित् औत्सुक्य का भाव है सम्पूर्ण शृंगार से युक्त है। उनकी केश-सज्जा सरल, मनोरम एवं लुभावना है। कानों में गोल बाली उनकी सुन्दरता को द्विगुणित कर रहा है। इन दोनों के ऊपर एक सुन्दर छत्र शोभायमान है। कुछ लोगों ने पीछे की रानी को छत्रधारिणी बताया है।

गुहा के खम्भों पर आयताकार क्षेत्र मे नर्तकियों अथवा अप्सराओं का नर्तन पूर्ण गतिशील एवं उत्कृष्ट भाव-भगिमा मे उत्कीर्ण है। यहाँ पर नारी का चित्रण कलाकारों ने विशेष मनोयोग से किया है। इन चित्रों की भाव-भंगिमा, हस्त मुद्राएँ, आकृतियाँ और अलंकरण बड़े ही सजीव हैं। सौन्दर्य की साक्षात् मूर्ति के समान अप्सरा एवं नर्तकियों का पाण्डुवर्णी शरीर अनुपम लय और गति के साथ चित्रित किया गया है।

यहाँ अजन्ता की परिपक्व शैली दृष्टिगत होती है जो अपने उत्कृष्ट रूप मे दक्ष कलाकारो द्वारा व्यक्त हुई है।

सिगिरिया की कलाकृतियाँ

भारत मे श्रीलका का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है। कभी यह बृहत्तर भारत का एक अंग समझा जाता था। भौगोलिक दृष्टि से भी यह द्वीप भारत का ही एक भाग है जो हिन्दमहासागर के एक उथले जलडमरूमध्य से अलग है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस द्वीप पर भारत देश का अत्यधिक प्रभाव है। अनेक बार दक्षिण के राजाओं ने उस पर राज्य किया। समुद्रगुप्त के समय लका के राजा ने उनसे मित्र भाव प्रकट किया। रामायण-काल की कथा सर्वविदित ही है जब लंकापति रावण से युद्ध कर मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने इस द्वीप पर विजय-पताका फहरायी। जातक कथा के अनुसार छठी शताब्दी के आस-पास विजय नामक राजकुमार ने सिंहल की राजकुमारी से विवाह कर वहाँ भारतीय राजवश स्थापित किया। इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना अशोक महान् के समय की है जब उसने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री सघमित्रा को बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु श्रीलंका भेजा और उन्हे वह स्वय ताम्रलिप्ति (ताम्लुक) बदरगाह से जहाज पर बैठाकर विदा किया। इस प्रकार श्रीलका और भारत के धार्मिक सम्बन्ध भी प्रगाढ हुए तथा इस द्वीप पर बौद्ध धर्म का प्रचार एव प्रसार हुआ। उन दोनो द्वारा बोध गया से ले जायी जानेवाली बोधिवृक्ष की टहनी आज वहाँ महावृक्ष के रूप मे लहलहा रही है।

बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार में यहाँ के राजाओं ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी तथा स्थान-स्थान पर स्तूप, मदिर, प्रासाद, विहार आदि बौद्ध-धर्मस्थलों का निर्माण किया जो भारतीय संस्कृति एवं कला से प्रभावित थे।

सिगिरिया की कलात्मक गुहाएँ श्रीलका (सिहल) मे प्राप्त हुई हैं। यह स्थान सिह गुहा के नाम से जाना जाता है। इन गुहाओ का निर्माण पाचवीं शताब्दी मे हुआ। सिगिरिया श्रीलका के केन्द्रीय पर्वत-शृखला में अवस्थित है तथा कोलम्बो से लगभग 165 कि. मी. दूर है। जंगलो से घिरे लगभग 600 फुट ऊँचे इस पहाडी के शिखर की दो उथली गुहाओं के छह अन्तःकक्ष में यहाँ के विश्व-विख्यात चित्र अंकित हैं। इन गुहाओ की खोज 1830 ई० में एक अंग्रेज सैनिक मेजर फोमर्स ने की।

यहाँ चित्रित आकृतियाँ अधिकतर अकेली अथवा कहीं-कहीं युगल रूपों-अप्सराओ की है। यहाँ कुल इक्कीस नारी आकृतियाँ प्राप्त होती हैं। पहले कक्ष की आकृतियाँ मानवाकार से बडी तथा दूसरे कक्ष की कुछ छोटी हैं। यहाँ की गुहाओ की दीवारों पर प्राचीन वज्रलेप (सिमेन्ट) से प्लास्टर किया गया है। तदुपरान्त लाल, पीले, हरे तथा सफेद खनिज रगों से उस चित्रभूमि पर चित्र बनाये गये हैं। यहाँ नीले रंग का सर्वथा अभाव है।

ये अप्सराएँ निम्नार्द्ध में मेघों द्वारा घिरी है जिससे आभास होता है कि ये आकाशचारिणी अप्सराएँ है। ये अपने हाथों में पुष्प लिये हुए है और कहीं-कहीं उनके हाथो में फूलो से भरा थाल है। जहाँ दो नारी आकृतियों को पास-पास चित्रित किया गया है वहाँ एक को हरे रंग से चित्रित किया गया है जो दासी होने का संकेत देता है तथा दूसरी को पीले अथवा नारंगी रंग से चित्रित किया गया है जो शायद रानी है। इनकी वर्णव्यवस्था, रेखाओं की शक्ति और सन्तुलन तथा उत्कृष्ट संयोजन यहाँ के कलाकारो की अद्भुत क्षमता और कार्यकुशलता को व्यक्त करते हैं।

नेत्रों का अर्द्ध उन्मीलन कटि की सूक्ष्मता स्तनों की सुपुष्ट तथा सुन्दर से युक्त इन आकृतियों के सौम्य मुखमडल पर अद्भुत शान्ति है ये

अप्सराएँ अनेक प्रकार के केशविन्यास कर शरीर पर सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये कमर से नीचे लांगदार धोती तथा वक्षस्थल पर आधी बाँहों वाली कचुकी अथवा पट्ट चित्रित की गयी है।



कुछ विद्वानो का मत है कि यहाँ पर चित्रित नारियाँ सम्राट् कश्यप की रा सम्बन्धित नारियाँ हैं जो पुष्प लिये हुए बौद्ध मंदिर की ओर जा रही हैं। नारियों के निच मेघ के स्थान पर कुछ लोगो ने उसे जल माना है। उनके अनुसार ये स्त्रियाँ जलक्रीडा हैं। कुछ बौद्ध विद्वान् इन्हे राजा कश्यप की रानियाँ बताते है जो उनके मृत्यु के पश्चात पुष्प-वर्षा कर रही है। जो भी हो, लेकिन इन मेघकन्याओं का इतना सन्तुलित एव सुग बहुत कम स्थानों पर दिखता है इन चित्रों की चित्रण शैली से भूरिश प्रभावित

एलोरा की कलाकृतियाँ

अजन्ता से लगभग 97 कि० मी० दूर एलोरा गाँव स्थित है। प्राचीन काल में इसका नाम ऐलपुर था जो प्रमुख मार्ग पर स्थित व्यापारिक केन्द्र था। यह स्थान महाराष्ट्र राज्य के औरंगाबाद से 30 कि० मी० दूर है। एलोरा गाँव के पूर्व दिशा की ओर पूरी पहाड़ी काटकर अद्वितीय गुहा मंदिरों का निर्माण किया गया है जो एक मील तक फैले हुए है। इन्हें एलोरा के गुहा मंदिर अथवा 'एलोरा की गुफाओं' के नाम से जाना जाता है। यहाँ पर कुल तैंतीस शैलगृही मंदिर है और इनका मुख पश्चिम के मैदान की ओर है। इनमे से प्रारम्भिक बारह गुहा मंदिर बौद्ध धर्मावलम्बियो के, उसके बाद सोलह गुहा मंदिर ब्राह्मण धर्मानुयायियों के और अन्त के पाँच गुहा मंदिर जैन धर्म के माननेवालो के है। इनमें से पाँच बौद्ध गुहाएँ सर्वाधिक प्राचीन हैं। बौद्ध गुहाओ का निर्माण-काल 550 ई० से लेकर 750 ई० तक, ब्राह्मण गुहाओं का 650 ई० से लेकर 750 ई० तक और जैन गुहाओ का कार्यकाल 750 ई० से 10वी शताब्दी तक माना जाता है। ये गुहा मंदिर भारत की प्राचीनतम धर्म निरपेक्षता, धार्मिक सहिष्णुता और सह-अस्तित्व के द्योतक हैं।

बौद्ध धर्मावलम्बियो के प्रारम्भिक बारह गुहा मंदिरो मे दसवाँ चैत्य मंदिर है, बाकी सभी विहार गृह हैं। आकार-प्रकार में ये प्राय: अजन्ता से मिलते जुलते है।

गुहा मंदिर क्र सं. 1

यह गुहा एलोरा का प्राचीनतम विहार गृह है। यहाँ किसी प्रकार की शिल्पाकृतियाँ नही मिलतीं।

गुहा मंदिर क्र. सं 2

यह गुहा चैत्य और बिहार का मिला-जुला रूप प्रस्तुत करता है। गुहा में एक प्रवेश-द्वार तथा अगल-बगल वातायन हैं। गुहा के अन्दर चारो ओर गलियारा है। इसे छोड़कर सभामण्डप की लम्बाई-चौड़ाई 48 वर्ग फुट है। सभामण्डप की छत 12 अलकृत खम्भों पर टिकी हुई है। प्राय. सभी चतुष्कोणीय खम्भों पर वामन मनुष्याकृतियाँ उत्कीर्ण है। इस गुहा के अगल-बगल भिक्षुओ के आवास की अपवरक (कोठरिया) न होकर दहलीज की दीवारो पर बुद्ध मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। गुहा की दीवारो पर बोधिसत्त्वों, अवलोकितेश्वर, पद्मपाणि, प्रलम्बपाद आसन में बुद्ध, बोधिसत्त्व, गन्धर्व, किन्नर, उपासक, द्वारपाल, चामरधारिणी सेविका इत्यादि की विभिन्न मुद्राओं में उद्रेखन प्राप्त होता है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 3

यह एक विहार गृह है। बारह चतुष्कोणीय खम्भों पर टिके इस मण्डप की लम्बाई-चौडाई 48 वर्ग फुट है। गर्भगृह के अगल-बगल एक-एक तथा दाये-बाये पाँच-पाँच कोठरियाँ बौद्ध भिक्षुओं के निवास के लिए बनायी गयी हैं। यहाँ पर उत्कीर्ण बुद्ध चामरधारिणी तथा सालवृक्ष आकृतियाँ आकर्षक है।

गुहा मंदिर क्र. स. 4

यह विहार ध्वस्तावस्था मे है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई 39×35 है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 5

इसका नाम महानवाद (महारवाड़ा) विहार है। सभामण्डप के चारो ओर गलियारा है जिसे छोडकर की लम्बाई-चौडाई 117×58 6 है के दाये बायें 20 कोठरियाँ है पिछले हिस्से में गर्भगृह है जिसमें बुद्धमूर्ति स्थापित है यह एक भव्य विहार है

गुहा मंदिर क्र. सं. 6

यह एक भव्य विहार है। सभागृह की लम्बाई-चौड़ाई 26' 6''× 43' है। देवकोष्ठ मे तारा क बहुचर्चित शिल्प है। बायी ओर अवलोकितेश्वर की मूर्ति है। वज्रपाणि, महामायूरी (ज्ञान की देवी) सिह, मयूर, कमलदल, पुष्पगुच्छ आदि की आकृतियाँ द्रष्टव्य हैं।

गुहा मंदिर क्र सं. 7

यह एक सादा विहार है जिसके सभागृह की लम्बाई-चौडाई 61' 6'' × 43' 6'' है। पिछले भाग मे पाँच तथा अगल-बगल मे तीन-तीन अपवरक है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 8

इस विहार का मध्य भाग 28' लम्बा और 25' चौडा है। गर्भगृह के सामने वाले स्तम्भ आकर्षक हैं। बायीं तरफ अवलोकितेश्वर और दायीं ओर महामायूरी की मूर्तियाँ हैं। बीच मे बुद्ध मूर्ति हैं।

गुहा मंदिर क्र. सं. 9

इस विहार की बुद्धि मूर्ति एक आसन पर पैर लटकाये हुए बैठायी गयी है। इस गुहा का मुख दक्षिण की ओर है। पहले विहारों की तुलना मे यहाँ कुछ विशेष नही हैं।

गुहा मंदिर क्र. सं. 10

यह एक चैत्य मदिर है। स्थानीय भाषा मे इसे 'सुतार झोपड़ी' के नाम से पुकारा जाता है। चैत्य स्थापत्य का श्रेष्ठ रूप यहाँ दिखायी पडता है। बहुआयामी शैली में निर्मित इस चैत्य के मध्य मे स्तूप है जिसके सामने बुद्ध मूर्ति प्रतिष्ठित है। भव्य चैत्य वातायन का रचनात्मक अलंकरण बरबस आकृष्ट करता है। आकर्षक स्तम्भों की दो कतारे इस चैत्य को भव्यता प्रदान करती हैं।

गुहा मंदिर क्र. सं. 11

इस विहार का नाम 'दोनताल' है। यथार्थतः यह तीन तल वाली गुहा है। पहले इसका निचला तल मिट्टी और चट्टानी टुकड़ो से दब गया था। सामने का बरामदा 103' लम्बा तथा 9 चौड़ा है। हर मजिल पर बुद्ध और बोधिसत्त्व की मूर्तियाँ है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 12

इस विहार गृह का नाम 'तीनताल' है। एलोरा बौद्ध गुहा समूह की यह अन्तिम गुहा है। निचले तल के सभामण्डप मे 30 खम्भे हैं तथा पीछे देव गृह है जसके अगल-बगल नाना प्रकार की शिल्पाकृतियाँ हैं। दूसरी एव तीसरी मंजिल में भी खम्भो से युक्त सभागृह हैं। सभी मजिल मे आसनासीन बुद्ध, वज्रपाणि, पद्मपाणि आदि के अतिरिक्त अन्य बहुत-सी आकृतियाँ दिखायी पडती है। यहाँ बौद्ध धर्म के परवर्ती रूप का साक्ष्य लक्षित किये जा सकते हैं।

गुहा मंदिर क्र. सं. 13

यह भाण्डार कक्ष या विश्रामालय के रूप मे निर्मित है। यहाँ उल्लेखनीय कुछ नहीं है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 14

इसे 'ब्राह्म गुहा' कहा जाता है तथा ब्राह्मण गुहाओ मे सबसे प्राचीन है। मुख्य द्वार पर गंगा-यमुना का भव्य शिल्प है। मण्डप की बायीं ओर वैष्णव सम्प्रदाय की शिल्पाकृतियाँ है और दाहिनी ओर शैव सम्प्रदाय की। दुर्गा, गजलक्ष्मी, वराह, विष्णु, श्रीदेवी, भूदेवी आदि की प्रतिमाएँ आकर्षक हैं। अंधकासुर का वध करते शिव ताण्डव-नृत्य, शिव-पार्वती, कैलाश हिलाता रावण, गणेश, काली आदि की मूर्ति शिल्पकार के रचना-कौशल को प्रमाणित करती हैं

गुहा मंदिर क्र. स 15

यह गुहा मदिर 'दशावतार' के नाम से जाना जाता है। ब्राह्मण धर्मीय गुहा समूह मे यह एक महत्त्वपूर्ण गुहा है। यह काफी ऊँचाई पर निर्मित है। गुहा का आँगन चट्टानो को काटकर बनाया गया है। वीथिका मे शिव के संहारक और विष्णु के सृजनात्मक रूप की शिल्पाकृतियाँ भरी पडी हैं। विष्णु के विभिन्न अवतारो तथा शिव के विविध रूपों की जो कल्पना पुराणों मे की गयी है उनका सुन्दर शिल्प यहाँ प्रस्तुत किया गया है। यह गुहा दो मजिली है। देवालय का मूलनायक एक शिवलिंग है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 16 (कैलास मदिर)

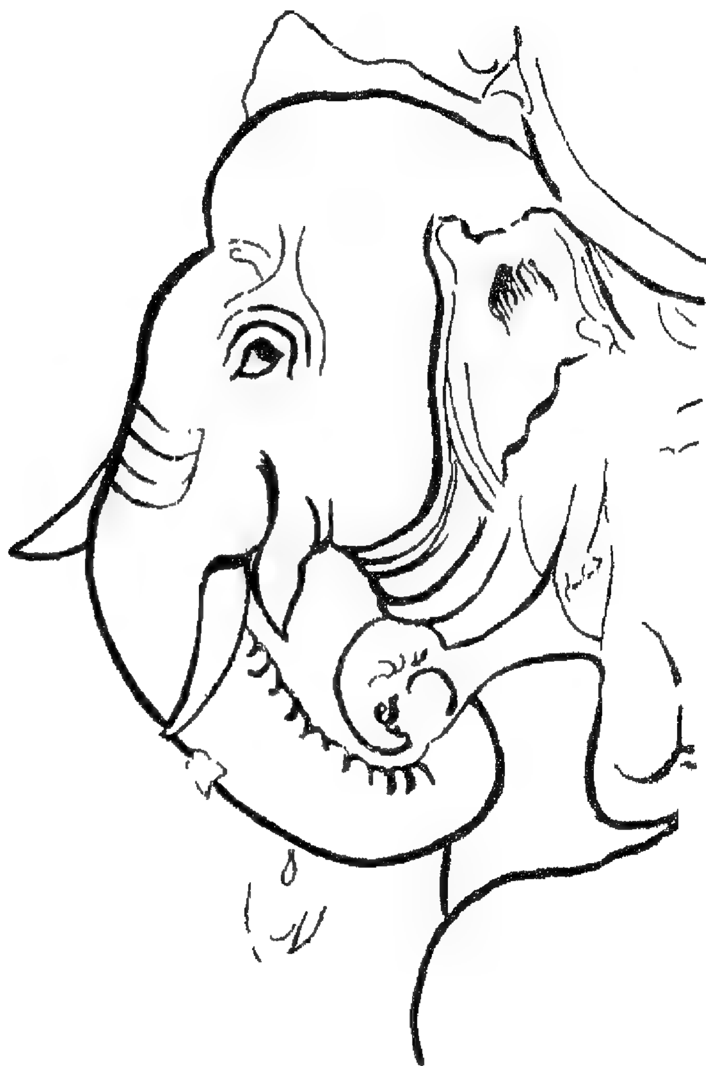
यह गुहा मदिर 'कैलास मंदिर' के नाम से विश्व-विख्यात है। यह भारतीय शिल्पकारो एव चित्रकारो की सर्वश्रेष्ठ देन है। वस्तुतः पाषाणोत्कीर्ण स्थापत्य कला में निर्मित यह शैल मदिर सर्वाधिक विलक्षण, मनोरम और उत्कृष्ट है। यह भगवान् शिव का दिव्यधाम है जिसकी रमणीयता को देखकर गगनबिहारी देवी-देवता भी स्तब्ध खडे रह जाते है। कलाकार की निर्माणकारी कल्पनाशक्ति का प्रभाव उन्हे वशीभूत कर लेता है। दृढ़ एव कठोर पत्थर को मोम की तरह काट-छाँटकर गतिमान् स्वाभाविकता के साथ जीवन्त मूर्तिशिल्पो की रचना करनेवाले यहाँ के कलाकारों ने अपनी अटूट साधना और चेतना शक्ति से कला को सार्थक रूप प्रदान किया है। उनके द्वारा असाधारण बारीकी एव शुद्धता से बनायी गयी कृतियो को देखकर कौन ऐसा है जो आविर्भूत हुए बिना रह जाय।

कैलास मदिर का निर्माण एक विशाल शिलाखण्ड को ऊपर से नीचे की ओर काट-काटकर किया गया है। मंदिर के अन्दर जो भी शिल्पकारी को गयी है वह उसी विशाल शिलाखण्ड का अविभाज्य अग है। कहीं किसी दूसरे पत्थर को यहाँ नही लाया गया है। ऐसा अनुमान है कि इस शैल-मंदिर के निर्माण में तीस-पैंतीस लाख घनफुट पत्थरो को काटकर बाहर निकाला गया होगा। इस शैल मंदिर के उत्खाता ने प्राचीन चैत्य एवं विहार निर्माण परम्परा का परित्याग कर सवर्था नवीन शैली का अभिनव प्रयोग किया। मदिर के प्रांगण की लम्बाई 276 फीट और चौडाई 154 फीट है तथा उक्त विशाल शिलाखण्ड को 107 फीट गहरा खोद इस मदिर को निकाला गया है। मुख्य शिव मंदिर की लम्बाई 164 फीट और चौडाई 109 फीट है और आँगन की तल भूमि से मदिर के शिखर की ऊँचाई 96 फीट है।

मदिर की मूर्तियाँ केवल दीवार में ही उत्खनित नहीं हैं वरन् अन्य बहुत-सी मूर्तियो को चारों ओर से विधिवत् तराशकर गढ़ा गया है। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विवरण एव सजावट को मूर्तिशिल्प में प्रस्तुत किया गया है। यही नहीं, यदि प्रतिमा की उँगलियो पे अँगूठी दिखायी गयी है तो वह भी घूमती हुई। ऐसी चमत्कारिक कृति की रचना में कलाकार में कितनी अधिक सृजनात्मक शक्ति एवं कुशलता रही होगी इसकी कल्पना करना भी कठिन है। इन मूर्तियो मे मानवीयता का अनुपम सौन्दर्य मुखरित हो उठा है।

राष्ट्रकूट राजा कृष्ण (प्रथम) के शासनकाल आठवीं शताब्दी में प्रारम्भ होकर इस मदिर का निर्माण कई पीढियो बाद पूरा हुआ। यहाँ के शिल्पो मे भारतीय पुराण, रामायण तथा महाभारत के कला-सन्दर्भों को उकेरा गया है। इसके अतिरिक्त आकाशचारी गन्धर्वों एव देवताओं के साथ प्रकृति के रूपों का शिल्पांकन भी प्राप्त होता है। यद्यपि यहाँ बैष्णव एव शैव सम्प्रदाय दोनो के मूर्तिशिल्प उत्कीर्ण हैं लेकिन शिल्प शैव दर्शन का करते हैं

चित्रकला—कैलास मंदिर का मुख्य मण्डप 16 स्तम्भों पर आधारित है। इन सुन्दर आलेखनों को चित्रित किया गया है। अलंकरणों मे कमलवन, हाथी, मछली ग अप्सराएँ आदि चित्रित की गयी हैं। छत कमल-पुष्प आलेखनों से सुसज्जित हैं। इनके



हाथी का चित्रण (एलोरा)

चौड़ी पट्टियाँ हैं जिनमें अनेक दृश्य अंकित हैं। चित्रित आलेखनों में कहीं-कहीं प्लास्ट गया है जिसके नीचे पुराने चित्र दिखायी पड़ते हैं। इन चित्रो मे गरुड़ पर बैठी वैष्णवी, सि बैठी देवी तथा सुरबालाओं के चित्र महत्वपूर्ण हैं

गुहा मंदिर क्र. सं. 17

यह अपूर्ण शैव देवालय है। स्तम्भों में बना प्रकोष्ठ गर्भगृह द्रष्टव्य है। महिषासुर मर्दिनी, ब्रह्मा विष्णु, गणेश तथा स्तम्भों की नक्काशी आदि दर्शनीय है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 18,19 एवं 20

ये तीनों गुहाएँ अपूर्ण एवं अस्तव्यस्त हैं। यहाँ कुछ विशेष उल्लेखनीय नही है।

गुहा मंदिर क्र. स. 21

इस गुहा मंदिर को 'रामेश्वर' कहा जाता है। चालुक्य मंदिरों की शैली में बना यह शैव मंदिर अपने नंदी मण्डप के लिए प्रसिद्ध है। इस गुहा का शिल्प आकर्षक है। विशेषरूप से मकरवाहिनी गंगा और यमुना की आकृतियाँ शिल्प कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

गुहा मंदिर क्र. स. 22

इस गुहा मंदिर के शिवलिंग पर तीन नीली धारियाँ हैं इसलिए इसे 'नीलकण्ठ' कहा जाता है। मुख्य मंदिर 70 फीट लम्बा तथा 45 फीट चौड़ा है। इसके सामने आँगन है। यहाँ नंदी मण्डप के साथ सप्तमातृका, वीरभद्र और गणेश के पैनल आकर्षक हैं।

गुहा मंदिर क्र. स. 23

इस गुहा का नाम 'तेलधाणी' है। गुहा के छत पर उत्कीर्ण कमल आकृष्ट करता है। प्रेक्षणीय कुछ नहीं है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 24

इस गुहा को 'कुम्भाखाडा' कहा जाता है। अगला भाग गिर गया है।

गुहा मंदिर क्र. स. 25

इसे 'जनवासा' कहते हैं। सभामण्डप की लम्बाई-चौड़ाई 112' × 67' है। इसमें चारों ओर उपासना-गृह हैं। आठ सघन खम्भों पर उठा हुआ प्रकोष्ठ आकर्षक है। छत पर उत्कीर्ण सूर्य मूर्ति प्रभावशाली है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 26

इसे 'ग्वालिन' गुहा कहते हैं। यह वैष्णव मंदिर है। गर्भगृह की लम्बाई-चौड़ाई 53' × 22' है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 27

यह गुहा दो कमरे के अवशेष के रूप में विद्यमान है।

गुहा मंदिर क्र. सं 27 (ए)

यह नष्ट हो चुका है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 28

इसे 'सीता की नहानी' के नाम से जाना जाता है। यह एक भव्य गुहा है और उत्कृष्ट शिल्पाकृतियों से परिपूर्ण है। इसका गर्भगृह 148 फीट चौड़ा, 149 फीट लम्बा और लगभग 18 फीट ऊँचा है। 26 खम्भों पर आधारित यह देवालय आकर्षक है। पहाड़ के प्रस्तर को उत्खनित करने के साथ अलग से भी पत्थर को तराशा गया है अंधकासुर वध एवं रावण द्वारा कैलास उठाने का दृश्य (पैनल) आकर्षक है

गुहा मंदिर क्र. सं. 29

स्थलानुक्रम से यह गुहा जैन गुहा समूह म सबसे पहली है लेकिन कालक्रम में यह सबसे बाद की मानी जाती है। इसे 'छोटा कैलास' कहा जाता है। इस गुहा का रचना-विन्यास कैलास मंदिर के मुख्य सभामण्डप से कुछ हद तक मिलता है। गुहा के अन्दर जैनशिल्प तथा बाहर शैवशिल्प दिखायी पड़ते हैं। इसमे तेईस तीर्थकरो के शिल्प उत्कीर्ण है। भगवान् महावीर की मूर्ति बहुत सुन्दर है। मुख्य प्रकोष्ठ के स्तम्भ अलकृत हैं।

गुहा मंदिर क्र. सं 29 (अ)

यह अपूर्ण गुहा है।

गुहा मंदिर क्र. सं. 30

यह एक सामान्य गुहा है। इसमें एक छोटा सभागृह एव मदिर है। दीवारो पर पार्श्वनाथ मातग और महावीर की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

गुहा मदिर क्र. सं. 31

इस गुहा को 'इंद्र सभा' कहा जाता है। यह दो तल वाला सघीय शैल-मदिर है। विशाल शिला-खण्ड को 100 फीट से अधिक गहराई तक काट कर दो तल्ली, एक तल्ली और कुछ छोटे-छोटे उपासना-गृहों का निर्माण किया गया है। सर्वप्रथम पाषाणोत्कीर्ण द्वार को पार कर लगभग 50 फीट लम्बे-चौड़े आँगन मे पहुँचते हैं। प्रवेश-द्वार के दाहिनी ओर हाथी की एक विशाल मूर्ति है और बायी ओर लगभग 30 फीट ऊँचा ध्वज या विजय-स्तम्भ है। आँगन के मध्य भाग मे द्रविड़ शैली में निर्मित एक भव्य मंदिर है जिसमें महावीर की मूर्ति स्थापित है। चैत्यालय का ऊपरी तल अतिशय आकर्षक 12 खम्भों पर आधारित है। यहाँ पार्श्वनाथ, महावीर एव लतावेष्ठित बाहुबली की उत्कृष्ट मूर्तिशिल्प उत्कीर्ण है। दोनों तलों में उत्कृष्ट शोभायुक्त शिल्प प्राप्त होते है।

यह शैल मंदिर कभी चित्रकारी से भरपूर रही होगी यह अवशिष्ट चित्राकनों से प्रमाणित होता है। इसके छत पर विभिन्न आलेखनों के साथ सर्वधर्म दर्शन से सम्बन्धित चित्र प्राप्त होते हैं। यहाँ कमल का आलेखन प्रभावपूर्ण है।

गुहा मंदिर क्र सं. 32

इस गुहा का नाम 'जगन्नाथ सभा' है। मूल योजना में यह 'इन्द्रसभा' की तरह ही खोदी गयी है किन्तु आकार-प्रकार में उससे छोटी है। यह भी दो तलवाला चैत्य है। द्वार का तोरण कलापूर्ण है। मंदिर के गर्भ-गृह मे सिंहासनस्थ महावीर की पद्मासन मूर्ति है। स्तम्भो का अलकरण प्रभावशाली है। यहाँ प्रचुर परिमाण मे सुन्दर मूर्तियाँ बनायी गयी हैं।

गुहा मंदिर क्र. सं. 33

इस जैन चैत्यालय का अधिकाश भाग नष्ट हो गया है। यहाँ की कुछ शिल्पाकृतियाँ बडी आकर्षक हैं विशेष रूप से सिद्धायिका का केशविन्यास एव मुद्रा प्रभावशाली है। गुहा साधारण जैन मठ-सी प्रतीत होती है।

यही से पाषाणोत्कीर्ण शैल-गृही मन्दिरों की मालिका का अन्त हो जाता है और समाप्त होती है पत्थरों को काट-काटकर बनायी गयी चैत्य एवं विहारों की परम्परा।

□□



5

चित्रकला के प्राचीन उल्लेख
(Painting in ancient literature)

प्राचीन भारतीय कला-साधको ने अपनी तपस्या, लगन और क्रियाशीलता से चित्रकला की जो उत्कृष्ट निधियाँ दी है उससे हम जहाँ विश्व में गौरवान्वित हुए हैं वही दूसरी ओर अपने प्राचीन साहित्य के अध्ययन एव अनुशीलन से यह भी पता चलता है कि हमारी चित्रकला की परम्परा कितनी पुरातन और गहरी है। भारत के पुरातन समाज और साहित्य मे ललित कलाओ के अन्तर्गत चित्रकला परम्परा की दृष्टि से बहुत उन्नत थी। गुप्तयुगीन जिस महान् कला समृद्धि को हम देखते हैं उसके सूत्र इसी युग में निर्मित हो चुके थे। इस युग के साहित्य मे प्राप्त चित्रकला सम्बन्धी वर्णनो और उल्लेखो को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि इस युग मे चित्रकला अपने भरे-पूरे और उन्नत रूप मे वर्तमान थी और भारत के निवासी इस कला मे पर्याप्त रूप से दक्ष ही न थे, बल्कि चित्रण उनके जीवन का अग बन गयी थी।

वैदिक युग की चित्रकला

वेद आर्यों का प्राचीनतम ग्रन्थ है और आर्य भारत के सप्तसिन्धु प्रदेश के निवासी थे और इसे देव निर्मित देश मानते थे। एक मंत्र मे सरस्वती को सम्बोधित करते हुए कहा गया है—''सरस्वती हमें धनधान्य से सम्पन्न करो, हमे अपने से दूर न करो, न अपने दुग्ध से वचित करो, हमारा सख्य और सत्कार स्वीकार करो, हम आपसे हटकर किसी अन्य देश मे न जायँ।'' वैसे तो आर्यों के मूल स्थान के बारे में अनेक भ्रमपूर्ण अटकलों का दिग्जाल फैला है लेकिन अब इन सबका निराकरण हो चुका है और यह सिद्ध हो गया है कि आर्यो का मूल देश भारत था और वे इसी सप्तसिन्धु (पश्चिमी भारत) प्रदेश के निवासी थे जिसकी एक प्रमुख नदी सरस्वती थी। इसी सिन्धु सरस्वती के प्रदेश में वेद का भाषाबद्ध स्वरूप विकसित हुआ। भारतीय धर्म और सस्कृति का परिपक्व रूप सर्वप्रथम वेद में ही दिखायी पडता है।

इस युग मे कला की आराधना आध्यात्मिक उन्नति के लिये की गयी और इस युग में प्राप्त जितने भी ग्रन्थ हैं उनमे कला के प्रतीकात्मक प्रतिमानो के द्वारा परमेश्वर की प्राप्ति एव आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग सुझाया गया है। वैदिक युग मे कला को विराट् सृष्टि का पर्याय मानकर, उसे सार्वभौमिक महत्त्व प्राप्त था।

ऋग्वेद की प्राचीनतम मंत्र संहिता की एक ऋचा (1-1-45) से ज्ञात होता है कि उस समय चमड़े पर चित्र अंकित करने का प्रचलन था। ऋग्वेद के कुछ अन्य मत्रों में यज्ञशालाओ की चौखटों पर द्वार देवियो के चित्र अंकित किये जाने का भी उल्लेख मिलता है। कुछ ऋचाओ में उषा देवी और रात्रि देवी की आकृतियाँ अकित करने के प्रमाण मिलते हैं।

महाकाव्य काल की चित्रकला

'रामायण' और 'महाभारत' भारतीय चित्रकला विषयक प्रभूत सामग्री प्रस्तुत करनेवाले प्रथम ग्रन्थ है। 'रामायण' और 'महाभारत' के समय (600-500 ई० पू०) तक चित्र, वास्तु एव स्थापत्य, कला के इन विभिन्न अगों का पूर्ण विकास हो चुका था। रामायण के समय का समाज कला के प्रति बड़ा निष्ठावान् था। रामायण मे अयोध्यावासियो का परिचय कलाविद् एव सौन्दर्य-प्रेमी के रूप मे हमे मिलता है। महामुनि ने राजा राम को शिल्प का ज्ञाता (वैहारिकाणां शिल्पा ज्ञाता) बताया है।

'रामायण' में दीवारो, कक्षो, रथो और राजभवनों पर चित्रांकित करने के सम्बन्ध मे प्रचुर प्रकरण मिलते हैं। रावण के पुष्पक विमान में दृष्टि और मन को सुख देनेवाले और आश्चर्य-चकित कर देनेवाले नाना भाँति के दृश्य अंकित थे; उसके कक्ष भागों में उसकी शोभा बढ़ाने-वाले अनेक बेल-बूटेदार चित्र अंकित थे (5 / 7 / 9)।

रावण की लंका मे सीता की खोज करते समय हनुमान् को एक चित्रशाला और चित्रो से सुसज्जित कई क्रीड़ा-गृह देखने को मिले थे। चित्र-सुशोभित कैकेयी के राज-प्रासाद (2/10/13) के वर्णन से कैकेयी की कलात्मक अभिरुचि का सहज परिचय मिल जाता है। राम के राज-प्रासाद में अनुपम भित्तिचित्र उत्कीर्णित थे (2/15/35)। चित्रकला के संबंध में यह भी अवगत होता है कि उस युग में हाथियों और रमणियो के कपोलों पर सुन्दर चित्र-रचना अंकित की जाती थी (3/15/15), (4/30/55)।

तत्कालीन शिल्प-विधान का श्रेष्ठ प्रसग अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर मिलता है जब राम ने अपनी सहधर्मिणी सीता की सुवर्ण-प्रतिमा का निर्माण कराया था। मय द्वारा (7/99/7) सीता को भ्रम में डालने के लिये रावण ने अपने विघजित्र नामक चित्रकार को राम का सिर और राम के धनुष की छद्म आकृति बनाने का आदेश दिया था। इस प्रकार रामायण में कला के प्रति अपूर्व निष्ठा जन-मानस में दिखायी पड़ती है। 'रामायण' की अपेक्षा 'महाभारत' मे शिल्प एवं कला पर बहुत ज्यादा नहीं कहा गया है फिर भी कहीं-कहीं चित्रकला का सुन्दर वर्णन देखने को मिलता है। युधिष्ठिर के सभागृह की दीवारों पर भाँति-भाँति के चित्र और उनमें अनेक पुतले अंकित थे। अन्य बहुत-से स्थानों में भ्रम में डाल देनेवाले चित्रों का वर्णन मिलता है। महाभारत (3/293/13) में कहा गया है कि सत्यवान को घोडे का बड़ा शौक था तथा वह मिट्टी के घोड़े बनाता था तथा दीवारो पर उनका चित्रांकन भी करता था इसीलिये बचपन में उसका नाम चित्राश्व पडा। महाभारत काल मे ऐसा प्रतीत होता है कि असुर (फारसवासी) इस कला में विशेष रूप से पटु थे।

पंचदशी का 'चित्रदीप' प्रकरण

विद्यारण्य मुनि कृत 'पंचदशी' वेदान्त दर्शन की महानतम कृति है जिसमें कला के आध्यात्मिक प्रतिमानो का गंभीर विवेचन किया गया है। प्रतीकात्मक शैली में लिखे 'पञ्चदशी' के 'चित्रदीप' नामक छठे प्रकरण में चित्रशास्त्र के विधानों के अनुसार ब्रह्म तत्त्व पर विचार किया गया है। इस प्रकार आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टि से भारतीय साहित्य में कला के अन्तःस्वरूपों का विवेचन उसकी उच्चता एव उपयोगिता का परिचायक है।

ग्रन्थकार ने वेदान्त दर्शन के गूढ सिद्धान्तों को जन सामान्य तक पहुँचाने के लिये चित्रकला को ही उपयुक्त समझा। इससे यह भलीभाँति विदित होता है कि तत्कालीन समाज में चित्रकला

को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था और इसके द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार सम्भव है इस पर विस्तार से विचार किया गया है। पंचदशी के रचनाकार का कथन है—रूप के मर्म को हम केवल ज्ञान-चक्षु द्वारा पहचान सकते हैं।

ननुज्ञानानि भिद्यन्तायाकारस्तु न भिद्यते।

जिस प्रकार पट चित्र की चार अवस्थाएँ बतायी गयी हैं उसी प्रकार परमात्मा की भी चार अवस्थाएँ होती है पट चित्र की चार अवस्थाएँ हैं— (1) धौत (2) धट्टित (3) लाछित और (4) रजित।

एक स्थान पर बताया गया है कि चित्रकार को चित्रांकन कि लिये उसी प्रकार चिन्तन, मनन और ध्यान की आवश्यकता होती है जिस प्रकार ब्रह्मध्यान के लिये साधक को।

अन्य प्राचीन ग्रन्थ जैसे अष्टाध्यायी, अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र, मेघदूत, रघुवश, कामसूत्र बृहत्सहिता, पुराण, कोश, कादम्बरी, हर्षचरित, दशकुमारचरित, कुट्टनीमत, तिलकमंजरी कथासरित्सागर, नैषधचरित आदि में चित्रकला का उल्लेख विभिन्न प्रकार से मिलता है। लेकिन भौतिक एवं सामाजिक दृष्टि से कला की क्या उपयोगिता है इस दृष्टि से वैदिक युग के विचारको ने कोई नयी बात नहीं बतायी।

पौराणिक युग की चित्रकला—भारतीय कला और चित्रकला की उन्नति के लिये पुराणो मे ही सबसे पहले विस्तार से विवेचन देखने को मिलता है। कला का सृजन य शास्त्रीय दृष्टि से कला के विभिन्न प्रश्नो पर नये दृष्टिकोण से पहले-पहल पौराणिक युग में ही विचार किया गया। प्राविधिक (टेक्निकल) दृष्टि से कला के अग-उपागो का प्रामाणिक विवेचन पुराणो में ही देखने को मिलता है। 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' का 'चित्रसूत्र' इस विषय की श्रेष्ठ रचना है। इसे देखकर भारत के अतीतकालीन कलात्मक गौरव का सहज ही स्मरण हो जाता है।

इसी प्रकार नग्नजित का 'चित्रलक्षण' तिब्बत से प्राप्त हुआ है और दूसरा 'चित्रलक्षण' केरल के श्रीकुमार कृत है इन दोनों से बृहत्तर भारत के कलात्मक वैभव और उसके विधि-विधान पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ये तीनों ग्रन्थ कला अध्येता के लिये बहुत उपयोगी हैं अतः इन पर विस्तार से अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण का 'चित्रसूत्रम्' प्रकरण

भारतीय चित्रकला की प्रौढ़ परम्परा को दिग्दर्शित करनेवाला विष्णुधर्मोत्तर पुराण ईसा की चौथी-पाँचवी शती की रचना मानी गयी है। इसके तृतीय खण्ड मे अध्याय 35 से लेकर अध्याय 43 तक 'चित्रसूत्रम्' प्रकरण है जिसमें चित्रकला का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। भारतीय चित्रकला साहित्य में चित्रकला के सम्बन्ध में जितना सुस्पष्ट एवं विस्तृत वर्णन चित्रसूत्रम् मे मिलता है उतना अन्यत्र नहीं मिलता। यद्यपि 'चित्रसूत्रम्' चित्रकला सम्बन्धी सर्वांगपूर्ण शास्त्र है फिर भी ग्रन्थकार का कथन है कि चित्रशास्त्र इतना विस्तृत है कि उसका लगातार सौ वर्षो तक वर्णन किया जाय तब भी वह समाप्त न होगा।

अशक्यो विस्तराद्वक्तुं बहुवर्षशतैरपि।

चित्रसूत्रम् भारतीय चित्रकला के विधि-विधानों एवं नियमो को जानने एवं समझने के लिये उत्तम ग्रन्थ है लेकिन चित्रसूत्रकार का कहना है कि चित्रसूत्र को भलीभाँति समझने के लिये पूर्व वर्णित नृत्यशास्त्र का अध्ययन कर लेना चाहिए क्योंकि नृत्य एवं चित्र दोनो के विषय समान हैं दोनों दृश्यकलाएँ हैं और भावाभिव्यक्ति अग प्रत्यग की भगिमाओं एव मुद्राओं में कई प्रकार से

साम्य है। जिस प्रकार नृत्य के लिये हस्तमुद्राएँ बतायी गयी हैं वैसे ही चित्र के लिये भी अपेक्षित हैं—

दृष्टयश्च तथा भावा अंगोपांगानि सर्वशः ।
कराश्च ये महानृत्ते पूर्वोक्ता नृपसत्तम ॥ 6 ॥
त एव चित्रे विज्ञेया नृत्त चित्रं परं मतम् ।
नृत्ते प्रमाणं येनोक्तं तत्प्रवक्ष्याम्यतः शृणु ॥7॥

अत में चित्रकला के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए चित्र-सूत्रकार का कथन है .—

कलानां प्रवरं चित्र धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
मांगल्यं प्रथमं ह्येतद् गृहे यत्र प्रतिष्ठितम् ॥38॥

(सभी कलाओं में चित्रकला सर्वश्रेष्ठ है और चित्रकला की साधना से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारो की प्राप्ति हो सकती है। जिस घर मे इसकी प्रतिष्ठा होती है वहाँ सब समय मगल होता है।)

चित्रकला की प्रतिष्ठा मे उसने इतना ही नही कहा गया है बल्कि चित्रकला के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए चित्र-सूत्रकार आगे कहता है—

यथा सुमेरुः प्रवरो नगानां यथाण्डजानां गरुडः प्रधानः ।
यथा नराणां प्रवर. क्षितीशस्तथा कलानामिह चित्रकल्पः ॥39॥

(जैसे पर्वतो में सुमेरु श्रेष्ठ है, पक्षियों मे गरुड प्रधान है और मनुष्यो में राजा उत्तम है उसी प्रकार कलाओ मे चित्रकला उत्कृष्ट है।)

सम्पूर्ण चित्रसूत्र प्रकरण नौ अध्यायों मे विभक्त है .— (1) आयाममान वर्णन (2) प्रमाण वर्णन (3) सामान्यमान वर्णन (4) प्रतिमालक्षण वर्णन (5) क्षयवृद्धि (6) रंगव्यतिकर (7) वर्तना (8) रूप निर्माण और (9) शृंगारादि भावकथन ।

महामुनि मार्कण्डेय राजा वज्र को चित्र-सूत्र (चित्रकला या चित्र-निर्माण सम्बन्धी नियम एवं प्रकार) को बताते हुए कहते हैं कि "पूर्वकाल मे उर्वशी की सृष्टि करते हुए नारायणमुनि ने लोगो के हित कामना से चित्र-सूत्र का निरूपण किया था। निकट आयी हुई सुर-सुन्दरियो को भुलावा देने के लिये महामुनि ने अति सुगन्धित आम्र-रस लेकर पृथ्वी पर एक श्रेष्ठ रूपसी का चित्र बनाया। चित्र मे वह रूपसी लावण्यवती दिव्य अप्सरा दिखायी पड़ने लगी जिसे देखकर देवलोक की नारियाँ लज्जित हो गयीं इस प्रकार महामुनि ने चित्रकला के लक्षणों (विधि-विधानों) को ध्यान में रखकर चित्र-निर्माण किया और उसे विश्व के नियन्ता को सौंप दिया।"

इस कथन से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि चित्रसूत्रम् के बहुत पहले से ही चित्रकला के विधि-विधानो पर विचार होने लगा था और आदिकालीन मनीषी कला-नियमो से भली-भाँति अवगत थे।

चित्रसूत्र अध्याय 35 से लेकर 43 तक (कुल नौ अध्याय) का कला नियम एव विधि-विधान इस प्रकार है —

आयाममान वर्णन

चित्रसूत्र में सर्वप्रथम आयामोच्छ्रायमान अर्थात् प्रमाण (नाप) का विशद वर्णन किया गया है। चित्र में स्त्री पुरुष की ऊँचाई तथा अंग प्रत्यग के प्रमाण को विस्तार से बताया गया है

ξ

नृप श्रेष्ठ ! दृष्टि, भाव-भंगिमा और हस्त मुद्रा महानृत्य के सम्बन्ध मे इसके पूर्व बताया वैसे ही चित्र के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए क्योंकि त्रैलोक्य (तीनो लोको) का जिस प्रकार नृत्य में होता है वैसे ही चित्र मे भी होता है। नृत्य और चित्र दोनो ही मझे जाते हैं। इसके बाद मैं जिस प्रकार नृत्य में प्रमाण की परिकल्पना की गयी है उसी त्र के प्रमाण को भी समझाऊँगा।' उसे सुनो।

भद्र, मालव्य, रुचक तथा शशक ये पाँच प्रकार के पुरुष कहे गये है। मैं उनके लक्षण बताऊँगा। इन सबकी लम्बाई-चौडाई का अनुपात, प्रमाण से समझना चाहिए। हस ऊँचाई 108 अंगुल, भद्र पुरुष की ऊँचाई 106 अंगुल, मालव्य पुरुष की ऊँचाई 104 रुचक की ऊँचाई 100 अगुल और शशक की ऊँचाई 90 अंगुल होती है।

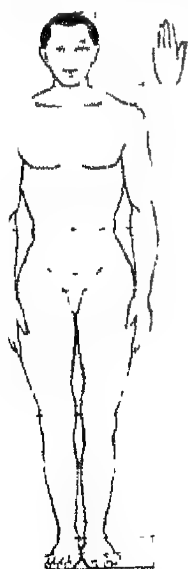
अगुल के विस्तार को ताल[1] कहते हैं (हथेली का पूर्ण विस्तार गॉठ तक)

सूत्रकार में हस पुरुष के विविध अंगों का माप इस प्रकार बताया गया है—

से ऊपर गॉठ (गुल्फ) तक 3 अंगुल, उसके ऊपर अंगुल पूरे पैर तक गया वहाँ से घुटने ाल, इतनी ही ऊँची जंघा (लिगेन्द्रिय तक), मेढ से नाभि 1 ताल, नाभि से सीना और कठ तक 1-1 ताल, गले की लम्बाई 4 अंगुल और मुख (चेहरे) की लम्बाई 1 ताल से सिर के शीर्ष तक 2 अगुल होता है और इसी प्रमाण के अनुसार उनका चित्र बनाना लिगेन्द्रिय बीच में अंकित करनी चाहिए। हथेली 1 ताल और बाहु 17 अंगुल होना

के अनुसार दूसरे पुरुषों की लम्बाई का प्रमाण ज्ञात कर लेना चाहिए।

हस पुरुष का 108 अंगुल (नवताल) में बनी आकृति का प्रमाण



अवयव	प्रमाण
शीर्ष से माथे तक	2 अगुल
माथे से ठुड्डी तक (चेहरा) (एक ताल)	12 अगुल
ग्रीवा (गर्दन)	4 अगुल
वक्ष	12 अंगुल
सीने से नाभि तक (पेट)	12 अगुल
नाभि से मेढ़ (लिगेन्द्रिय) तक	12 अगुल
मेढ़ से घुटने तक	24 अगुल
घुटने से पैर तक	24 अगुल
गाँठ	3 अगुल
गाँठ से नीचे (एँड़ी तक)	3 अगुल
कुल योग =	108 अगुल

ान मे प्रयुक्त मान की सबसे सूक्ष्म इकाई परमाणु मानी गयी है। इससे ऊँची इकाइयाँ इस प्रकार हे— 'अष्टौ णवो रथचक्रविप्रुद्। अष्टौ लिक्षा। ता अष्टौ यूकामध्यः। ते अष्टौ यवमध्य । अष्टौ यवमध्या अंगुलम् ।' शास्त्र-2,20,2-6) अर्थात्— 8 परमाणु=1 रथरेणु,8 रथरेणु =1 लिक्षा, 8 लिक्षा=1 यूकामध्य, 8 यूकामध्य यवमध्य, 8 यवमध्य = 1 अगुल। (12 अगुल = 1 ताल)।

त्र में यवमध्य या यव से कम मान योजना का कोई उल्लेख नहीं है और यह चित्रकला की दृष्टि मे वहारिक भी है

प्रमाण वर्णन

प्रमाण वर्णन मे हंस पुरुष के प्रत्येक अंग के विभागों का उल्लेख मिलता है। इसका मस्तक 12 अंगुल विस्तृत, ललाट 4 अंगुल ऊँचा और 8 अंगुल चौड़ा, कनपटियाँ 4 अंगुल, कपोल 2 अंगुल चौडे और 5 अंगुल लम्बे, ठुड्डी 4 अंगुल, कान 2 अंगुल चौड़े और 4 अंगुल लम्बे, कान की बीच की रन्ध्र 1 अंगुल विस्तृत, नासिका 4 अंगुल लम्बी, उसका अग्र भाग 2 अगुल ऊँचा तथा 3 अंगुल लम्बा, नासापुट 1 अंगुल चौडे और 2 अंगुल घेरवाले, अधर 1 अगुल और चिबुक 2 अगुल, नेत्र 3 अंगुल लम्बे, उसका काला भाग 1/3 और पुतली 1/5, भौहें आधी अगुल चौड़ी और 4 अंगुल लम्बी, दोनों भौंहों के बीच का अन्तर 2 अंगुल, आँख और कान के छिद्र का अंतर 4 अंगुल, ग्रीवा 10 अंगुल चौडी, वक्षःस्थल 21 अंगुल चौडा, दोनों छातियों के बीच का अन्तर 16 अगुल, छाती जत्रु हंसली का अन्तर 6 अंगुल, बाहुमूल का घेरा 16 अगुल और अगले भाग का घेरा 12 अगुल, हथेली 7 अंगुल लम्बी 5 अंगुल चौड़ी, मध्यमा उँगली 5 अंगुल लम्बी, तर्जनी और अनामिका 4-4 अगुल और कनिष्ठा तथा अँगूठा 3-3 अंगुल हो, अंगूठे में दो पर्व (मोड) तथा बाकी चारों उँगलियो में 3-3 पर्व समान दूरी पर, पर्व के आधी दूरी के विस्तार से नख, पेट का घेरा 42 अंगुल, कटि का विस्तार 18 अगुल और उसका घेरा 44 अंगुल, अंडकोश 4 अंगुल विस्तृत, लिंगेन्द्रिय 6 अगुल, जानु का विस्तार 8 अंगुल, जंघा के अग्रभाग का घेरा 12 अगुल, पैर 5 उँगलियों वाले हों। पैर का घेरा 14 अंगुल, लम्बाई 12 अंगुल और विस्तार 6 अगुल, पैर का अंगूठा 3 अंगुल उसी के बराबर तर्जनी शेष उँगलियाँ क्रमशः 1/8 भाग कम होती जायँगी। अँगूठे का नख 3/4 अंगुल, उसके बगल वाली उँगली का नख आधा तथा बाकी क्रम से 1/8 कम होते जायेंगे। एँड़ी 4 अगुल ऊँच होनी चाहिए। यह हस पुरुष का प्रमाण है और इसके और भी प्रमाण होते हैं।

चित्रसूत्रकार का कथन है कि इसी प्रकार अन्य पुरुषो के प्रमाण की संगतियुक्त कल्पना कर लेनी चाहिए।

इसी अध्याय में पाँच प्रकार के पुरुषों की विशेषताएँ भी निरूपित की गयी हैं।

हसपुरुष सुन्दर नेत्रवाला, चन्द्रमा के समान गौर-वर्णवाला, नागराज (अथवा ऐरावत की सूँड़) के समान भुजावाला, मनोहर कटिवाला, सुन्दर मुखवाला, हस के समान गतिवाला और बलशाली होता है।

भद्र पुरुष रोम शून्य कपोलवाला, गजगामी, पुष्ट (गोल) बाहुवाला, अतीव बुद्धिमान् और उसके नेत्र कमल के समान होते हैं।

मालव्य पुरुष मूँग के समान श्यामवर्ण, क्षीण कटिवाला, सुन्दर शरीरवाला, आजानबाहु वाला, पुष्ट स्कन्धवाला, लम्बी नाकवाला और विशाल हनु (ठुड्डी) वाला होता है।

रुचक पुरुष शरद ऋतु के चन्द्र के समान गौरवर्ण, शख जैसी गरदनवाला, महाबुद्धिमान् सत्यवादी, दृढ़ तथा बलवान् होता है।

शशक पुरुष लाली लिये हुए श्याम तथा किंचित् चितकबरे रंगवाला, भरे गालवाला, रतनार नेत्रोंवाला और चतुर होता है।

सामान्यमान वर्णन

चित्रसूत्रकार इस अध्याय में मार्कण्डेय मुनि के माध्यम से कहता है कि अंग-प्रत्यंग के जिस मान के अनुसार पाँच प्रकार के पुरुष बताये गये हैं उसी प्रकार पाँच तरह की स्त्रियाँ भी समझ

लेना चाहिए प्रत्येक स्त्री को अपने पुरुष की समीप-वर्तिनी बनाना चाहिए। स्त्री की कमर मनुष्य से दो अंगुल कम और नितम्ब चार अगुल अधिक बनाना चाहिए। उर के प्रमाणानुसार सुन्दर स्तन बनाने चाहिए।

राजाओं को महापुरुषो के लक्षणो से सम्पन्न कर देना चाहिए। चक्रवर्ती राजा के हाथ-पॉव सुगठित बनाना चाहिए और उनके भौहो के बीच शुभ मकरी अकित कर देना चाहिए। उनके हाथों में तीन सुन्दर रेखाएँ अकित करनी चाहिए। उनके हाथो में चन्द्र खण्ड के समान तेज धारवाले शस्त्र भी अकित करना चाहिए। उनके सूक्ष्म अग भगिमाओं के अनुसार ही उनकी केशराशि अपनी स्वय की चिकनाई से सुशोभित घने नील बादल के समान अंकित करना शुभकारी होता है।

कुन्तल (खुले एव छिटके हुए), दक्षिणावर्त (दाहिनी ओर घुमावदार), तरगित (लहरयुक्त वायु से प्रदोलित), सिंहकेशर (गर्दन तक के केश), वर्धर (छितरे हुए) तथा जूट-टसर (गुँथे हुए) ये विभिन्न केशो के प्रकार है।

स्त्री एवं पुरुष दोनों के नेत्र प्रमाणानुसार अंकित करना चाहिए। नेत्र पाँच प्रकार के होते हैं—

1. **चापाकार (धनुषाकार)**— अर्द्धउन्मीलित नीचे जमीन की ओर देखनेवाली अथवा योगी पुरुष की आँखें चापाकार चित्रित करनी चाहिए।

2. **मत्स्योदराकृत (मकराकृत)**— यह नेत्र 4 यव (ऊँचाई) के बराबर होती है। नारियो एव कामियो के नेत्र मत्स्योदराकृत (मछली के पेट के आकार का) चित्रित करना चाहिए।

3. **उत्पलपत्र (नील कमल-पत्र के समान)**—इसका आकार 6 यव होता है। निर्विकार अथवा सात्त्विक व्यक्ति के नेत्र इसी प्रकार चित्रित करना चाहिए।

4. **पद्मपत्राकार (कमल-पत्र के समान)**—यह नेत्र 9 यव का होता है। डरे अथवा रोते हुए व्यक्ति के नेत्र पद्म पत्र के समान अकित किये जाते हैं।

5. **शशाकार (खरगोश की आँख)**— यह नेत्र 10 यव का होता है। कुपित अथवा व्यथित व्यक्ति की आँखें शशाकार अंकित की जाती हैं।

ऋषियों, पितरों तथा देवताओ के चित्र इस प्रकार तेजस्वी बनाने चाहिए कि उनके तेज के समक्ष दूसरे का तेज फीका पड़ जाय। उनके आभूषणों की कान्ति उनके व्यक्तित्व की कान्ति के अनुरूप ही चित्रित किया जाना चाहिए।

चित्रकार को सम्यक् रूप से विचार कर एवं स्वाध्याय के द्वारा जैसा कि अन्य स्थानो पर उल्लिखित है[1] इस अनिन्दित प्रमाण के अनुसार जहाँ पर्याप्त प्रकाश हो वहाँ समतल चित्रभूमि पर सरल एवं कोमल रेखाओ के द्वारा चित्र बनाना चाहिए।

प्रतिमा लक्षण वर्णन

इस अध्याय में आकृति (प्रतिमा) के विविध लक्षणो का वर्णन किया गया है। चित्रसूत्रकार का कथन है कि शास्त्रविहित रीति से सर्व-लक्षण-सम्पन्न चित्र ही बनाना चाहिए। ऐसे चित्र कल्याणकारी, सुखदायी तथा सर्वमंगलकारक होते हैं।

---

1. यहाँ स्पष्ट रूप से आभासित होता है कि इसके पूर्व चित्र निर्माण सम्बन्धी विधि-विधानो अनेक ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी

देव आकृति की आँखें नीलकमल के समान, कोर लाल, पुतली काली, नेत्र की बरौनी बडी और विकसित अंकित करनी चाहिए जिससे प्रसन्नता एव सुन्दरता आभासित हो। दोनों नेत्र बराबर, गोदुग्ध के समान उज्ज्वल, स्निग्ध, बरौनी थोडी वक्र, काली पुतली से युक्त, विकसित, कमल–पत्र के कोर से अन्तवाले और श्री-सुखप्रद एवं दीर्घ होने चाहिए।

मुख चौकोर, भरा हुआ, प्रसन्न एव शुभलक्षणयुक्त अकित करना चाहिए। वह वक्र, कोण एव विकाररहित होना चाहिए। सभी (प्रजा) का कल्याण चाहनेवाले चित्रकार को देवताओ के चित्र बनाते समय दीर्घ मण्डल, चन्द्राकार तथा त्रिकोण आदि रेखाओं (रूपों) का परित्याग करना चाहिए।

देवताओ को हस के प्रमाण के अनुसार बनाना चाहिए। उनकी आँखों की बरौनियो तथा भौंहो पर लोम चित्रित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उनके शेष गात्र (शरीर) को लोभरहित दिखाना चाहिए तथा उन्हें 16 वर्ष के वय का अंकित करना चाहिए। उन्हें हमेशा प्रसन्न बदन एवं स्मित नेत्रवाले अंकित करना चाहिए। वे मुकुट, कुण्डल, हार, केयूर (भुजबन्द) और अंगद (बाजूबन्द) से भूषित किये जाँय तथा मगलसूचक पुष्प-मालाओं को धारण करनेवाले उन देवताओं को करधनी (श्रेणी सूत्र) तथा पैरो को आभूषण से युक्त बनाना चाहिए। वे यज्ञोपवीत मस्तक के आभूषण धारण किये हुए हों तथा कमर का सुन्दर वस्त्र जानु से नीचे लटकता हुआ चित्रित करना चाहिए। उनके बाँयें जानु (घुटना) पर दाहिना जानु दिखाना चाहिए। उनका रेशमी वस्त्र मनोहर होना चाहिए उनके सिर पर प्रमाण के अनुसार वृत्ताकार प्रभामण्डल दिखाना चाहिए जो देवताओं के आभा के अनुकूल हो।

आकृति की दृष्टि न ऊपर हो न नीचे हो और न तिरछी हो। इसी प्रकार हीन (छोटी), अधिक (बहुत बडी), दीन, कुपित तथा रूखी भी न हो। क्योंकि उनकी ऊर्ध्व दृष्टि मरण देने-वाली, अधोदृष्टि शोक देनेवाली, तिरछी दृष्टि धनहानि करनेवाली तथा हीन दृष्टि मृत्यु देनेवाली होती है। अधिक एवं दीन दृष्टि शोक की जननी, रुक्षा दृष्टि धन को नाश करनेवाली तथा क्रुद्धा दृष्टि भय को बढानेवाली होती है। आकृति न तो क्षीण पेटवाली हो और न बडे उदरवाली हो और न ही क्षतयुक्त बनाना चाहिए। वह न कम प्रमाण की हो न अधिक की और उसे रुक्षवर्ण का भी न होना चाहिए। उसका मुखमण्डल फैला न हो और न ही नीचे की ओर झुका हो। प्रमाण से उसका कोई अग हीन न हो और न ही अधिक हो क्योंकि क्षीण पेटवाली प्रतिमा से भूख का भय होता है और अधिक पेटवाली से भरण का भय रहता है। इसी प्रकार कटी–फटी आकृति भी मरण का भय उत्पन्न करती है तथा प्रमाण से छोटी अंगवाली आकृति धन का विनाश करती है। अधिक प्रमाणवाले चित्र शोक उत्पन्न करते हैं और रूखे वर्णवाली आकृति भय देती है। चित्र संयोजन में विवृत्त (फैली हुई) आकृति कुलनाशक; प्राच्याभा (पूर्व अर्थात् दाहिने ओर की तरफ बनी आकृति) धननाश का हेतु, दक्षिण की ओर (अर्थात् नीचे की ओर) मृत्युकारक, पश्चिम (अर्थात् बायीं ओर) का आकृति सयोजन पुत्रनाशक तथा उत्तराभिमुख (ऊपर की ओर) भयवृद्धि देनेवाला होता है। इसी प्रकार मान में कम आकृति नाश की हेतु तथा अधिक मानवाली आकृति देश का नाश करनेवाली होती है।

रुक्ष आकृति मरण देनेवाली और क्रुद्ध रूप नाश करनेवाली होती है। मान में कम तथा लक्षणहीन आकृति (प्रतिमा) मे देवता लोग श्रेष्ठ लोगों द्वारा आवाहित होने पर भी प्रवेश नही करते और उसमें पिशाच, दैत्य, दानव नित्य प्रवेश करते हैं अत: सब प्रकार के प्रयत्नो से प्रतिमा (आकृति) को प्रमाणहीन नहीं होने देना चाहिए

चित्र के सभी लक्षणों से युक्त आकृति सदैव प्रशंसनीय होती है और वह आयु, यश और धन-धान्य की वृद्धि करनेवाली होती है। वही लक्षणों से हीन धन-धान्य को नष्ट कर देती है।

हे राजन् ! देवताओं का आकार सदैव शोभायुक्त बनाना चाहिए तथा उनकी चाल वृष, हाथी, सिंह और हंस के समान होनी चाहिए।

जो चित्र सभी लक्षणों से युक्त होता है उसकी प्रशंसा सभी देशों के पालनकर्ता वसुन्धरापति (ईश्वर) भी करते हैं। इसलिये चित्रकार को प्रयत्नपूर्वक लक्षणयुक्त प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए।

क्षयवृद्धि

इस अध्याय में अंग-प्रत्यंग के मान को ध्यान में रखते हुए कब और कहाँ (किस मुद्रा या भंगिमा में) आकृति के मान में कमी करनी चाहिए तथा कहाँ वृद्धि करनी चाहिए इसकी विस्तृत विवेचना की गयी है। इस प्रकार क्षयवृद्धि की योजना से चित्रकार उत्कृष्ट चित्रण में सक्षम होता है क्योंकि प्रमाणहीन चित्र समय, भाव और जनरुचि की विभिन्नता के कारण उचित रूप से समादृत नहीं हो पाता। इसलिये चित्रण में मान के साथ क्षयवृद्धि का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा कि शुभ आकार और विहार (भंगिमा) सहित अनेक वर्ण धारण करनेवाले रूपों के नौ स्थान (भेद) का वर्णन क्रम से सुनिये। इनके नाम इस प्रकार हैं :—

1. ऋज्वागत 2. अनृजु 3. साँचीकृत 4. अर्द्ध विलोचन 5. पार्श्वागत 6. गण्ड परावृत्त 7. पृष्ठागत 8. पुरावृत्त और 9. समानतः।

चित्र में ये नौ स्थान अनेक भेदों सहित होते हैं प्रत्येक का लक्षण इस प्रकार है—

1. ऋज्वागत (सामने का आकार) इसका चित्रण सामने से किया जाता है। उसके माप और गुण स्पष्ट होने चाहिए। वह सब प्रकार से पूर्ण, सुन्दर अंगोंवाला, चिकना, निर्मल एवं सुसज्जित हो। आकृति शुद्ध और मधुर प्रतीत हो तथा रेखाएँ स्पष्ट एवं संस्कारगत हों। इस प्रकार क्षीण गात्रवाला पृष्ठभाग सीधा हो। उसका मुख, स्कन्धदेश एवं उदर अक्षीण (मांसल) हो। किन्तु कटि, स्कन्ध भाग और उर प्रदेश को क्षीण बनावे। नासापुट, अधर और ओठ बुद्धिमानी के साथ चौथाई भाग क्षीण कर देना चाहिए। शरीर के अन्य भागों को एक तिहाई क्षीण करे। चित्रकला में इस प्रकार के कांता (अनुपम सौन्दर्ययुक्त) रूप का श्रेष्ठ स्थान है जो स्थान लम्भो (रूप भेद) को व्यक्त करता है। यही नाम अनेक उपकरण से सम्पन्न हो ऋज्वागत कहलाता है।

2. अनृजु (पैर की भंगिमा में लोच) आधारगत स्थिति के कारण भंगिमा में थोड़ा लोच होता है। इसके रूप को नयनाभिराम, सुन्दर (गोलाईयुक्त), गठीला बदन, सुकुमार, चारों भागों में कुछ क्षीण, सर्वाङ्ग सुन्दर चित्रित करना चाहिए। उसकी भौंह, ललाट और नासिका का अग्रभाग प्रमाण से आधे दिखाये जाँय। आँखें अर्द्धनिमीलित (अर्द्धचन्द्राकार), भौंह की रेखाएँ एक कला (चन्द्रकला) लुप्त (कम) बनानी चाहिए तथा उसका अंकन स्निग्ध (कोमल) रेखाओं द्वारा होना चाहिए जो न बहुत छायादार हो न बहुत काला। ऐसा चित्र अनृजु कहा गया है।

3. साँचीकृत (ऊर्ध्वमुखी)—उपर्युक्त रूप में यदि मनुष्याकृति की मुख-मुद्रा आकाश की ओर लक्ष्य कर बनाया जाय तो वह साँचीकृत कहा जाता है

4. **अर्द्धविलोचन** (आगे झुका हुआ) चेहरे पर आधी आँख तथा भ्रू लुप्तप्राय हो। इस भंगिमा में ललाट ही प्रधान प्रतीत हो। कपोल मात्र आधा ही दिखे तथा शरीर का ऊपरी भाग कम दृष्टिगत हो। कण्ठ रेखा आधा एवं हनु यत्मात्र कम हो। छाती का आधा भाग मुख के नीचे छिपा हुआ दिखायी पड़े। शेष आधी दूरी मुख और नाभि के बीच रखा जाय। कटि का आधा भाग ही शेष रहे तथा उसके बाद सब-कुछ दिखायी पड़े। इस प्रकार शरीर का ऊपरी भाग आधे प्रमाण का ही दिखाया जाय।

5. **पार्श्वागत** (शरीर के बगल से आधे भाग का चित्रण)—इस प्रकार के अंकन को छायागता (दीवाल या पर्दे पर दिखायी पड़नेवाली छाया) भी कहते हैं। इस प्रकार के चित्रण में शरीर का एक पार्श्व चाहे वह दायां हो या बायां दिखाया जाता है। आरे से ललाट के मध्य से (शरीर को) काट दिया जाय तो (चेहरे का) एक आँख, एक भौं, एक कान, आधी ठुड्डी और आधे सिर के बाल दिखेंगे किन्तु सम्पूर्ण अंग तथा अंग की गति दृष्टिगत भाग में प्रविष्ट हो जाता है (अर्थात् शरीर का आधा भाग दृष्टिगत होने पर भी पूर्णता का बोध होता है)। इस प्रकार के चित्रण को, मान, लावण्य, माधुर्यादि गुणों से युक्त करना चाहिए। इसे भित्तिक (भित्ति पर पड़ने-वाली छाया) नाम से भी अभिहित करते हैं।

6. **गण्डपरावृत्त** (थोड़ी घूमी हुई आकृति)—जिस प्रकार क्रोधावस्था में कण्ठ भाग से मुख कुछ टेढ़ा हो घूम जाता है उसी भाँति इसे (सम्पूर्ण शरीर) घूमा हुआ दिखाना चाहिए। इसे बाहु, कपोल तथा ललाट से कुछ कला (भंगिमा) क्षय प्राप्त (घूमा हुआ) चित्रित करना चाहिए। बाहु, छाती तथा कटि भाग कम प्रदर्शित करना चाहिए तथा नीचे के भाग को दो कला क्षीण दिखाना चाहिए। इस प्रकार अनुरूप प्रमाण के द्वारा चित्रित एवं बहुत अधिक तीक्ष्ण (घुमाव) न दिखने-वाली आकृति को गण्डपरावृत्त कहा जाता है।

7. **पृष्ठागत** (शरीर के पृष्ठ भाग (पीठ) का दो तिहाई चित्रण)—जो शरीर पीछे से सुन्दर दिखायी पड़े, घुमावदार भौंह का मात्र आभास हो तथा शरीर के संधि भाग को सम्पूर्ण दिखाया जाय। जिस आकृति में एक आँख का केवल बाहरी छोर दिखे, कपोल एवं पेट के भाग को भी थोड़ा दिखाया जाय तथा बाकी भाग पार्श्व (पीछे से) दिखायी पड़े। इस प्रकार जो आकृति बनायी जाय वह सुस्थिर और दृष्टि को आकर्षित करनेवाली होनी चाहिए। इसे हीन-मान (कम माप) के अनुसार लावण्य, माधुर्य आदि गुणों से युक्त चित्रित करना चाहिए। इस प्रकार का सुन्दर चित्रण पृष्ठागत नाम से जाना जाता है।

8. **परिवृत्त** (कमर से ऊपर घूमा हुआ)—जिस आकृति में कमर से ऊपर का भाग घूमा हुआ चित्रित किया जाय उसे परिवृत्त कहते हैं। घुमाव के कारण मुख की तरफ आधे भाग में शक्ति और सामर्थ्य (ऐश्वर्य) का भाव हो तथा अधोभाग में गहरी छाया दिखायी जाय जो ग्राम्य स्थिति (सहजरूप) में हो। मध्य भाग को इस प्रकार चित्रित करना चाहिए कि वह नेत्र रम्य हो तथा योग को विलोपित करनेवाला हो। हे नरेश्वर! परिवृत्त आकृति का चित्रण केवल विज्ञ (कुशल) चित्रकार ही कर सकता है।

9. **समानतः** (शरीर के पृष्ठभाग का पूर्ण अंकन)—इस प्रकार के चित्रण में नितम्ब भाग सम्पूर्ण अंकित किया जाता है। नीचे जुड़े हुए पद दिखायें जायँ। शरीर के ऊपरी भाग को क्षीण बनाया जाय तथा कटि भाग को उसी प्रकार क्षीण एवं आकर्षक दिखाया जाय। पैर की उँगलियाँ नीचे लुप्त हों लेकिन शेष पाद तल दिखायी पड़े। यह भाग भरा हुआ और देखने में सुन्दर हो।

आकृति की भुजाएँ दृश्य हों तथा कन्धे के पीछे से मुख दिखायी पडता हो। जघा की एक ओर का भाग कम दिखायी दे ऐसे चित्रण को समानत: कहते है।

इस प्रकार चित्रित किये जाने योग्य नौ स्थान श्रेष्ठ हैं। इन नौ स्थानों के अतिरिक्त इनके बहुत-से विकार (परिवर्तन) हो सकते हैं जो बुद्धि के तारतम्य से समझे जा सकते हैं। ये नवो स्थान सभी भावों के लिये हैं। इसके अतिरिक्त और कोई स्थान नहीं है। हे अनघ। चराचर। जीवलोको मे धूमकर मैंने यह पता लगा लिया है।

रंगव्यतिकर

इस अध्याय मे भित्ति चित्रण के लिये भित्ति निर्माण तथा तूलिका द्वारा उक्त दीवार पर चित्र बनाने के लिये उपयुक्त रंगों को किस प्रकार तैयार किया जाय, उनका मिश्रण एवं चुवाव कैसे किया जाय इस पर विस्तार से विचार किया गया है। चित्र रचना में वर्ण-विन्यास सबसे कठिन साधना कही गयी है अत: चित्रसूत्रकार ने इस पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

तीन प्रकार के ईंटों के चूर्ण को तीन भाग मे रखकर उसमे एक तिहाई (1/3) भाग मिट्टी मिलाकर गूगुल, मधुच्छिष्ट (मोम) मधुक (महुआ) मुद्ग (मूँग) गुड़ और कुसुम के फूल को बराबर भागवाले तेल में मिला लें फिर उसमें आग पर पकाया हुआ एक तिहाई चूना, दो अश बेल का गूदा, मषक और कच डालकर बालू का अंश उसी अनुसार मिलावे। इन सभी सामग्रियो को साफ पानी मे एक माह तक भिगोवें। इस प्रकार एक महीने में तैयार हुए मृदु पदार्थ को सावधानी से निकालकर सूखी दीवार पर लेप (प्लास्टर) करें। लेप को दीवार पर इस प्रकार लगायें कि वह चिकना हो, बराबर लगे, कहीं मोटा-पतला न हो और वह दृढ़ता से दीवार को पकड ले।

इस प्रकार लेपित (प्लास्टर की हुई) दीवार जब सूख जाय तो शाल वृक्ष के रस तथा तेल से मिश्रित मिट्टीवाले चिकने मज्जन (पदार्थ) से उसे और चिकना करना चाहिए। तदन्तर बार-बार दूध से उसे सिक्त (भिगोकर) हल्के हाथो से रगडकर साफ करे और उसे सुखा ले। इस प्रकार तैयार हुई दीवार (प्लास्टर किया हुआ) सौ वर्षों में भी कभी खराब नहीं होती है।

इसके अतिरिक्त एक या दो रगो को लेप में मिलाकर चित्र के विषय के अनुरूप रगीन चित्र-भूमि तैयार की जा सकती है।

चित्र सूख जाने पर प्रशस्त तिथि विशेष रूप से चित्र योग में श्वेत वस्त्र धारण कर आत्मजित, गुरु प्रिय (कलाकार) पूर्वाभिमुखी होकर, इष्ट देवताओ का ध्यान करते हुए तथा चित्रकला के जाननेवाले गुरुओं (रूपविदों) एवं श्रेष्ठ जनों को प्रणाम करके चित्र बनाना प्रारम्भ करे। श्वेत चित्रभूमि पर गहरे रंग की तूलिका से पूर्वोक्त प्रमाण एवं स्थान (अन्तराल) के अनुसार विद्वान् चित्रकार चित्रण कार्य करे। इसके बाद यथास्थान उपयुक्त रंग भरना चाहिए। उसकी छवि गौर एवं श्याम (कण्ट्रास्ट अथवा लाइट-शेड) होनी चाहिए। इस छवि का लक्षण विस्तार से पहले ही बताया जा चुका है।

मूल रंग पाँच कहे गये हैं, सफेद, पीला, लाल (रक्तोमत:)[1] नीला व काला। इसके अवान्तर भेद तो सैकडो है। (चित्रकार) चित्र के भाव एवं परिकल्पना के अनुसार अपनी बुद्धि से सैकडो हजारो रंग बनाकर प्रयुक्त कर सकता है।

1 कहीं कहीं रक्तोमत: के स्थान पर विलोमत: लिखा है जो सही अर्थ नहीं देता

चित्रसूत्र में आगे अनेक वर्णों के बनाने की विधि का वर्णन मिलता है।

वर्तना

इस अध्याय मे चित्रों के भेद एव उनके गुण-दोषो की विवेचना की गयी है।

चित्र चार प्रकार के होते हैं— 1 सत्य, 2 वैणिक, 3 नागर एव 4 मिश्र।

1. **सत्य चित्र** उसको कहते हैं जिसमे लोक (यथार्थ जगत्) की समानता हो। दीर्घ अंग, उचित मान, सुकुमार तथा सुभूमि (उत्कृष्ट चित्र-भूमि) पर बनाया गया हो।

2. **वैणिक चित्र** उसे कहते है जो चारों ओर से भलीभाँति परिपूर्ण हो, उसका प्रमाण न अधिक हो और न कम हो और सम भूमि पर उसे बनाया जाय।

3. **नागर चित्र** उसे कहते हैं जो दृढ भूमि पर बना हुआ सर्वांग सुन्दर, वर्तुलाकार (छाया-प्रकाश द्वारा त्रियामी प्रभाव उत्पन्न करनेवाला) और न बहुत बडा हो और न ही वह भद्दा हो। इसे हल्के पुष्प-मालाओं और आभूषणों से सुसज्जित किया जाय।

4. **मिश्र चित्र** उसे कहते है जिसमें उपर्युक्त तीनों भेदों के लक्षण पाये जाते हैं।

चित्र मे वर्तना (छाया प्रदर्शन) परदाज के लिये तीन प्रकार की रेखाएँ कहीं गयी हैं। पत्रज, ऐरिक, और बिन्दुज ।

1. **पत्र वर्तना** (खतपरताज) की रेखाएँ पत्र की तरह घूमी हुई होती हैं।

2. **ऐरिक वर्तना** (धुँआधार परदाज) की रेखाएँ अत्यन्त सूक्ष्म होती हैं।

3. **बिन्दुज वर्तना** (दानापरदाज) को स्तम्भनायुक्त बिन्दुओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। तूलिका को सीधी मुद्रा में रखकर (स्तम्भनायुक्त) बनाये जाते है।

इसके बाद चित्रसूत्रकार चित्र के दोष को बताते हुए कहता है कि दुर्बल रेखा, बिन्दु रेखा, टूटी हुई रेखाओं द्वारा बना हुआ चित्र तथा बडे अण्डकोश, आँख एवं ओठ के साथ मनुष्य रूप का प्रदर्शन प्रतिबन्धित है और चित्र के दोष कहे गये हैं।

स्थान, प्रमाण, भूलम्भ, मधुरत्व (लावण्य), विभक्तता (अन्तराल विभाजन), सादृश्य और क्षय एवं वृद्धि गुणों से युक्त चित्र भूषित (श्रेष्ठ) माना गया है।

रेखा वर्तना और रंग चित्रकला के लिये भूषण है और इसको जाननेवाला चित्रकार मनुष्यों मे श्रेष्ठ है। आगे कहा गया है—

रेखां प्रशंसन्त्याचार्याः वर्तनां च विचक्षणाः।
स्त्रियो भूषणमिच्छन्ति वर्णाढ्यमितरे जनाः ॥

चित्र विद्या के आचार्य चित्र की प्रशंसा मे रेखा को प्रधान गुण मानते हैं। विचक्षण या सहृदय रसिको की दृष्टि में वर्तना (छाया-प्रकाश या त्रियामी प्रभाव) प्रशंसा का कारण है। जिस प्रकार स्त्रियाँ आभूषण पसन्द करती हैं उसी प्रकार वर्ण को सब लोग पसन्द करते हैं।

हे मनुजोत्तम ! यह जानकर चित्र-रचना में ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे सबका चित्त आकृष्ट हो।

निकृष्ट आसन, दुराचरण, प्यास और असावधानी ये चित्र के विनाश के कारण कहे गये हैं।

चित्र-रचना में चित्रभूमि भलीभाँति लिपी हुई, विस्तृत, कोमल, पवित्र और सुरक्षित होनी चाहिए। जब विद्वान् कलाकार स्निग्ध, स्पष्ट, सुन्दर वर्णवाली रेखाओ से युक्त देश-विशेष के अनुसार चित्र बनाता है तो मान एव शोभा से युक्त चित्र मनोहर लगता है

रूप-निर्माण

इस अध्याय में विभिन्न आकृतियों के रूप-निर्माण के विधि-विधानों का वर्णन किया गया है। देवता, दानव, किन्नर, गन्धर्व, राजा, सेनापति, योद्धा, गायक, नर्तक, कर्मचारी, नागरिक तथा जानवरो आदि के आकृति चित्रण को विस्तार से बताया गया है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक दृश्यो तथा गाँव-नगर के चित्रो मे किन-किन युक्त संगत प्रतीकों और वस्तुओं को दिखाना चाहिए इन सभी का इस अध्याय में विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है। रात एवं दिन का चित्रण तथा ऋतु चित्र बनाने की नियमावली भी दी गयी है।

सर्वप्रथम मार्कण्डेय मुनि ने पृथ्वीपति (राजा) के रूप-निर्माण की विधि बताते हुए कहा कि राजा का चित्र देवता जैसा ही बनाना चाहिए किन्तु उसके रूप में एक भिन्नता लोम चित्रण है अर्थात् उसके रूप मे एक-एक रोम को अकित करना चाहिए।

ऋषि, गन्धर्व, दैत्य, दानव, मंत्री, ज्योतिषी, पुरोहित और ब्राह्मण को भद्र (106 अगुल) के आकार का बनाना चाहिए तथा ऋषियो को जटाजूट और काले मृगचर्मों वाले उत्तरीय वस्त्रो से सुशोभित दिखाना चाहिए। उनका शरीर क्षीण हो किन्तु उन्हें तेजस्विता से परिपूर्ण अंकित करना चाहिए। देवताओं और गन्धर्वो को मुकुटरहित अकित करना चाहिए। किन्तु उनके केश शिखर को सुशोभित कर देना चाहिए। ब्राह्मणों को ब्रह्म तेज से सम्पन्न तथा श्वेतवस्त्रधारी चित्रित करे। मंत्री, ज्योतिषी तथा पुरोहित को समस्त अलंकारों (वस्त्राभूषणों) से भूषित किया जाय किन्तु उनके सिर पर मुकुट न होकर पगडी रहती है। दैत्यो और दानवो को भ्रू-भग युक्त, नेत्र गोल और मुख भीषण चित्रित करना चाहिए। उनका वेश उद्धत बनाना चाहिए।

आकाश अथवा पृथ्वी पर अवस्थित विद्याधरो का चित्रण भद्र प्रमाण (106 अगुल) के अनुसार ही करना चाहिए। उन्हे सपत्नी चित्रित किया जाना चाहिए। उन्हें मालाओ एव अलकारो से युक्त तथा खड्गहस्त दिखाना चाहिए।

किन्नर, नागराज तथा राक्षसों को मालव्य प्रमाण (104 अंगुल) के अनुसार बनाना चाहिए तथा यक्ष को रुचक प्रमाण (100 अगुल) तथा प्रधान पुरुष को शशक (90 अंगुल) आकार का चित्रित करना चाहिए। पिशाच, वामन, कुबड़ा, गण तथा राजाओ का रूप एवं आकार नियमानुसार अंकित किया जाना चाहिए। स्त्रियों को उनके पुरुषों के मान के अनुकूल ही चित्रित करना चाहिए।

किन्नर दो प्रकार के कहे गये हैं—एक तो मानव मुखवाले तथा अश्व शरीरवाले और दूसरे मानव देहवाले तथा अश्व शरीरवाले और दूसरे मानव देहवाले तथा अश्व मुखवाले। अश्व मुखवाले किन्नरों को समस्त अलकारों से विभूषित, गीत वाद्य से युक्त तेजस्वी अकित करना चाहिए। राक्षसों के बाल खडे हुए और आँखे डरावनी हों। नागों को देवताओ के आकार का तथा फणयुक्त चित्रित करना चाहिए। यक्षों को आभूषणो से सुशोभित किया जाय। देवगणो तथा पिशाचो को मानरहित बनाना चाहिए। ये गण अनेक जीवों के मुखवाले अनेक वेशभूषा वाले, भाँति-भाँति के अस्त्र-शस्त्रधारी, नाना क्रीड़ाओं में लिप्त तथा विभिन्न कार्यों में सलग्न अकित किये जायँ।

वैष्णवों के गणों को एक रूप बनाना चाहिए। उनके चार भेद होते हैं। वासुदेव के गण वासुदेव के समान और सकर्षण के समान उनके गण कहे गये हैं इसी प्रकार प्रद्युम्न और अनुरुद्ध के समान ही उनके गण होने चाहिए सब अपने नायक के समान तथा उन्हीं

की तरह आयुधधारी हो। इनका वर्ण क्रमश: नीलकमल के समान श्याम, चन्द्रवत् गौरवर्ण, मरकत (पन्ना) मणि के समान हरा तथा सिन्दूर के समान लाल चित्रित करना चाहिए।

स्त्रियो तथा वेश्याओं के चित्र रुचक (100 अगुल) प्रमाण के अनुसार बनाना चाहिए। वेश्याओ का वेश उद्धत एव शृंगारी हो। कुलीन तथा पञ्जावती स्त्रियों को मालव्य (104 अगुल) प्रमाणानुसार चित्रित करना चाहिए। उन्हें अलकरणयुक्त चित्रित करना चाहिए किन्तु वेशभूषा अत्युन्नत (भडकीला) न हो। दैत्य, दानव, यक्ष और राक्षसो की पत्नियो को रूपवती अकित करना चाहिए। तथा उनकी माताओं को उन्हीं के रूप के अनुसार चित्रित करना चाहिए। पिशाचों की पत्नियो को भी अपने पति के रूप के अनुकूल बनाना चाहिए। विधवा स्त्रियो को पलित (सफेद) केशवाली, श्वेत वस्त्रधारिणी तथा अंलकारों से रहित दिखाना चाहिए। कुब्जा, वामनिका तथा वृद्धा स्त्री अपने प्राकृतिक रूप में ही चित्रित की जायँ। राजस्त्रियों के परिवार में वृद्ध कंचुकी (रनिवास रक्षक) को भी चित्रित करना चाहिए।

वैश्य का चित्र रुचक (100 अंगुल) मान के अनुपात में तथा शुद्र का चित्र शशक (90 अंगुल) मान के अनुसार बनाना चाहिए। इनकी वेशभूषा इनकी जाति के अनुसार ही अंकित की जानी चाहिए। दैत्य आदि की स्त्रियों की सेविकाएँ उन्हीं के अनुकूल चित्रित की जानी चाहिए।

सेनापति को विशालकाय, छाती चौड़ी, नाक लम्बी, ठुड्डी बडी, कन्धे पुष्ट, भुजा एवं ग्रीवा लम्बी, कद ऊँचा तथा तीन रेखायुक्त ललाटवाला, चढी हुई भृकुटीवाला, विशाल कटिभागवाला, अभिमानी और ऊर्जस्वी बनाना चाहिए। योद्धाओ के चित्र साधारणत: भृकुटी चढ़ाये हुए अंकित किये जाते हैं। उनकी वेशभूषा कुछ उद्धत तथा मुखमुद्रा गर्व से दीप्त हो रही हो। पैदल सैनिक हथियार बद हों और ढाल-तलवार लिये हुए तथा पुष्ट देह धारण किये हुए चित्रित किये जाने चाहिए। धनुर्धारियों को उत्तम बाण लिये हुए तथा उनकी जाँघे खुली हुई दिखानी चाहिए। उनका वेश अत्युद्धत न हो और वे जूते पहने हुए अकित किये जायँ।

हाथी, घोडे को उनके लक्षणो के अनुसार चित्रित किया जाय। गजारोहियो को श्यामवर्ण, बाल घुँघराले तथा आभूषणयुक्त दिखाना चाहिए। अश्वारोहियों को सुन्दर वेशभूषा से युक्त चित्रित करना चाहिए। बंदियों के उद्धत वेश मे दिखाना चाहिए उनकी गले की नसें दिखती हों तथा दृष्टि ऊपर की ओर हो। संदेशवाहक की आँखे भूरी एवं कनखीयुक्त होनी चाहिए। प्राय: हाँथ में डण्डा लिये हुए उन्हें चित्रित करना चाहिए। युद्ध के प्रसग में उनकी आँखे कनखी एव भूरी चित्रित नहीं करनी चाहिए। प्रतिहारी (द्वारपाल) को दयावान्, सादे वस्त्रवाला, कमर मे लटकती हुई तलवार और हाथ में लाठी लिये हुए बनाना चाहिए।

वैश्यों को संवेष्टित सिर (टोपी या पगडी से ढका हुआ) बनाना चाहिए। गायकों, नर्तकों तथा बाजा बजानेवालों की वेशभूषा भडकीली होनी चाहिए। उनके केश कुछ-कुछ भूरे तथा वे अनुकूल आभूषणों से विभूषित हों। नगर तथा जनपद के श्रेष्ठ पुरुषों को शुभ्र वस्त्रों में अत्यन्त विनम्र एवं प्रियदर्शन चित्रित करना चाहिए।

मल्लयुद्ध करनेवालों का कद लम्बा, शरीर मोटा, ग्रीवा एवं कंधा पुष्ट, बाल छोटे तथा उन्हें उग्र एव अभिमानी दिखाना चाहिए।

वृषभ, सिंह और दूसरे जीव जो पृथ्वी पर जिस प्रकार रहते है वैसे ही प्रदर्शित किये जायँ। सबको सामान्यत: जैसे वे दिखायी पडते है हुबहू वैसा ही बनाना चाहिए। चित्रकला का मुख्य उद्देश्य यथार्थ रूप से समानता (सादृश्य) दिखाना ही है। अत: चित्रकार को अपने विवेकानुसार

प्रत्येक देश के मनुष्यो को उनके रूप, वेशभूषा और वर्ण के अनुरूप चित्रित करना चाहिए। उनके देश नियोग (प्रवृत्ति), स्थान और कर्म को यत्नपूर्वक अध्ययन कर उनके आसन, शय्या, वाहन और वेश का अकन करना चाहिए।

नदियो को शरीरधारी अकित करे तथा चित्र मे उनके वाहनों को भी प्रदर्शित करें। उनके हाथ मे पूर्ण कुम्भ हो तथा वे अपने घुटने के बल थोड़ी नमित मुद्रा में चित्रित की जायँ। उनके सिर के पास पर्वत-शिखर तथा हाथ के पास द्वीप (भू-भाग) चित्रित करें। इस प्रकार पृष्ठभाग मे पवित्र भूमण्डल की रचना करनी चाहिए।

समुद्र को भी मनुष्यरूप मे अकित करे तथा उनके हाथ में रत्नो का पात्र दिखायें। समुद्र की मुखाकृति के चारो ओर प्रभामण्डल के स्थान पर तरगित जल अंकित किया जाता है। उनके आयुधो को कुछ ऊपर उठा हुआ रेखाकित करे। समुद्र के निधियों को कुम्भ रूप मे और अन्य को प्रतीक रूप में अकित किया जाय। यथा—शख नामक निधि का चिह्न शख, पद्म नामक निधि का चिह्न कमल और अन्य निधियो के चिह्न उन्ही के अनुरूप चित्रित किये जायँ तथा उनमें दिव्यता दिखाने के लिये रुद्राक्ष की माला एव पुस्तक-प्रतीको (चिह्नो) का चित्रण भी करें।

चित्रसूत्रकार दृश्य चित्रण की रचना-विधि का वर्णन करते हुए आगे कहता है कि राजन ! आकाश को वर्णरहित तथा पक्षियो से भरा हुआ अंकित करना चाहिए। उसी प्रकार रात्रि मे आकाश को ताराओ से सुशोभित तथा पृथ्वी को जगल के अनुपम सौन्दर्य से युक्त कर जहाँ जो हो उसे यथावत् उसके गुण के अनुसार चित्रित करे। पर्वतो को शिलाओ, शिखरो, धातुओ, वृक्षो, झरनो और सर्पो से युक्त दिखाना चाहिए। जंगल को तरह-तरह के वृक्षो, पक्षियो तथा हिंसक जन्तुओं के साथ चित्रित करे और जल के चित्रण मे कुशल चित्रकार असख्य मत्स्य, कच्छपो, पद्माक्षों के अकन के साथ जल में उत्पन्न होनेवाले जीव-जन्तुओ और पौधों को भी अंकित करता है।

नगर का दृश्य दिखलाने के लिये अनेक पवित्र देवालयो, महलो, बाजारों, गृहो तथा सुन्दर राजमार्गों से उसे सुशोभित करना चाहिए। गाँव के चित्रण मे सीमा के पास कुछ उद्यानों को भी दिखलाया जाय। मिट्टी के ऊँचे टीले पर दुर्ग को दिखाना चाहिए। किले के सम्पूर्ण निवेश के साथ उसके बुर्ज एवं दीवार पर्वताकार रूप में चित्रित किया जाय। बाजार को व्यापार के माल से युक्त तथा मद्य पीने के स्थान मे अनेक लोगो को मदिरापान मे जुटे हुए अंकित करना चाहिए। जुआरियों को उत्तरीय वस्त्र से रहित दिखाना चाहिए तथा उनमें से पराजित व्यक्तियों को शोकयुक्त तथा जीते हुए लोगों को प्रसन्नचित्त चित्रित करना चाहिए।

रणभूमि के दृश्य को आँकने के लिये चतुरगिणी (अश्वारोही, गजारोही, रथारोही तथा पदाति) सेना, प्रहार करते हुए सैनिक तथा मृतकों के शरीर को रक्त से परिपूर्ण दिखाना चाहिए।

श्मशान के दृश्य में मृतकों (मुर्दो) एव जलती हुए चिताओ को दिखाना चाहिए।

मार्ग के चित्रण मे बोझ से लदे हुए ऊँट के कारवाँ दिखाना चाहिए।

रात्रि के चित्रण मे चन्द्रमा का प्रकाश, चमकते हुए तारागणो, लोगों को गहरी निद्रा में सोते, चोरो को चोरी करते हुए तथा कुछ मनुष्यों को वार्तालाप करते हुए दिखाना चाहिए।

यदि रात्रि के पहले पहर का चित्रण करना हो तो को प्रिय से मिलने हेतु जाते हुए) चित्रित करना चाहिए

प्रात:काल के दृश्य में अरुणोदय, दीपक की मंद ज्योति, बाँग देते हुए मुर्गे तथा सोकर उठते हुए मनुष्यों को अँगड़ाई लेते हुए चित्रित करना चाहिए।

सांध्यकालीन दृश्य मे लालिमा, बसेरे के लिये जाते हुए पक्षी सन्ध्योपासना करते हुए द्विज, घरो को लौटते हुए किसान तथा फैलते हुए अंधकार को अंकित करना चाहिए।

चन्द्रोदय के दृश्य में कुमुद पुष्पों को खिलते हुए तथा घरों, शय्या को पराग तथा नीलकमल पुष्पो से सुसज्जित करें तथा युगल मानव आकृति को प्रेम में अनुरक्त प्रदर्शित करना चाहिए। ऐसे चित्र मे प्राणियों को क्लेश से तप्त नहीं दिखाना चाहिए।

चित्रसूत्रकार आगे विभिन्न ऋतुओं का चित्रण किया जाय, इस पर प्रकाश डालता है।

वसन्त ऋतु के चित्र में बौरे हुए आम्रवृक्ष, पुष्पित वृक्ष, मँडराते हुए मधुपो और मधुमक्खियो का समूह, वृक्ष पर बैठी हुई कोयल तथा आनन्दित नर-नारी को प्रदर्शित करना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु के चित्र मे सूखी हुई पोखरियो, कीचड मे पडी हुई भैंसे, वृक्षों के नीचे छाया में बैठे मृग तथा थके-माँदे व्यक्तियो को अंकित करना चाहिए।

वर्षा ऋतु के चित्र मे जल के भार से झुके हुए बादल शोभायुक्त इन्द्रधनुष, विद्युत् की चपलता, उडती हुई बक-पंक्ति, गुफाओं में छिपे हुए सिंह और व्याघ्र को प्रदर्शित करना चाहिए।

शरद् ऋतु के चित्र मे फलो से लदे हुए वृक्ष, पक्के खडे हुए धान के खेत, पद्म पुष्पो से आच्छादित जलाशय, विचरते हुए हंस तथा स्वच्छ आकाश चित्रित करना चाहिए।

हेमन्त ऋतु के चित्र में फसल कटे हुए खेत, कोहरा से आच्छादित आकाश तथा ओस बिन्दु से आवृत दिगदिगन्त (भूमि) को चित्रित करना चाहिए।

शिशिर ऋतु के चित्र मे कोहरे से आच्छादित दिगन्त, कुछ शीत से सिकुडे हुए और कुछ आग तापते हुए मनुष्य तथा प्रसन्नचित्त हाथी और कौओ का चित्रण कुशल चित्रकार करता है।

चित्रकार को इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि वृक्षों के चित्र फल-फूलो के साथ, प्राणियो के चित्र हर्ष के साथ तथा ऋतुचित्र प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण एव लोकरुचि के अनुसार करना चाहिए। चित्र में रस एवं भावों की सृष्टि बताये अनुसार करना चाहिए तथा नृत्य मुद्राओं का यथाअवसर उपयोग करना चाहिए।

कठोर वर्तना (छाया-प्रकाश) वाले चित्र को मध्यम कोटि में रखा जाता है। सपाट वर्तनावाले चित्र को अधम माना गया है तथा कोमल एव मृदु वर्तनावाले चित्र को उत्तम कोटि का चारु चित्र कहा गया है।

जो चित्र जन-स्वीकृति के अनुसार काल, देश तथा अवस्था के अनुकूल चित्रित किया जाता है वह प्रशसित होता है। इसके विपरीत होने पर उसकी प्रशसा नही होती। इस प्रकार चित्रकार के विलक्षण बुद्धि से उपजा हुआ, विधि-विधान से युक्त, कान्ति (लावण्य) युक्त, विलास (शृगार) रसादिकों से रचा हुआ नेत्रप्रद चित्र सम्पूर्ण मनोरथ को पूर्ण करनेवाला होता है।

शृंगारादिभाव कथन

इस अध्याय में नौ रसों का वर्णन चित्ररचना की दृष्टि से किया गया है। चित्र में रसमयता ही उसका प्राण है। जिस प्रकार काव्य मे रस को काव्य की आत्मा कहा गया है उसी प्रकार चित्रकला मे यदि रस की निष्पत्ति नही होती तो वह रंगों एवं रेखाओं का जंजालमात्र होगा। कला के सभी तत्त्वों से परिपूर्ण कोई कृति तब तक पूर्ण नहीं समझी जा सकती जब तक कि

उसमें रस का परिपाक न हो। रस वर्णन के बाद चित्र के गुण एवं दोषो की विवेचना की गयी है अर्थात् किस प्रकार के चित्र अकित करने चाहिए तथा किस प्रकार के चित्रो का चित्रण नही करना चाहिए इसे भली-भाँति निर्देशित किया गया है और अत मे चित्रसूत्रकार चित्रकला के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए इसे सभी कलाओं में सर्वश्रेष्ठ निरूपित किया है।

चित्र के रसो के बारे में चित्रसूत्रकार का कथन है—

शृगार हास करुण वीर रौद्रभयानका.।

वीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव चित्ररसा: स्मृता॰॥

चित्र के लिये शृगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त नामक नौ रस कहे गये हैं।

शृंगार रस के चित्र में कान्ति, लावण्य एव रूपमाधुर्य के साथ आकृतियों का अंकन करना चाहिए तथा उन्हें सुन्दर नेशभूषा एवं अलंकरणो से सुसज्जित करना चाहिए।

हास्य रस के चित्र में कुबडे, बौने एवं विचित्र दिखायी देनेवाली आकृतियो को चित्रित किया जाना चाहिए तथा उनके हाथो की भगिमा सकुचित एव व्यर्थ ही इधर-उधर होनी चाहिए अर्थात् विचित्र हाव-भाववाले प्राणी चित्रित करने चाहिए।

करुण रस के चित्र में दरिद्र, याचक, विरह-व्यथा से पीड़ित तथा विक्रय एवं व्यसन आदि के कारण सर्वहारा मानवाकृतियों का चित्रण करना चाहिए।

रौद्र रस के चित्र मे पौरुषयुक्त व्यक्ति को विकार के कारण क्रोधित एव विषवमन करता हुआ चित्रित करना चाहिए। उसके चमकदार शस्त्र एव वस्त्राभूषणो को भी दिखाना चाहिए।

वीर रस के चित्र में प्रतिज्ञागत शौर्य के साथ आकृति मे गर्व एवं उदारता का भाव होना चाहिए। उसके चेहरे पर स्मित भाव हो किन्तु भृकुटी तनी हुई हो।

भयानक रस के चित्र में दुष्ट, उन्मत्त एव देखने में भयावह आकृति का चित्रण करना चाहिए जो हिसक कार्य मे संलग्न हो।

वीभत्स रस में श्मशान जैसा गर्हित स्थान, वध-स्थल एवं भयंकर (दारुण) स्थान का चित्रण होना चाहिए।

अद्भुत रस के चित्र में विनय, रोमांच तथा चिन्ता की सृष्टि की जाती है तथा आनतमुख चित्रित किया जाता है।

शान्त रस के चित्र में ध्यानस्थ, आसन लगाये, तपस्वी आदि की सौम्याकृति चित्रित करनी चाहिए।

चित्रसूत्रकार आगे निर्देशित करता है कि शृगार, हास्य एवं शान्त नामक रस ही घर (परिवार) मे चित्रित करने योग्य हैं। शेष रस को कदापि चित्रित नहीं करना चाहिए। देवालय तथा राजभवन में सभी रसों के चित्र अंकित किये जा सकते हैं। राजभवन के उस स्थान पर जहाँ राजा स्वयं रहते हों वहाँ शेष रसों का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए पर राजाओं के सभाभवन मे सब रस प्रदर्शित किये जा सकते हैं। राजाओ के सभाभवन एवं देवालयों को छोड़कर सामान्य गृहों में युद्ध, श्मशान, करुणा, मृत्यु, दुःखपीड़ित, कुत्सित तथा अमांगलिक चित्रों का अंकन नहीं करना चाहिए

चित्र के गुण-दोषों का उल्लेख करते हुए चित्रसूत्रकार का कथन है—

हे राजन्! सींगवाले बैल के स्वामी शिव, आधे हाथी के शरीरवाले गणेश, गन्धर्व एव किन्नर के स्वामी इंद्र, गरुड के स्वामी विष्णु हनुमान तथा संसार में ख्यातिप्राप्त मनुष्यों के चित्र घरों में सदा चित्रित करने चाहिए।

चित्रकार को अपने घर (की दीवारों) पर चित्र नही बनाना चाहिए।

दुर्बल, स्थूल एवं विभक्त (टूटे हुए) रेखाओं तथा वर्णसकर (विभिन्न रंगो के सम्मिश्रण से) चित्रण दोष-पूर्ण कहे गये हैं।

स्थान (आकार अथवा रूपभेद), प्रमाण, भूलम्भ (चित्राधार भाव), मधुरत्व (लावण्य), विभक्तता (अन्तराल विभाजन), सादृश्य, क्षय और वृद्धि इन आठ चित्रगुणों को हमेशा (कलाकार को) अपनी स्मृति मे रखना चाहिए।

स्थानहीन (आकारहीन), रसहीन, शून्य और मलिन दृष्टिवाले तथा चेतनारहित एवं अशक्त चित्रण को गर्हित कहा गया है।

जो चित्र भावोपपन्न से सुशोभित हो, जिनमें गुण वर्तना द्वारा प्रतिपादित गोलाई (छाया-प्रकाश) का भाव हो, हँसता हुआ माधुर्य हो तथा सजीवता से परिपूर्ण हो और श्वास लेता हुआ-सा दिखायी दे वह शुभ लक्षणोवाला होता है।

हीनांग (प्रमाणरहित), मलिन, शून्य भाववाला, बँधा हुआ, व्याधि तथा भय से आकुल, प्रकीर्ण (असंयोजित) चित्र न बनाना चाहिए। बुद्धिमान् कलाकार समझ-बूझ करके ही चित्रण करे, बिना समझे कोई कार्य न करे।

शास्त्रज्ञ (सभी शास्त्रों का ज्ञाता), पुण्यात्मा तथा चतुर चितेरे द्वारा बनाया हुआ चित्र शीघ्र लक्ष्मी प्रदान करता है, दरिद्रता को दूर करता है, मनोरथ पूर्ण करता है, मिले हुए कल्याण को स्थिर रखता है, पवित्र तथा अनुपम प्रीति उत्पन्न कर विख्यात करता है। दुःस्वप्न को नाश करता है, गृह देवता को प्रसन्न रखता है और जहाँ (जिस घर में श्रेष्ठ चित्रकार द्वारा) चित्र बनाया हुआ रहता है वह शून्य (निर्जन) नहीं होता (अर्थात् वह सदा भरा-पूरा रहता है)।

जो चित्रकार अलंकरण को त्यागकर शल्यकार की भाँति (मानव शरीर के अवयवों के अध्ययन में) विशेष दक्षता प्राप्त कर चित्र बनाता है उसे चित्रवेत्ता कहते हैं।

जो व्यक्ति तरंग, अग्निशिखा, धुआँ, पताका और वायु की गतियों के समान चित्र बनाने मे विशेषज्ञ होता है उसे मत्त चित्रकार कहते हैं।

जो चित्रकार सोये हुए मनुष्य को चेतनायुक्त एवं मरे हुए व्यकि को चेतनाशून्य अंकित कर सकता है और निम्न एवं उच्च श्रेणी के लोगो का विभाग कर (विशिष्टताओ के साथ) चित्रण करता है वह चित्रवेत्ता कहलाता है।

चित्रो का अनुशीलन क्रमानुसार करना चाहिए उन्हें आमने-सामने रखकर तुलनात्मक रीति से अध्ययन करना निषिद्ध है (अर्थात् नहीं करना चाहिए)।

जो नियम भित्ति-चित्र के लिये कहे गये हैं उन्हीं नियमों के अनुसार सोने, चाँदी, ताँबा, लोहा आदि धातुओं पर चित्र खोदकर (उद्रेखित करना) बनाना चाहिए।

पत्थर, लकडी तथा लोहे की प्रतिमा को इन्हीं विधि-विधानों से, जो चित्र-निर्माण के प्रसग में बताया गया है बनाना चाहिए इसी भाँति विधान के अनुसार पुस्त कर्म किया जाता है जो दो

प्रकार का होता है—घन एवं सुषिर। लोहा, पत्थर, लकड़ी और मिट्टी से सदा घन होना चाहिए और सुषिर चमडा, लकडी और लोहे से करना चाहिए। चमडे के बने हुए पुस्त (सतह) पर मिट्टी (विशेष प्रकार से बना लेप) चढा देना चाहिए। इसी प्रकार वस्त्र पर इस क्रिया को करने के बाद चित्र बनाया जा सकता है।

अन्त में चित्र सूत्रकार कहता है कि हे राजन ! यह तो केवल (चित्र नियम) का प्रस्तावना मात्र है। इस सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक कहना सैकडो वर्षों में भी सम्भव नही है।

हे राजन् ! जो यहाँ नहीं कहा गया है वह (इस ग्रन्थ के) नृत्य वर्णन प्रकरण से जान लेना चाहिए और जो नृत्य प्रकरण मे भी नहीं कहा गया है वह चित्रित करने योग्य नहीं है।

चित्रकला सभी कलाओं से श्रेष्ठ है। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देने वाली है। जिस घर मे इसकी प्रतिष्ठा की जाती है वहाँ सबसे पहले (सर्वदा) मंगल होता है।

जैसे पर्वतो मे सुमेरु पर्वत श्रेष्ठ है, पक्षियों में गरुड़ प्रधान है और मनुष्यो मे राजा उत्तम है उसी प्रकार कलाओं मे चित्रकला उत्कृष्ट है।

नग्नजित् का 'चित्रलक्षण'

'चित्रलक्षण' तिब्बत के तंजूर ग्रन्थमाला से प्रकाशित चित्र-विद्या की एक प्रौढ़ रचना है। मूल संस्कृत ग्रन्थ का जब तिब्बती भाषा मे अनुवाद किया गया, उस समय उक्त ग्रन्थ के शायद तीन अध्याय ही उपलब्ध थे क्योंकि इसके अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यह अधूरी रचना है। आज मूल संस्कृत ग्रन्थ की पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं है अतः यह कह पाना भी कठिन है कि चित्रलक्षण का तिब्बती अनुवाद मूलग्रन्थ से हुआ है अथवा उसके संस्करण से। जो भी हो, लेकिन इतना सुनिश्चित है कि यह ग्रन्थ पाचवीं-छठी शताब्दी में चित्रविधा के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप मे ख्याति प्राप्त कर चुका था।

चित्रलक्षण में कुल तीन अध्याय हैं जिनमें 1146 पक्तियाँ लिखी गयी हैं। इस ग्रन्थ के तिब्बती अनुवाद का सन् 1913 ई० में जर्मन भाषा में अनुवाद हुआ। सन् 1976 ई० मे इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ।[1]

चित्रलक्षण के प्रथम अध्याय मे चित्रकला की उत्पत्ति का वर्णन प्राप्त होता है—

प्राचीनकाल में भयजित् नामक धर्मपरायण राजा राज्य करता था। उसके राज्य के अन्तर्गत नियमानुसार ऋतु परिवर्तन होते थे। चारो वर्ण अपने-अपने धर्म का पालन करते थे। प्रजा सुख-समृद्धि से परिपूर्ण थी। अकस्मात् उसके राज्य में एक ब्राह्मणपुत्र की मृत्यु हो गयी। पुत्र-शोक मे विकल ब्राह्मण उसकी सभा में आकर राजा को प्रताड़ित करते हुए बोला कि हे राजन् आपने अवश्य ही कोई दुष्कर्म किया है जिसके कारण मेरे पुत्र की मृत्यु हुई है। यदि आप क्षत्रिय हैं और धर्म एवं ब्राह्मणो पर आपका किंचित् भी विश्वास है तो आप मेरे पुत्र को जीवित करें। राजा बड़ा दु:खी हुआ। उसने अपने योगबल से यमराज का आवाहन किया और उनसे ब्राह्मण पुत्र को जीवित कर देने की प्रार्थना की किन्तु यमराज ने जन्म एव मृत्यु को कर्माधीन बताते हुए राजा के अनुरोध को ठुकरा दिया। फलतः दोनों में घमासान युद्ध हुआ। पराजित यम के बचाव मे स्वयं ब्रह्मा को आना पड़ा और उन्होंने ब्राह्मण पुत्र को जीवित करने के लिये उसका चित्र

---

1 बी. एन. गोस्वामी एवं ए. एल. डलमेन- एन अर्ली डाकुमेण्ट आफ इण्डियन आर्ट द चित्रलक्षण आफ नग्नजित

बनाने को कहा। राजा के द्वारा चित्र बनाये जाने के बाद ब्रह्मा ने उसमे प्राण का संचार कर दिया। ब्राह्मण प्रसन्नतापूर्वक अपने पुत्र को लेकर घर वापस चला गया। ब्रह्मा ने राजा भयजित् को आशीर्वाद देते हुए कहा, "तुमने नग्न प्रेतो को जीत लिया है अतः आज से तुम्हारा नाम नग्नजित् हुआ और मृत्युलोक में तुम चित्रकला के प्रथम आचार्य कहे जाओगे।"

राजा नग्नजित् पुनः ब्रह्मा के पास गये और उनसे चित्र रचना के सभी नियमो को बताने का अनुरोध किया। ब्रह्मा ने कहा कि सृष्टि मे सर्वप्रथम वेद विद्या प्रकट हुई। तत्पश्चात् पूजा हेतु चित्रकला आयी। यह भी एक विद्या है। मैंने (ब्रह्मा) प्रथन चित्र बनाया और इसके बाद मनुष्य जो भी आकृति बनायेंगे उसे चित्र कहा जायगा। मैं इसके सभी नियम विस्तारपूर्वक कहता हूँ।

जिस प्रकार पर्वतो में सुमेरु, पक्षियों में गरुड़, मनुष्यों मे राजा उत्तम होता है उसी प्रकार सभी कलाओ मे चित्रकला श्रेष्ठ है। जैसे सभी नदियाँ समुद्र से मिलती हैं, जैसे सभी मणि पर्वत पर निर्भर हैं, जैसे सभी नक्षत्र सूर्य के चारों ओर घूमते हैं, सभी ऋषि और देवता ब्रह्मा पर निर्भर हैं, उसी प्रकार समस्त शिल्प चित्रकला पर आधारित हैं। सभी वस्तुओ को किस प्रकार बनाना चाहिए तथा मानव, ऋषियों, मुनियों, नागो, यक्षों, दानवों, प्रेतों, असुरो तथा पिशाचों की आकृतियाँ किस प्रकार बनानी चाहिए, इन सबके नियमों को ध्यान से सुनो।

ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में चित्रकला की दैवी उत्पत्ति का वर्णन दिखायी पड़ता है। ब्रह्मा ने बताया कि बहुत पहले इस सृष्टि में कुछ नहीं था, सर्वत्र अन्धकार छाया था। अचानक एक दिन अन्धकार को चीरते हुए एक सुनहरा पिण्ड प्रकट हुआ।[1] इस पिण्ड से स्वयं सृष्टिकर्ता उद्भूत हुआ और इसी से ॐ शब्द एवं वेद ज्ञानादि प्रकट हुए। इसके बाद नाना रूपधारी सृष्टि उत्पन्न हुई। स्मृति, शास्त्र, नियम, जातियों, उपजातियों की रचना हुई तथा धर्म की स्थापना हुई। सृष्टिकर्ता के ध्यान धारण करने के बाद देवताओ के दिव्य एव सुन्दर स्वरूप का निर्माण हुआ और अनेक शक्तियों के साथ उनका शरीर विविध आयुधो, सुन्दर वस्त्रो तथा अलकरणो से सुशोभित हुआ। उन्होने अपने इस अद्भुत रूपों के स्वयं चित्र बनाये। इन चित्रों को देखकर देवता बहुत आनन्दित हुए तथा वे सृष्टिकर्ता के गुणगान करने लगे। उन्होंने अपने इन चित्रो मे दिव्य शक्तियों का सम्पुञ्जन किया। ब्रह्मा ने उन्हे आशीर्वाद दिया और कहा आज से इन्हीं चित्रो के माध्यम से तीनो लोको मे तुम्हारी (देवताओं की) पूजा होगी और जो मनुष्य सम्पूर्ण श्रद्धा से चित्र निर्माण कर पूजा-अर्जना करेंगे उन्हें दिव्य एव श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होगी। पूजा निर्मित चित्र के अनेक नाम होगे। यह सुन देवगण अत्यन्त आनन्दित हुए।

ब्रह्मा ने आगे नग्नजित् को बताया कि जब तुम चित्र रचना के अनुपात आदि का ज्ञान प्राप्त कर लोगे तो तुम्हारा यश चतुर्दिक् फैल जायगा। चित्र का स्वभाव, अनुपात तथा उनके उपकरणो को ठीक-ठीक जानना अत्यन्त आवश्यक है। राजन ! चित्रकला में प्रमाण देव-पूजा पर आधारित है। प्रमाण ऐसा होना चाहिए जो नेत्रों को रुचिकर प्रतीत हो।

चित्रलक्षण के तृतीय अध्याय में चित्रकला के विधि-विधानो पर गम्भीरता से विचार किया गया है जिसमें असुर, नाग, राक्षस, किन्नर, सिद्ध, वादक, जरितर (गायक)। पिशाच, प्रेत, कुम्बान्ध तथा विद्याधर, मनुष्य एवं राजाओ को प्रमाणानुसार बनाने का निर्देश दिया गया है।

---

1 चीनी लोक किम्वदन्ती के अनुसार भी आरम्भ में ब्रह्माण्ड की आकृति एक विशाल पिण्ड (अण्डे) के रूप में था

अणु, बालाग्र, लिक्षा, यूक, यव तथा अगुल एक-दूसरे के क्रमशः आठ गुने होते है। अगुल को एक इकाई प्रमाण समझना चाहिए।

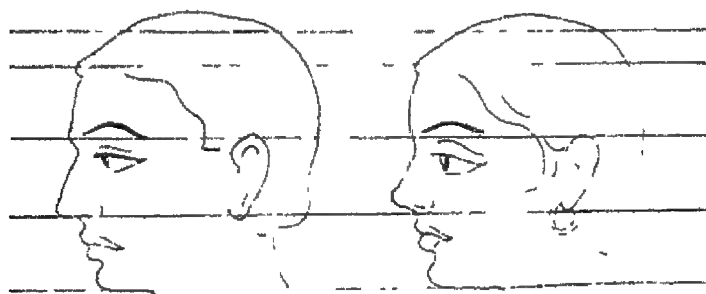
(अर्थात् — 8 अणु = 1 बालाग्र, 8 बालाग्र = 1 लिक्षा, 8 लिक्षा = 1 यूक, 8 यूक = 1 यव, 8 यव = 1 अंगुल)

इसके पश्चात् विभिन्न आकृतियो के अग-उपांगों के लिये कितनी लम्बाई-चौड़ाई होनी चाहिए इस पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। ग्रन्थकार का कथन है कि विस्तार का अर्थ लम्बाई है और चौड़ाई (आयाम) इसकी तुलना में छोटी होती है। मनुष्य तथा राजाओं के प्रमाण इस प्रकार हैं—

चक्रवर्ती राजा न्यग्रोध की तरह सुडौल तथा अपने अगुल से 108 अंगुल प्रमाणवाला होता है।[1]

इसके पश्चात् मुखमण्डल और उसके प्रत्येक अवयवो को उचित रूप से अंकित करने के लिये वैज्ञानिक तरीके बताये गये हैं। सक्षेप मे मुख्य बातें इस प्रकार है—

मुखमण्डल के तीन भाग किये जायँ—मस्तक, नासिका तथा चिबुक—प्रत्येक 4-4 अगुल। कुल लम्बाई 12 अंगुल एवं केश सहित 14 अंगुल (मुखाकृति के अकन की पाश्चात्य प्रणाली भी इसी प्रकार है) मानव आकृति मे चेहरे के अन्य अवयवो के प्रमाण बताते हुए ग्रन्थकार ने नेत्र एव भौंहो के चित्रण पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।



भौंहे 4 अगुल लम्बी तथा दो यव मोटी द्वितीया के चन्द्रमा के समान होती है। नर्तकी, क्रोधी तथा चीत्कार करते हुए पुरुषों की भौहे चापाकार होती हैं। भय तथा शोक में भौंहें नासापुट से निकलती प्रतीत होती है और आधा मस्तक घेर लेती हैं। मध्य भौह से केशो की दूरी ढाई अंगुल होती है।

नेत्रो की लम्बाई दो अंगुल, दोनो नेत्रो के मध्य उतना ही (2 अगुल) अन्तर होना चाहिए। पुतली को नेत्र के एक तिहाई भाग मे अंकित करना चाहिए। नेत्रो को पूरे मुखमण्डल के अनुसार उचित अनुपात में अंकित करना चाहिए। आकार-भेद के अनुसार यहाँ नेत्र पाँच प्रकार के बताये गये हैं—

---

1 इससे स्पष्ट है कि किसी भी मानव आकृति का अनुपात उसके अपने ही अगुल से निर्धारित होगा। उदाहरण-स्वरूप यदि आकृति मे अगुल की मोटाई सूत निर्धारित की गयी है तो आकृति की कुल लम्बाई 108 सूत होगी देखें में मानव सिर के अनुपात से सम्पूर्ण शरीर के प्रमाण के निर्धारण होते है

1. **धनुषाकृति**—राजाओं और ऋषियो के नेत्र बाँस के धनुष के समान होते है।

2. **उत्पलपत्राकृति**—ये नेत्र सामान्य स्वरूप के लिये उपयुक्त हैं। इनकी ऊँचाई छह यव होत है।

3. **मत्स्योदराकृति**—कामियो, कामिनियो तथा भोगवृत्ति की अभिव्यक्ति के लिये इस प्रका के नेत्रो की रचना की जाती है। इसकी ऊँचाई आठ यव (1 अगुल) होती है।

4. **पद्मपत्राकृति**—भयानक भाव की आँखे इसी प्रकार की होती हैं। इसकी ऊँचाई नौ य. होती है।

5. **कटिसदृशाकृति** (कौड़ी के समान)—पीड़ित एवं क्रोधी व्यक्तियों की आँखों का अकन इसी प्रकार करना चाहिए। इसकी ऊँचाई 10 यव होती है।

नेत्र स्फुरित, दुग्धधवल एव रक्तान्त चित्रित करना चाहिए। नेत्रो की पुतली काली और ब' शुभ होती है। दृष्टि 36 प्रकार की होती है।

आगे इसी प्रकार नासिका, ओठ, चिबुक, कपोल, ग्रीवा आदि के प्रमाण तथा उनके लक्षण को बताते हुए ग्रन्थकार का कथन है कि साधारण पुरुषो का मुखमण्डल कैसा भी हो सकता है।

मुखमण्डल के बाद शरीर के विभिन्न अग एवं उपांगों के प्रमाण पर विस्तार से विवेचना की गयी है। कण्ठ, वक्ष, उदर, कटि, नितम्ब, लिंग, जघा, पैर, पंजा, अँगुलियाँ, भुजा, हाथ, हथेली आदि के प्रमाण विस्तार एव आयाम के साथ प्रस्तुत किये गये हैं। इनके आकार-प्रकार तथा शुभ चिह्नो को भी बताया गया है। कहाँ क्या नहीं बनाना चाहिए इसका भी निर्देश दिया गया है।

प्रमाण के बाद विभिन्न अंगो के लक्षण बताये गये हैं। जैसे—दाँत एक जैसे आकारवाले, पास-पास, शुद्ध श्वेत, दुग्ध धवल, मोती जैसे चमकदार बनाने चाहिए। केश बारीक, कुण्डलीकृत, इन्द्रनील की तरह चमकदार, भ्रमर जैसे, अंजन जैसे, मयूर की ग्रीवा के सदृश, कोयल के पक्ष जैसे, एक जैसे वर्णवाले, कन्धों तक फैले, सिंह केसर के सदृश तथा शिखाबन्ध बायीं ओर घुमाकर बनाया गया हो।

इसके बाद विभिन्न आकृतियो यथा—उत्तम पुरुष, मानुषी रूप देवताओं, चक्रवर्ती राजा तथा मनुष्यों के विभिन्न अंगो और उपागों के लक्षण पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है और अन्त मे नारी से उत्पन्न पुरुषों के लक्षण बताते हुए ग्रन्थकार ने इनके पाँच भेद किये हैं। चक्रवर्ती (108 अगुल) के भेद जान लेने के बाद इनमें से किसी की आकृति को बनाया जा सकता है। साधु 106 अगुल, व्यंजक 100 अंगुल तथा गिरिधर का प्रमाण 96 अंगुल होता है। इनके तथा अन्य प्रकार के रूपो के प्रमाण कलाकार को स्वयं स्थिर कर लेने चाहिए। सामन्तों, मध्यवर्गों तथा निम्न जातियो को उन्ही के अनुरूप चित्रित करना चाहिए। स्त्रियों का अंकन पुरुषों के विभिन्न प्रमाणो को ध्यान में रखकर करना चाहिए। नारी आकृति को खड़ी मुद्रा मे समूह में चित्रित करना चाहिए तथा उन्हे पूर्ण यौवन सहित सुन्दर एवं पवित्र दिखाना चाहिए।

यद्यपि तृतीय अध्याय यही समाप्त हो जाता है लेकिन प्रमाण एवं लक्षण के बारे में इतने विस्तार से विचार करने के बाद ऐसा नहीं लगता कि चित्र के अन्य विधि-विधानों पर प्रकाश न डाला गया हो। जो भी हो, इस ग्रन्थ से इतना तो सुनिश्चित ही हो जाता है कि हमारा प्राचीन साहित्य चित्रकला के क्षेत्र में बहुत सम्पन्न था

शिल्परत्न का 'चित्रलक्षण' प्रकरण

'शिल्परत्न' शिल्पशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस बृहद् ग्रन्थ के रचयिता केरल प्रान्त के आचार्य श्रीकुमार थे। यद्यपि यह 16वीं शताब्दी की रचना है लेकिन इसके अध्ययन से प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ प्राचीन शिल्प शास्त्रो तथा आगमों पर आधारित है। शिल्परत्न के श्लोको से विदित होता है कि यह कार्य केरल राज्य क्षेत्र के राजा देवनारायण के संरक्षण में सम्पन्न हुआ जिनकी राजधानी ट्रावणकोर के अम्बालपुझा मे थी।

'चित्रलक्षण' शिल्परत्न के प्रथम भाग का 46वाँ और अन्तिम अध्याय है जिसमे वास्तुकला के अन्तर्गत भित्तिचित्रण परम्परा पर सम्यक् रूप से प्रकाश डाला गया है। शिल्परत्न के प्रथम भाग मे भवन निर्माण, ग्राम्य योजना और उससे सम्बन्धित विषय का प्रतिपादन हुआ है तथा दूसरे भाग के 35 अध्याय मे भू-मानचित्र के बारे मे विस्तृत विवेचना की गयी है। शिल्परत्न मुख्य रूप से वास्तु-विद्या का ग्रन्थ है।

वास्तु विद्या के विशेष सदर्भों से विदित होता है कि अजन्ता के बाद भारतवर्ष की परम्परागत चित्रकला दक्षिण भारत के केरल राज्य मे पुष्पित एव पल्लवित हुई। लगभग दो सौ वर्षों तक यहाँ के कलाकारो ने अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति इस माध्यम से प्रस्तुत किया और यही नहीं, उन्होंने अपनी परम्परागत चित्रण शैली भी स्थापित कर ली थी। केरल में उस समय जो चित्र राजभवनों एवं उपासनागृहों में बने वे इस ग्रन्थ के विधि-विधानों के अनुरूप ही दिखायी पडते हैं। अत: यह सिद्ध होता है कि केरल में उस समय चित्र-परम्परा का जो शास्त्रीय रूप था वही चित्रलक्षण मे लिपिबद्ध हुआ है। इस ग्रन्थ मे नये सन्दर्भों के अनुसार यद्यपि कुछ परिवर्तन एव परिवर्द्धन भी किया गया है फिर भी 'चित्रलक्षण' उत्तर से लेकर दक्षिण तक व्याप्त हमारी प्राचीन चित्रण परम्परा के स्वस्थ स्वरूप की साक्षी है।

'चित्रलक्षण' में चित्र की परिभाषा, विषयवस्तु, गच (पलस्तर) निर्माण और उसका प्रयोग, अस्तर चढाना, चित्रण के लिये बत्ती (Crayan) बनाना, आरम्भिक रेखाकन, रग रीति, तूलिका निर्माण एव उनके प्रकार, विविध प्रकार के रेखांकन, नव स्थान, चित्र के प्रभाव, रंगों को तैयार करना और उनका प्रयोग या उपयोग, माध्यम, रंग मिश्रण, चित्र प्रकार, वर्जित चित्र विषय आदि पर सम्यक् प्रकाश डाला गया है।

चित्रलक्षण मे भित्ति-चित्रण भवन के आन्तरिक एव बाह्य सज्जा के रूप में ही विवेच्य है इसीलिये कहा गया है—

एवं सर्वविमानानि गोपुरादीनि वा पुनः।
मनोहरतरं कुर्यान्नानाचित्रैर्विचित्रितम् ॥

अर्थात्—सभी विमानों (महलों) एवं गोपुरों (मुख्य द्वार) को अत्यधिक मनोहर चित्रो द्वारा अलंकृत करना चाहिए।

चित्र की परिभाषा

संसार में जो कुछ जंगम (चल) अथवा स्थावर (अचल) है उन सब (प्रकृति एवं पुरुष) को उनके स्वभावानुसार चित्रित करना 'चित्र' कहलाता है।

यह चित्र तीन प्रकार के होते हैं जिनके अन्तर ये हैं— जो पूर्णरूप से दृश्यमान हो उसे चित्र के नाम से अभिहित करते हैं दीवार से सलग्न होने के कारण जो आधा ही दिखायी दे उसे अर्द्ध

चित्र कहा गया है और जो चित्रित किया जाता है उसे पहले ही शिल्पवेत्ताओं के द्वारा चित्राभा नाम दिया गया है।[1]

चित्र या अर्द्ध-चित्र मिट्टी, दुधिया मिट्टी (प्लास्टर आफ पेरिस या चाक), कठोर शिला, लोहे या लकड़ी से बनाये जाते हैं। इन द्रव्यों (वस्तुओं) का प्रयोग उसी भाँति करना चाहिए जिस प्रकार देखा-सुना जाता है।

चित्र की विषय-वस्तु

सुधा (चूने) से चिकनी की हुई भित्ति पर उपयुक्त रंग द्वारा चित्रित और युक्ति-युक्त तथा शोभायुक्त विविध वर्णों से भूषित चित्राभास की रचना गृह के अन्दर और बाहर सभी स्थानों पर एक प्रकार से करना चाहिए। यह (भित्तिचित्रण) मंगलकारी कथाओं पर आधारित होना चाहिए तथा स्मृति से निरूपित आकृति से संयुक्त होना चाहिए।

मनुष्यों के निवास-स्थान पर नग्न आकृति, तपस्वियों की लीला, देवासुर संग्राम, मृत्यु तथा दुःख से युक्त विषय का चित्रण नहीं करना चाहिए। भित्तिचित्र आगम, वेद और पुराणों में कही कथाओं से युक्त (अन्वित) होना चाहिए। रूप, रस, भाव और भंगिमा के अनुसार इन चित्रों को विभिन्न उपयुक्त रंगों से चित्रित करना चाहिए जो सन्तुलित हो न कम, न अधिक। यह चित्र चित्रकार और चित्र-प्रेमी (आश्रयदाता) दोनों को अद्‌भुत फल देनेवाला होगा। इसके विपरीत अशुभ चित्र जो बुरे भाव को व्यक्त करते हैं उन्हें दोनों लोकों (इहलोक एवं परलोक) में सुख की इच्छा रखनेवालों को चित्रित नहीं करना चाहिए।

चित्र-भूमि तैयार करने की विधि

ग्रन्थकार ने इस (चित्र बनाने की) प्रक्रिया को मंद भाव से सर्वहिताय बताया है। पहले बताया जा चुका है कि सर्वप्रथम दीवार को चूने से धवलित करना चाहिए और इसी क्रम में कुड्य (प्लास्टर) तैयार करना चाहिए और लकड़ी की आग से जलाकर बनाये गये शंख चूर्ण में बराबर चूना मिलायें। इस सुधा चूर्ण में एक चौथाई मेथी और गुड़ मिलाकर भिगो देना चाहिए। फिर उसमें बालू और एक तिहाई चूना को मिलाकर प्रमाणानुसार समयानुसार पके केले के गूदे को मिलाना चाहिए। इस प्रकार घोल को फिर से चूने के अंश में मिलाकर एक हौदा या नाद में तीन महीने तक भिगोकर बराबर मिलाना चाहिए। जब तक कि वह मक्खन की भाँति मुलायम न हो जाय। फिर उसमें नारियल के जूट को बारीक कर मिलाना चाहिए और फिर गुड़ जल में आधा दिन भिगोकर कन्नी से दीवार पर पलस्तर करना चाहिए। कन्नी का आकार बड़ा और उसके आगे का भाग लोहे का तथा, पिछला भाग काठ का चिकना होना चाहिए। कन्नी की सहायता से दीवार की ऊँचे-नीचे भाग को समतल करते हुए उस सुधा पिष्ट से क्रमशः धीरे-धीरे पलस्तर करना चाहिए। सूख जाने पर नारियल के जूट से रगड़कर शुद्ध जल से धोकर उस पर चित्रानुसार रंग लगाना चाहिए।

काष्ठफलक को बढ़ई द्वारा चिकना (चौरस) करने के बाद ही रंग लगाया जाता है। इस फलक पर चित्रण कार्य हेतु उक्त सुधा लेप नहीं चढ़ाना चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में दृश्यकला के इन तीनों विधाओं का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध था और एक चित्रकार मूर्तिकला, उत्कीर्णन कला और चित्रकला इन तीनों का समान रूप से ज्ञाता होता था

मूल रंग

इसके पश्चात् ग्रन्थकार ने संक्षेप मे रंग का प्रयोग, उसके तैयार करने की विधि और वर्ण-सामंजस्य के बारे में बताया है। उसका कथन है कि सफेद, पीला, लाल और काला शुद्ध वर्ण है और इसी प्रकार नीला (श्याम) रंग भी शुद्ध वर्ण है।

अन्तिम लेप

सुधालेप से पलस्तर करने के बाद सफेदा (White Priming) करना चाहिए। शंख, सीपी का चूर्ण और सफेद मिट्टी के चूर्ण को धूल के समान बारीक कर बुद्धिमान् चित्रकार को अपने सज्ञान के अनुसार उसमें कैथा (Feronia Elephantum) एवं नीम (Margosa) के रस को मिलाने के बाद दीवार या काष्ठफलक पर धीरे-धीरे आलेप करे। तत्पश्चात् शाखोटक (Trophis Aspera) की छाल या केलकी (Pandanus Odoratissimus) के पत्ते का रस बार-बार लगाना चाहिए जब तक कि दीवार की सतह खूब चिकनी न हो जाय।

इसके अतिरिक्त विद्वानों ने एक दूसरी विधि भी बतायी है। उक्त सुधा चूर्ण को ओखली मे डालकर अच्छी तरह मूसल द्वारा बार-बार नारियल के पानी (Coconut Milk) का पुट देकर कूटना चाहिए। फिर उस कुटे-पिसे हुए चूर्ण को गरम पानी से गूँथकर गीला करना चाहिए। फिर पहले बताये गये मार्ग (विधि) के अनुसार (चूना किये गये दीवार के ऊपर) उसे लगाना चाहिए। काष्ठफलक पर इसे नहीं लगाया जा सकता किन्तु मिट्टी (बर्तन या खिलौने) आदि पर यह सम्भव है।

इस प्रकार दर्पण के ऊपरी सतह के समान धवल भित्ति पर चित्र लेखन (Drawing and Painting) का कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। इसी विधि का अनुगमन करते हुए कपड़े एवं फलक पर भी चित्रण किया जा सकता है।

किट्टलेखनी (Crayan) और रेखांकन

पुराने (पकाये गये लाल) ईंट और सूखे गोबर को खरल में डालकर ठंडे पानी से घोंटकर गाढा घोल (Past) बना लें फिर उसमें मोम लगाकर किट्टलेखनी (Crayon) तैयार करनी चाहिए। बत्ती की तरह बनाये गये इस लेखनी की लम्बाई दो, तीन अथवा चार अंगुल होनी चाहिए।

देवता, मनुष्य, जानवर, सर्प, पक्षी, लता, वृक्ष, पहाड़, समुद्र आदि के आकार अथवा देखे या सुने हुए आकारों को मन के द्वारा निश्चित कर उसे किट्टलेखनी द्वारा शुभ मुहूर्त, स्वस्थ चित्त एवं प्रसन्नमुद्रा में बैठकर तथा बार-बार (उस स्वरूप का) स्मरण करके उसे रेखांकित करना चाहिए। जहाँ रेखाकित वस्तु वाम अर्थात् टेढी-मेढ़ी या गलत हो जाय तो उसे नये कपड़े से मिटा कर सम्यक् रूप से समुन्नत कर लेना चाहिए।

रंग बनाने की विधि

पर्वत नदी आदि से लायी हुई पीले रंग की धातु को शुद्ध जल से धोकर, चूर्ण करके तथा पत्थर के ऊपर पीसकर पानी से भरे बर्तन में मुहूर्त भर रखना चाहिए। उस बर्तन में पंक (कीचड़) को छोड़ते हुए ऊपर के जल के सारभूत अंश को निर्मलता प्राप्त होने तक बार-बार साफ करें। अन्त में इसे धूप से सुखाकर रंग तैयार कर लेते हैं। इसी तरह लाल रंग भी बनाना चाहिए। काला रंग नीचे घट (मिट्टी का दीपदान) में तेल की बत्ती का दीप जलाकर तथा ऊपर रखने के घट के आन्तरिक भाग को सूखे गोबर से लेप करके उस घट के उदर में दीपशिखा से

निकले हुए काजल को निकालकर ऊपर कहे गये तरीके से ही तैयार करना चाहिए। इन रंगों क नीम रस के जल से गूँथकर सुखाकर पाउडर बना ले। हरे रंग के लिए श्याम धातु को रात भ जल से भिगोकर कैथे के निचोडे जल द्वारा तैयार किया जाना चाहिए।

तूलिकाएँ

लेखनी (तूलिका) स्थूल (चौड़ी), मध्यमा और सूक्ष्म (पतली) तीन प्रकार की होती है। उसका दण्ड छह यव के बराबर परिमाप में हो। तूलिका आकार से आठ अंश आगे और आठ अंश पीछे के भाग मे वर्तुल होना चाहिए। स्थूल को बछड़े के कान से निकाले हुए बाल के द्वारा मध्यम को बकरी के पेट से उत्पन्न बाल से तथा सूक्ष्म को छछूँदर की पूँछ के अग्रभाग के रोम से उस लेखनी के अग्रभाग में (संयुक्त) जोडना चाहिए। प्रत्येक रंग के लिए तीन-तीन लेखनियाँ तीन प्रकार (स्थूल, मध्य और सूक्ष्म) की होनी चाहिए। इस प्रकार नौ लेखनियो की आवश्यकता होती है।

उक्त सफेद भित्ति पर किट्ट लेखनी (क्रेयान) द्वारा रेखांकित आकृति पर मध्यम तूलिका (लेखनी) से पीले रंग से अंकन करना चाहिये तथा कपडे से सूखे रंग को साफ कर देना चाहिये। पीले रंग के अंकन पर पुन: लाल रंग से सुव्यवस्थित रूप से सुन्दर रेखांकन करना चाहिये।

आकृति-अवस्थिति

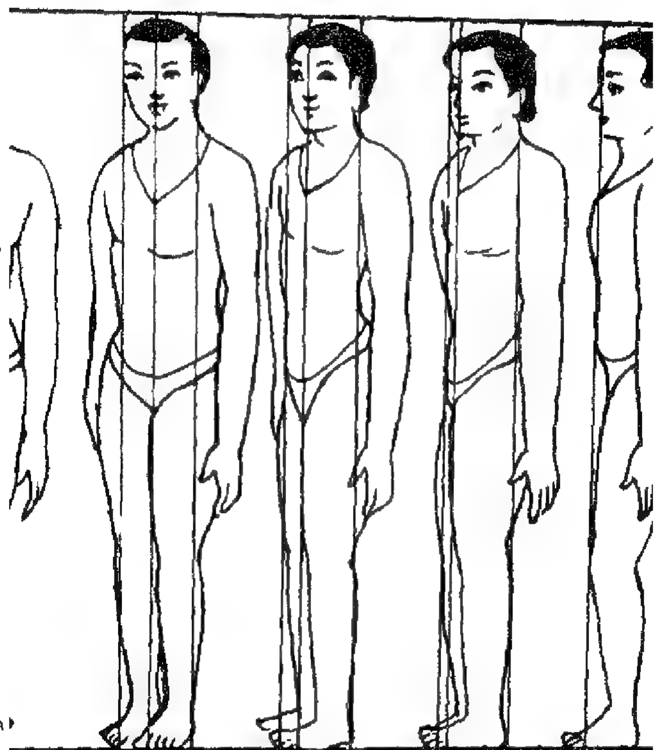
तत्पश्चात् सम्मुख (ऋजु) एवं अन्य आकृतियों के अवस्थिति के अनुसार उनके विशिष्ट लक्षण को बताया गया है। सम्मुख अवस्थित ऋजु, दूसरा अर्द्ध-ऋजु (अर्द्ध सम्मुख), तीसरा साचिक (तिर्यक) और चौथा द्व्यर्धाक्षिक (पहला सम्पूर्ण तथा दूसरा चौथाई भाग दिखने वाला नेत्र) के नाम से जाना जाता है। पाँचवे को पार्श्वगता कहा जाता है। इस प्रकार आकृतियो के मुख्य पाँच अवस्थित उनकी संज्ञा के अनुसार कहे गये है। इस भेद ऋजु आदि के बाद चार प्रकार के परावृत्त (अपाक्ष अथवा पीछे से दिखाई पड़ने वाले) अवस्थितियाँ हैं। इस प्रकार आकृतियों के कुल नौ अवस्थितियों (आकृति भेद) होती हैं।

इसके बाद ब्रह्मसूत्र (आकृति के मध्य की रेखा) की विभिन्नता के आधार पर उनके लक्षण का वर्णन किया गया है। पूर्व-भाग (सम्मुख भाग) ललाट के सामने की अवस्थिति है और परा-भाग (पृष्ठतम भाग) पिछला भाग है। सावधानी से नासिका के अग्रभाग और नाभि के मध्य से होते हुए सिर से पैर तक खीची हुई रेखा ब्रह्म सूत्र (मध्य रेखा) के नाम से जानी जाती है।

'ऋजु स्थान' आकृति के सम्मुख रूप को दिग्दर्शित करती है। जब मध्य रेखा (ब्रह्म-सूत्र) और दोनों बाह्य रेखा (वर्हि-सूत्र) के बीच छह-छह अंगुल की दूरी होती है। इसमें मानव शरीर के सम्पूर्ण सम्मुख भाग को स्पष्ट रूप से दिखाया जाता है और इसके कान-नाक और कनपटी की चौडाई एक अंगुल होती है। प्रत्येक पैर की चौड़ाई एक भाग (4 अंगुल) और उनकी उँगलियो को उचित मान एवं आकार में दिखाया जाय। इसे 'ऋजु स्थान' कहते हैं जिसमें मानव आकृति का पृष्ठभाग (पीठ) नहीं दिखाया जाता।

'अर्द्ध-ऋजु' की व्याख्या उपरोक्त तीन रेखाओं के सदर्भ में किया गया है। इस स्थिति में मध्य रेखा और दोनो ओर की बाह्य रेखा एक ओर 8 अगुल तथा दूसरी ओर 4 अंगुल के अन्तर पर होगा। 4 अंगुल अन्तर की रेखा एक ओर की आँख, कान के बगल और वक्ष के बीच से होते हुए जाँघ भाग से होकर घुटने के एक तिहाई को काटता हुआ पैर के पीछे भाग के अन्त से पैर के अगूठे के मूल तक बनाया जाता है दूसरी ओर की बाह्य रेखा वक्ष के चचक के बाद भाग

ाँघ के 1/5 भाग को काटते हुए यह रेखा घुटने के मध्य से होती हुई अगल
रे पैर के पदाग्र तक आती है। यह बाह्य रेखा की स्थिति है और मध्य
ं भौंह के बीच से नाक के अग्रभाग को छूता हुआ, नाक विवर से बाहर,
तथा लिंग के बीच मे से नीचे जाता हुआ अगले पैर को एँड़ियो को छूत
प्रकृति है। सभी अंगो को विधिवत सयोजित किया जाय। यह 'अर्द्ध-ऋजु



विभिन्न आकृतियों के अवस्थित भेद

स्थान' में बीच की रेखा से दो अन्य रेखाओ के एक किनारे की रेखा दस
ं दूसरी दो अंगुल की दूरी पर नजदीक ही हो। किनारे की पहली रेखा मस्त
भाग को छूता हुआ गाल से कन्धे के किनारे से होता हुआ एक अगुल के
आधा अंगुल की दूरी पर नाभि से स्पष्ट रूप से जाँध के जोड के बाहरी कि
से निकलता हुआ पैर से होता हुआ दूसरे पैर के अँगूठे के मूल तक
खा सीमान्त (माँग) से दोनों भौंह के बीच से होकर नासाविवर के बीच
ीछे से नाभिरन्ध्र के मध्य से अण्डाशय के बाहरी भाग से घुटने के गोल (मा
क क्रम से ब्रह्मसूत्र बनाना चाहिए। तीसरी बाह्य रेखा मस्तक के पीछे से, व
से, कन्धे के जोड़ के गड्ढे से, वक्ष प्रदेश के ऊँचे भाग चूचुक मण्डल के ब
क्ष के बीच से दो अगुल छोडकर कलाई से होता हुआ एँड़ी के पीछे तक।

'द्व्यार्धाक्षिक स्थान' में मध्य रेखा के एक तरफ एक अगुल का अन्तर और दूसरी तरफ ग्यारह अंगुल के अन्तर पर रेखा क्रम से होनी चाहिए।

एक अंगुल किनारे की रेखा को केशान्त से, नाक के अग्रभाग से, काँख मे, और नाभि से होते हुए घुटने के बीच से पैर के अँगूठे की जड तक समाप्त हो।

मध्य (ब्रह्मसूत्र) रेखा केश के बीच से होकर भौंहो के मध्य से, मूँछ प्रदेश से एक अगुल हटकर, काँख से होते हुए, नाभि से, अण्डाशय के निकट से एक अगुल छोडकर, पीछे छिपे हुये पैर के अँगूठे के ऊपरी प्रदेश से (तलवे के ऊपर से) तथा छोटी ऊँगली के जोड तक बनानी चाहिए। दूसरी समीपस्थ रेखा (वाह्य रेखा) सिर से होकर पीठ से निकलता हुआ कलाई से तर्जनी को छूता हुआ सामने के पैर के एँड़ी के पास समाप्त हो।

भित्तिक स्थान में दो ही रेखा होती है। ब्रह्मसूत्र दिखायी नही देती। पीठ के ऊपर से वैसे ही कन्धे पर से कुहनी से लेकर एँडी के पीछे के समीप तक होती है। दूसरी रेखा ब्रह्मसूत्र से फाँसल से सिर के अन्त से सामने तीन यव (3/8 अगुल) होनी चाहिए। नाक की जड दो यव (1/4 अंगुल) के फाँसले से, मूँछ प्रदेश की परिकल्पना एक यव (1/8 अगुल), मुँह के बीच की रेखा आधा यव 1/2 (1/16 अंगुल) ठोढ़ी से एक अगुल, ठोढ़ी की गोलाई से पाँच यव (5/8 अंगुल) ठोढ़ी की गोलाई का नाप 2 अंगुल और गले के जोड़ से 1 अंगुल की दूरी पर मध्य रेखा (ब्रह्मसूत्र) खीचनी चाहिए। वक्ष के लाल चूचुक प्रदेश से अण्डाशय के अग्रभाग की जड से होता हुआ दो अंगुल कूर्च (घुटना और जाँघ का मध्य भाग) के मध्य से पक्षसूत्र बनाना चाहिए। दूसरी पक्षसूत्र (अन्य किनारे की रेखा) को हथेली के फाँसले से एक गोलक (2 अंगुल) से अधिक तथा भुजा की जड़ की दूरी 2 अंगुल और हथेली को दो अंगुल होना चाहिए। भुजा के बीच के प्रदेश को 5+9=14 यव 16/8 से अधिक या कभी-कभी आधा अंगुल और बढ़ाकर किया जा सकता है। कमर और नितम्ब की रेखा दो अंगुल, नितम्ब को तीन अंगुल, कमर के ऊपर की रेखा को चार अंगुल बनाना चाहिए। यह रेखा कोहनी से कमर के निकट से होते हुए कांची से दो अगुल और जंघा से तीन अंगुल बनानी चाहिए। नितम्ब के ऊपरी प्रदेश से चार अगुल स्फिज मण्डल (नितम्ब के घेरे में) 1 यव बनाना चाहिए। नितम्ब के नीचे का भाग एक अंगुल अथवा उससे अधिक दूरी पर जांघ के बाहर से रेखा को बनाना चाहिए। जाँघ की रेखा घुटने के जोड को छूकर जब नीचे की ओर (घुटने और टखने के बीच) हो तब दो अगुल घुटने की जोड़ से अधिक हो। घुटना और टखना के बीच का स्थान केवल दो यव ऊपर होना चाहिए।

यदि आधा अंग प्रदर्शित किया जाय तो आधा अंग चित्रभूमि के भीतर मान लेना चाहिये।

वर्ण विधान

रेखांकन के उपरान्त रंग भरने चाहिए तथा निम्नोन्नत आदि विशेषताओ को छाया-प्रकाश तथा कोमल-कठोर प्रभाव सहित विन्यस्त करके मनोहर चित्र रचना करनी चाहिए। किसी वर्ण को पतला भरने से उज्ज्वलता तथा गाढ़ा भरने से हल्की श्यामता आ जाती है। पीले रंग मे श्यामता के लिए लाल रंग का प्रयोग होता है। बाहरी रेखा काले रग की अत्यन्त महीन रेखा से बनानी चाहिए। नख आदि के स्थान पर रंग को छूरी से खुरच देते हैं।

सिन्दूर हल्का लाल, गेरू मध्य लाल तथा लाक्षारस (लाछ का रस) गहरा लाल होता है। गेरू तथा सिन्दूर को पत्थर के ऊपर पीसकर जल मिलाकर गाढा कर ले। मनशिला पीली होती है इसको गाढा करने के लिए बिना जल के पीसे जल मिलाकर पाँच दिन रख दे

नीम का जल डालकर और अच्छी तरह से मिलाकर लेप तैयार कर चित्रण प्रारम्भ करना चाहिये।

सुवर्ण का रग बनाने के लिए बारीक स्वर्णपत्र (सोने के तबक) को पानी तथा बालू के साथ धीरे-धीरे घोटना चाहिए। बार-बार गंदा जल और बालू का अश धोकर शुद्ध जल मिलाते रहने से अन्त में बारीक सुवर्ण-पक अत्यन्त उज्ज्वल हो जायगा। इसे वज्रलेप में मिलाकर उचित लेखनी (ब्रश) से चित्रित करे। चित्र के ऊपर स्वर्ण सूख जाने पर उसे शूकर दन्त से घोटकर प्रभायुक्त कर देना चाहिए अथवा जहाँ-जहाँ सुनहरा रग लगाना हो वहाँ वज्रलेप लगाकर कोमल स्वर्णपत्र को दृढता से लगा दे फिर उसे कपडे से अच्छी तरह माँजकर चमका देना चाहिए।

वज्रलेप माध्यम

वज्रलेप बनाने के लिये भैंस के चमड़े को जल में उबालकर नवनीत के समान मुलायम कर लेना चाहिए उसके पश्चात् इसकी छोटी-छोटी गोलियाँ बनाकर तेज धूप में सुखा लेनी चाहिए। प्रयोग के लिये इन्हें गरम जल में घोलकर रग मे माध्यम के रूप मे मिलाते हैं। कैथा और नीम से निकले हुए गोंद को भिन्न-भिन्न रगों मे मिलाना चाहिए।

मिश्रित रगतें

एक-दूसरे के योग से उत्पन्न भिन्न-भिन्न रंग-भेद इस प्रकार बताये गये हैं। सफेद और लाल रग के मिलाने से गौर छवि (fair rosy Colour) होती है। सफेद, काला और पीला को बराबर भाग मे मिलाने पर विख्यात रंग शारछवि (हरा)रग बनता है जो रग निर्माता (चित्रकार) को सुख प्रदान करता है। समान मात्रा में सफेद और काला मिलाने पर गजवर्ण (elephant gray) बनता है। लाल और पीला रग मिलाने से बकुल फल (Mimusops Elengi) की तरह रग बनता है। अग्नि की तरह कान्तिवाला यह अग्निवर्ण बहुत प्रसिद्ध है। पीले मे दोगुना लाल रग (एक भाग पीला और दो भाग लाल) मिलाने पर अति-रक्ता (bright red) रग बनता है। सफेद मे दो गुना पीला मिलाने पर ख्याति प्राप्त पिंगला (towny भूरा पीला) रग तैयार होता है। काले मे दो गुना पीला मिलाने से जल का रंग तैयार होता है और इसी तरह मनुष्य का वर्ण होना चाहिए जो काले एवं पीले को बराबर मात्रा में मिलाने से बनता है। हरताल (yellow orpiment) में नीला रग मिलाने से सुआपखी (Parrot green) रग बनता है। लाक्षारस (Lac-dye) मे ईगुर (Vermilion) मिलाने से अति-रक्ता (गहरा लाल) रग बनता है। लाक्षारस मे कृष्ण रग मिलाने से जामुनी, लाक्षारस मे श्वेत मिलाने से जातिलिग (जायफल) रग और इसी मे सिदूर भी मिला देने पर उत्तम रग तैयार होता है। काले और नीले वर्ण के सम्मिश्रण से केश का रग बनता है। इस प्रकार मिश्रित रगो का युक्तिपूर्वक संयोजन करके चित्र बनाना चाहिए। केवल चूने से पुती हुई दीवाल मे इन मिश्रित रंगो का प्रयोग कुशल कलाकार नहीं करते।

रसचित्र एवं धूलिचित्र

चित्र लेखन की दो विधाएँ निरूपित हैं—रसचित्र एव धूलिचित्र। सभी प्रकार के रंगो को अलग-अलग चूर्ण (पाउडर) करके उनके द्वारा अस्थायी रूप मे भूमि पर बनाये गये मनोहारी आलेखन को प्राचीन चित्रकारो ने धूलिचित्र के नाम से प्रतिपादित किया है।

चित्र (रसचित्र) वही अत्यधिक विख्यात होता है जो केवल आकार के रूप में रेखांकित न किया गया हो वरन् वह दर्पण के प्रतिबिम्ब के समान सादृश्यवाला हो और जिसके देखने से शृगार आदि भाव को हृदयगम किया जा सके इस प्रकार के लक्ष्य और लक्षण से युक्त (जिस भी

स्वरूप को चित्रित किया जाय उसके समस्त लक्षण उसमें व्याप्त हों) चित्र को घरों, भवनों एवं अन्य स्थानों की भित्ति पर चित्रित करना चाहिए।

चित्र प्रत्येक दृष्टि से सुन्दर एवं मनोहर होना चाहिए।

अन्त में ग्रन्थकार कहता है कि श्री देवनारायण की इच्छा के अनुसार चित्ररत्न के प्रथम भाग के छियालीसवें अध्याय को साधारण जन के पथ प्रदर्शन के लिये लिखा गया है। भिन्न-भिन्न ग्राम, देवालय और मानव निवास (घर) आदि के उपर्युक्त लक्षणों के पूर्ण प्रदर्शन से सभी विद्वान् सन्तुष्ट हों यही कामना है।

इस प्रकार शिल्परत्न का छियालीसवाँ अध्याय 'चित्रलक्षण' समाप्त होता है जिसे भार्गव गोत्र में उत्पन्न श्रीराम के पुत्र एवं श्री देवनारायण राज चूड़ामणि के पाद सेवक श्रीकुमार द्वारा लिखा गया।

अन्य ग्रन्थ

इसके अतिरिक्त हरवंशपुराण, अग्निपुराण, मत्स्यपुराण, स्कन्धपुराण, गरुणपुराण और पद्मपुराण आदि ग्रन्थो मे जगह-जगह चित्रकला की चर्चा मिलती है। पुराणों की अनेक कथाओं में शिल्प एवं कला विषयक प्रचुर सामग्री इनके अध्ययन एवं अनुशीलन के द्वारा हमे प्राप्त हो सकती है।

□□



6

प्राच्य कल (Oriental Art)

भारतीय चित्रकला का अध्ययन तब तक सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता जब तक कि उसके सिद्धान्तों, उच्चादर्शों और मान्यताओ को ग्रहण करनेवाले समस्त पूर्वीय देशों की प्राच्य कलाओ का अध्ययन न किया जाय। भारत से निरंतर प्रवाहित होनेवाली कलाधारा ने इन देशों की चित्रकला को अपने विशिष्ट योगदान से समृद्धशाली बनाया है। लंका, जावा, श्याम, कम्बोडिया, बरमा, नेपाल, खुतन, तिब्बत, अफगानिस्तान, कोरिया, चीन और जापान आदि देशो मे भारतीय सस्कृति और कला के उच्चादर्शों, सिद्धान्तों तथा मान्यताओं को ग्रहण कर अपने देश की कला को समुन्नत किया। बौद्ध धर्म के उदय और विकास के बाद इन देशों में बौद्ध धर्म का प्रभाव बढा और चित्रकला के माध्यम से इसने सुदूर पूर्वीय देशों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। विशेष रूप से चीन एव जापान में बौद्ध धर्म के प्रचारकों ने मानव प्रेम, अहिसा और शान्ति का सदेश जन-जन तक पहुँचाया। इस प्रकार बौद्ध कला के माध्यम से हमारी सांस्कृतिक एव कलात्मक चेतना सुदूर देशो तक पहुँची जिसने कई शताब्दी तक अपना प्रभाव बनाये रखा और आज भी उन संस्कृतियों में बीज रूप में भारतीय धर्म एव दर्शन का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है।

प्राच्य सस्कृति में सबसे अधिक समृद्ध और विकसित चीन और जापान की कला है जिसके अध्ययन से हमें अपने अतीत का गौरव-बोध होता है।

चीनी चित्रकला

पृथ्वी की सकल संरचना एवं उत्पत्ति के बारे मे विभिन्न संस्कृतियों मे अलग-अलग परिकल्पनाएँ की गयी हैं। चीनी परिकल्पना भारतीय मान्यताओं के बहुत करीब होते हुए भी थोडी भिन्न है। चीनी लोक किवदन्ती के अनुसार पुरा प्राचीनकाल में ब्रह्माण्ड की आकृति एक विशाल पिण्ड (अण्डे) के आकार की थी। एक दिन उक्त पिण्ड में विस्फोट हुआ और उसके दो भाग हो गये। फलस्वरूप ऊपरी भाग आकाश और नीचे का भाग पृथ्वी बन गया। इसके मध्य से एक अद्‌भुत महामानव (वीर) पान-कू (P'an Ku) उत्पन्न हुआ जिसकी लम्बाई प्रतिदिन 10 फीट बढ़ जाती थी। इस तरह उसके बढ़ने से आकाश की ऊँचाई प्रतिदिन 10 फीट बढ जाती थी और पृथ्वी की मोटाई भी 10 फीट अधिक हो जाती थी। अठारह हजार वर्ष बाद उसका देहान्त हो गया। उसका सिर ऊपर उठा और दो भागों में विभक्त हो सूर्य एव चन्द्र बना। उसके रक्त से नदियाँ एव समुद्र तथा केश से जंगल एवं घास के मैदान बने। उसके स्वेद-बिन्दु ने वर्षा का रूप ग्रहण किया और श्वास वायु बन गयी। स्वर गर्जन तथा जुएँ पूर्वज बने। इस प्रकार पान-कू को चीनवासी आदिपुरुष और सृष्टि का प्रतीक मानते हैं जिसे चीनी दार्शनिक 'ताओ' के नाम से

अभिहित करते हैं जिसने प्रकृति के समस्त उपादानो की सृष्टि की। प्र
उसी का रूप व्याप्त है इसीलिए चीनी कला मे प्रकृति निरूपण का ि
महामानव (वीर) एवं सम्राट् फू-झी (3,000 ई पू) ने प्रकृति के आठ
जब, अग्नि, वायु, गर्जन, कुहरा एवं पर्वत को खोज निकाला जिनसे स
दर्शन के अनुसार स्वर्ग को पिता और पृथ्वी को माता माना जाता है
का आविष्कार हुआ जो चित्रकला से विशेष रूप से जुड़ा हुआ था।

चीनी चित्रकला का काल विभाजन इस प्रकार है—

प्रागैतिहासिक काल (Pre-Historic Period)

1 पुरा पाषाण काल (Palaeolithic) 4,00,000 से 10,000 ई. पूर्व
2. मध्य पाषाण काल (Mesolithic) 10,000 से 2500 ई पू तक
3. नूतन पाषाण काल (Neolithic) 2500 ई पू से 1560 ई पू. तक

निर्माण काल (Formative Period)—1600 ई. पू. से 220 ई तक

1 शांग-यिन वंश (shang-yin Dynasty) 1600 से 1027 ई पू. तक
2 चाऊ वंश (Chou Dynasty) 1027 से 256 ई पू.
   (i) पश्चिमी चाऊ (Western Chou) 1027 से 722 ई पू
   (ii) वसंत एवं पतझड़ युग (Spring & autumn period) 722 स
   (iii) युद्धरत रियासते (Warring States) 481 से 221 ई. पू
3 च' इन अथवा चिन वंश (Ch' in Dynasty) 221 से 207 ई पू
4 हान वंश (Han Dynasty) 202 से 220 ई तक
   (i) प्राचीन हान (Former Han) पश्चिमी 202 ई पू. से 9 ई
   (ii) शीं हान (Hsin Han) 9 से 23 ई तक
   (iii) उत्तरार्द्ध हान (Later Han) पूर्वी 24 से 220 ई तक

थम उत्थान काल (First Development Period)—220 ई से 5

1. तीन राजवंश (Three Kingdoms) 221 से 265 ई. तक
   (i) शू (हान) राज्य (Shu-Han) 221 से 263 ई. तक
   (ii) वी राज्य (Wei) 220 से 265 ई. तक
   (iii) वू राज्य (Wu) 222-280 ई तक
2. छह वंश (Six Dynasties) दक्षिणी—265 से 587 ई तक
   (i) चिन वंश (Chin Dynasty) 265 से 316 ई. तक
   (ii) पूर्वी चिन वंश (Eastern Chin Dynasty) 317 से 420 ई .
   (iii) लीऊ शुग वंश (Liu Sung Dynasty) 420 से 479 ई. तक
   (iv) दक्षिणी ची वंश (Southern Chi Dynasty)—479-509 ई
   (v) लियांग वंश (Liang Dynasty)—502 से 557 ई तक
   (vi) च एन वंश (Ch en Dynasty)—557 से 587 ई तक

3 उत्तरी वंश (Northern Dynasties)—386 से 581 ई तक

(i) उत्तरी वी वंश (Northern Wei Dynasty)— 386 से 535 ई. तक

(ii) पूर्वी वी वश (Eastern Wei Dynasty)—534 से 543 ई, तक

(iii) पूर्वी वी वश (Eastern Wei Dynasty)—535 से 554 ई, तक

(iv) उत्तरी ची वश (Northern Chi Dynasty)—550 से 577 ई तक

(v) उत्तरी चाऊ (शीं-पी) वंश (Northern Chou (Hsien-P) Dynasty)—5 ई तक

धार्मिक व दरबारी चित्रण का युग (Religious & Court Painting)—581 से 90

1. सुई वश (Sui Dynasty)—581 से 618 ई. तक

2. टाग वश (T'aung Dynasty)—618 से 906 ई तक

प्रौढ़ता एव सन्तुलन का युग (Maturity and Balance Age)—907 से 1279 ई त

1 पॉच राज्य वंश (Five Dynasties)—907 से 960 ई तक

(i) गत लियाग वश (Later Liang Dynasty)—907 से 922 ई तक

(ii) गत टांग वंश (Later Taung) (Turkie)—923 से 936 ई. तक

(iii) गत चिन वंश (Later Chin Dynasty)—936 से 949 ई तक

(iv) गत हान वश (Later Han Dynasty)—946 से 950 ई तक

(v) गत चाऊ वंश (Later Chou Dynasty)—951 से 960 ई तक

2 शुग वश (Sung Dynasty)—960 से 1279 ई तक

(i) उत्तरी शुंग (Northern Sung)—960 से 1126 ई तक

(ii) दक्षिणी शुग (Southern Sung)—1127 से 1279 ई. तक

परिवर्तन काल (Transition Period)—1279 से 1368 ई तक

1 युआन वंश (मगोल) (Yuan Dynasty)—1260 से 1368 ई. तक

प्रौढ़ता व विद्वत्ता का युग (Predominance of the literate)—1368 से 1644 ई त

1 मिंग वंश (Ming Dynasty)—1368 से 1644 ई तक

पश्चिमी प्रभाव युग (Western Impact)—1644 से 1912 ई तक

1 च' इंग वंश (मानचस) (Ch'ing Dynasty (Manchus)—1644 से 1912 ई. तक

गणराज्य (The Republic Period)—1912 से 1949 ई तक

स्वतन्त्र जनवादी गणतंत्र (वर्तमान काल)—1949 से अब तक

प्रागैतिहासिक काल के चीनी कला के उदाहरण अभी हाल ही में उपलब्ध हु गुनर एण्डरसन (J Gunner Anderson) ने पीकिंग के उत्तरी-पश्चिमी भाग में चाऊ- Cho-K'ou-tien) स्थान पर एक गुफा सन् 1921 में खोज निकाला जिसमें मानव ह ननगढ़ उपकरण (Flint tools) मिले हैं। ये उपकरण आदि मानव के सृजनात्मक प्रोतक हैं शासी (Shansi और होनान (Honan) में लाल रंग से चित्रित ; जिन पर काले रग से आलेखन बनाये गये हैं सन् 1923 में महोदय ने का

आद्यैतिहासिक क्षेत्रो की खोज की जो 2500 ई पू से लेकर चाऊ काल तक के चीनी सभ्यता के विकास की कहानी कहते है। प्रारम्भिक चीनी सभ्यता सिन्धुघाटी की सभ्यता, मेसोपोटामिया एव नील घाटी की सभ्यता से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। यहाँ से बडी मात्रा मे चित्रित पात्र मिले हैं जो ताम्रयुग तक आते-आते अदृश्य होने लगते है। चीन की आदि कालीन सभ्यता बहुत प्राचीन है और अभी भी बहुत-सी वस्तुए पृथ्वी के गर्भ मे छिपी पडी है जिनके उद्घाटन मे आद्येतिहास एव इतिहास की कडियाँ जुड़ेंगी।

शांग-यिन वंश के कलात्मक अवशेषो मे प्राय: ज्यामितीय अलंकरणो एव आलेखनों से युक्त पात्र ही मुख्य है। इन पात्रो पर स्थानीय मिट्टी के रग का ही प्रयोग किया गया जिसमे काले, लाल तथा बादामी रंग की अधिकता है। इन पर चमकदार पालिश भी की जाती थी। सीग एव हड्डियों पर भी कुछ अकन दिखायी पड़ता है जिन्हे देखने से आभास होता है कि ये लोग भूत-प्रेत एव जादू-टोना मे विश्वास करते थे।

चाऊ वंश का शासनकाल चीन के इतिहास मे सबसे लम्बा माना जाता है। इस काल को चीन की राष्ट्रीय सस्कृति में शास्त्रीय युग कहा जाता है। शांग वश के पतन के बाद वू (Wu) का उत्तराधिकारी चेन-वांग (Chen-wang) चाऊ सम्राट् (Duke of Chou) के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिसे चाऊ-कुंग (Chou-kung) भी कहा जाता है। अत्यधिक चमकदार बर्तन इस युग की विशेषता है। चाऊ राज्य दो क्षेत्रो मे फैला था। पूर्वी एवं पश्चिमी क्षेत्र की शक्ति क्षीण होने पर इस काल को पतझड़ और वसत काल (Autumn and Spring period) कहा गया, जिसे चाउन-च-ई (Choun-ch-in) भी कहते हैं। इस युग मे स्थापत्य कला को विशेष सम्मान मिला। सगमरमर की मूर्तिकला को भी प्रश्रय प्राप्त हुआ। पतझड और वसन्त काल के बाद चाऊ वंश छोटी-छोटी रियासतों में बँट गया जिसके अन्तर्गत लघु-कला (Minor Art) को बढावा मिला। इस युग मे ब्रश से चित्रकारी का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। यह ब्रश बाँस की कोमल शाखा को बारीक पीटकर बनाया जाता था। सिल्क पर डिजाइन एव विविध आकृतियों का चित्रण किया जाता था। पात्रो पर भी चित्रकारी के सुन्दर उदाहरण मिले हैं। इस युग में कनफ्यूसियस (Confucius) के सिद्धान्तो पर जोर दिया गया। कनफ्यूसियस चाऊ काल का महान् दार्शनिक था जिसने चीनी सभ्यता के समस्त मूल सिद्धान्तों को लेकर विचार किया और उन्हें एक सूत्र मे पिरोकर अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। कविता को चित्रकला की सहायक कला माना और साहित्यिक चित्रकला (Literary Painting) का विकास किया। यद्यपि कनफ्यूसियस ने सौन्दर्य की अपेक्षा नैतिकता पर अधिक बल दिया फिर भी कला को मानवीय प्रकृति पर लाभदायक प्रभाव डालनेवाली कहकर उसने कला के महत्त्व को प्रतिपादित किया। इस प्रकार इस युग मे चित्रकला को एक नवीन एव सम्मानजनक पद प्राप्त हुआ।

च' इन वंश (Ch'in-Dynasty) के प्रथम सम्राट चेग (Cheng) ने चाऊ वश की सुदृढ़तर रियासतों के छिन्न-भिन्न होने पर अपनी शक्ति को बढ़ाया तथा उन पर अधिकार कर लिया और उन्हें संगठित कर सी-याग (Hsien-yang) को राजधानी बनाया। यह सम्राट् च' इन शीह-हुगटी (Ch'in Shih-hungti) के नाम से प्रसिद्ध है। उसने अपने स्वामिभक्त मंत्री ली-स्सू की सहायता से साम्राज्य को शक्तिशाली एव सुदृढ बनाया। उत्तर की ओर से हूणों के आक्रमण को रोकने के लिए उसने विश्वप्रसिद्ध चीन की दीवार का निर्माण कराया जिसकी गणना विश्व के आश्चर्यों मे की जाती है उसने सत्ता का [illegible] करके अत्यन्त कठोरता के साथ शासन किया यहाँ

तक कि वह चाहता था कि उसके पहले के शासको को लोग भूल जायँ और केवल उसे ही याद रखे। इस हेतु उसने समस्त प्राचीन ग्रन्थ को जलवा दिया और उनकी चर्चा करनेवालो के लिए मृत्यु-दण्ड घोषित कर दिया। इस प्रकार एक सुगठित राष्ट्र की स्थापना कर वह एक निरंकुश शासक बन बैठा। इस सम्राट् ने अपनी राजधानी मे अनेक विशाल भवनो का निर्माण कराया जिनमे से अधिकाश नष्ट हो गये हैं। इस युग का महान् शिल्पी मेग्थियन था जिसे लिखने की तूलिका का आविष्कारक कहा जाता है। इसके प्रभाव से लेखन-शैली मे परिवर्तन हुआ और चित्रांकन शैली मे भी बदलाव आया। 210 ई. पूर्व मे इस सम्राट् की मृत्यु हुई। उसके बाद उसका पुत्र तीन वर्ष बाद मारा गया और यह शासन विद्रोही शासक हान के हाथ मे आ गया।

हान शासन काल को दो शासनकाल मे विभाजित किया जाता है पश्चिमी और पूर्वी। इसके मध्य 09 ई० से 24 ई० तक चिन युग भी माना जाता है। हान शासको ने पुनः सामन्तशाही की स्थापना की और प्राचीन परम्पराओं को पुनर्जीवित किया। हान शासक वेन-टी (Wen-Ti) ने साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने का प्रयत्न किया और अन्य देशों से व्यापारिक सम्बन्ध बनाया। तथा कला-कौशल के उन्नयन के लिए प्रयत्न किया। इसकी मृत्यु के पश्चात् सन् 09 ई. वाग-येग बलपूर्वक शासक बना लेकिन 25 ई मे उसकी हत्या हो गयी। इस प्रकार हान शासन पुन स्थापित हुआ और ताओवादी व्यक्तिवाद का उदय हुआ। इस युग में स्थापत्य कला के साथ भित्ति-चित्रण को महत्त्व प्राप्त हुआ। रीलीफ आकृतियाँ में चीन की प्राचीन घटनाओं, मिथको लोक-विश्वासो तथा लोक-गाथाओं के चित्रण किये गये जिनमें कनफ्यूसियस के आदर्शों के अनुरूप भावाभिव्यक्ति की गयी। ये आरम्भिक रीलीफ (उभरे हुए चित्र) सपाट-द्वि-आयामी है। यहाँ के मकबरो से हानकालीन भित्ति-चित्र प्राप्त हुए है जिनके भाव व्यजंना में विविधता है। हान युग मे कागज का आविष्कार हो चुका था किन्तु चित्र रेशम के पटों पर ही अंकित होते थे जिन पर पाठ सामग्री लिख दी जाती थी। इस प्रकार की अधिकांश कृतियाँ नष्ट हो चुकी हैं। हान युग मे ही बौद्ध धर्म ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी मे चीन पहुँच गया था जिसे चीनी जनता ने अपने विश्वासो एवं मान्यताओं के अनुसार परिवर्द्धित एव परिवर्तित कर लिया था। जन-मानस मे कला के प्रति विशेष लगाव जागृत हो चुका था जिसके विकास हेतु वे प्रयत्नशील हो चुके थे।

चीन का प्रथम उत्थान काल सन् 220 से 581 ई० तक माना जाता है जिसमे तीन राज वश, छह वश और उत्तरी वश को सम्मिलित किया जाता है। हान-वंश का पतन जब लगभग 220 ई० मे हुआ उस समय चीन तीन राज्यो (Kingdoms) शू (Shu), वी (Wei) एव वू (Wu) मे विभाजित हो गया जिसे 280 ई० में पुनः सम्राट् वी (Wei) ने संगठित किया और अपने वंश (Dynasty) को चिन (Chin) नाम से अभिहित किया। इसके बाद चीन के विभिन्न भागो पर छह राजवंशों ने 265 से 587 ई० तक शासन किया। दक्षिणी भाग 'स्वतंत्र चीन' कहा जाने लगा जिसकी राजधानी नानकिग (Nanking) थी। यह नगर उस समय सभ्यता एवं राजनीति का केन्द्र समझा जाता था। यहाँ भारत से सौदागर आने लगे थे जिन्होने अपने धर्म का प्रचार-प्रसार यहाँ किया। कहते है ईसा की प्रथम शती में बौद्ध धर्म दक्षिण चीन सागर की ओर से यहाँ आया। दूसरा मत है कि युन्नान एव स्जेच्वान होकर व्यापारिक मार्ग से चीन पहुँचा। यहाँ बौद्ध ग्रन्थो का चीनी भाषा मे अनुवाद हुआ। ईसा के दूसरी शती में बौद्ध अनुयायियों का एक समूह गठित हो गया। जब हान शासन के पतन के पश्चात् रक्तरजित युद्ध हुआ उस समय बौद्ध धर्म ने अपनी शान्ति और अहिंसा की नीति के कारण अपनी जड़ें यहाँ जमा लीं धीरे धीरे बौद्ध धर्म चीनी विशेषताओ के साथ

सहायता प्रदान की और चीनी चिन्तन एवं धार्मिक भावना ने इसे अपनी तरह से आत्मसात् कर लिया। अत. बौद्ध धर्म का विकास यहाँ चीनी परम्परा एवं भावना के आधार पर हुआ जिसका अपना एक अलग स्वरूप था। इस समय पूर्व निर्मित 'ताओ' आकृति बौद्ध आकृति पर अपना प्रभाव बनाये हुए है। 338 ई० में यहाँ बुद्ध की प्रथम कास्य मूर्ति बनायी गयी जिस पर गांधार प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। भारत में बौद्ध गुहा मदिरों क अनुकरण पर तुन-ह्वांग से मचूरिया तक गुहा मदिर बनाये गये। तुन–ह्वांग चीन का प्रवेश–द्वार है। यहाँ उत्तम चित्रों के साथ उत्कृष्ट मूर्तिशिल्प भी दृष्टिगत होता है। फिग–लिंग–सू का निर्माण छठी शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। कानसू प्रान्त में वेग–शू–शान मे बने गुहा–मदिर के स्तम्भों पर 439 एव 434 की तिथियों सहित सूत्र उत्कीर्ण हैं। थिएन–थी–शान की गुहाएँ लगभग इसी समय बनीं। 439 मे यून–काग के गुहा–मंदिर का निर्माण प्रारम्भ हुआ। इन सभी गुहा–मदिरो के स्थापत्य में भारतीय प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित किया जा सकता है। तुन ह्वाग गुहा–मंदिर को चीन का अजन्ता कहा जाता है जिसका निर्माण ईसा की चौथी शती मे प्रारम्भ हुआ और इसका निर्माण चौदहवी शताब्दी तक होता रहा। यहाँ कुल गुहाओं की सख्या 486 है। इसके प्रारम्भिक 32 गुहा–मंदिर सबसे प्राचीन हैं। सातवीं शती के एक लेख द्वारा यह प्रमाणित होता है कि एक मठ का निर्माण यहाँ भारतीय बौद्ध भिक्षु द्वारा कराया गया था। तुन ह्वांग में मूर्तिकला की अपेक्षा चित्रकला का प्राधान्य है। यहाँ विशाल चित्र संयोजन किये गये जिनमे स्पष्टता एव सुव्यवस्था दिखायी पडती है।

उत्तरी चीन में यून–काग गुहा–मदिरो का निर्माण 'वेइ' राजवश ने कराया। ये गुहाएँ अत्यन्त भव्य हैं। इसके अतिरिक्त सिन च्याग प्रान्त मे हेशीर बुद्ध गुहा–मदिर बने जिनमे छठी एव सातवीं शताब्दी का चित्राकन प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त इस समय निर्मित रेशमी–पट–चित्र, पात्र–कला, पट-चित्र के अनेक उदाहरण प्रकाश मे आये हैं जिससे इस युग की चित्रकला पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। यहाँ चित्रकला सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ भी उपलब्ध हुए हैं जिनसे चित्रकला के विधि–विधान की अच्छी जानकारी प्राप्त होती है। इस समय कला ने पूर्ण प्रौढ़ता प्राप्त करली थी।

इसके बाद धार्मिक दरबारी चित्रण का युग प्रारम्भ होता है जिसके अन्तर्गत सुई और टाग काल की कला को रखा जाता है। सुई वश का शासक बडा कुशल एवं प्रवीण था जिसने 400 वर्ष के असंगठित राज्य को संगठित किया तथा अपने राज्य की सीमा मध्य एशिया तक फैला दी। इसके पुत्र याग–टी (Yang-Ti) ने महल, उद्यान आदि का निर्माण कराया। इन निर्माणो से सामान्य नागरिको की सुख–समृद्धि में कमी आ गयी जिसके कारण उसके विपक्ष मे एक विरोधी दल ली–येन (Li-Yen) के नेतृत्व में सक्रिय हुआ और उसने 617 ई० मे चंगन पर अधिकार कर लिया। उसके पुत्र ली–शीह–मी (Li-Shih-min) ने अपनी कार्य–कुशलता एव योग्यता से टाग–वश (Tang-Dynasty) की स्थापना की। इसके शासनकाल मे सर्वत्र सुख–शान्ति का निवास रहा इसलिए कला का चतुर्दिक् विकास हुआ। सम्राट् ली–शीह–मी की मृत्यु 649 मे हो गयी और शासन की बागडोर वू–सी–टी (Wu-Tse-Tien) नामक स्त्री ने सम्हाला लेकिन उसके शासन मे कहीं कोई कमी नहीं आयी। 82 वर्ष की आयु में कमजोर एव वृद्ध होने के कारण उसने राज्य का कार्यभार सुआन–शुंग (Hsuan-Tsung) मिंग–हुवान (Ming-Huang) को सौंप दिया। इसने 754 में एक शाही संस्था (Imperial Academy) की स्थापना की जिससे कलाकारों एवं विद्वानों को बहुत प्रोत्साहन मिला इस युग के अधिकतर बौद्ध गुहाओ की दीवारों एव छतों के

चित्रण मे निमग्न थे। थांग युग के प्रसिद्ध कलाकारों में वू-ताऊ-जू थे जिन्होंने महात्मा बुद्ध सम्बन्धी चित्रों का प्रभावशाली अंकन किया। इस युग के अन्य कलाकारों मे चाग-सुआन (Chang-Hsuan), ली चेन (Li Chen) याग हुइ-चीह (Yang-Hui-Chih), चाऊ-टाग (Chou-Tang) आदि ने उत्कृष्ट कार्य किया है। इस युग में प्राकृतिक चित्रण के साथ सूक्ष्म भावो के चित्रण की प्रधानता थी।



इसके बाद चीन में प्रौढ़ता एवं सन्तुलन का युग आता है जिसमें **पाँच राज्य वंश** का प्रमुख योगदान है। 906 मे टाग काल के अन्त के बाद चीन मे कई वंशो का आधिपत्य रहा जिनके द्वारा कला का प्रचुर विकास हुआ। कलाकार को शाही संरक्षण प्राप्त था। इसी समय मार्कोपोलो ने यहाँ की यात्रा की। इस समय यहाँ कला के परम्परागत रूपों के साथ नवीन शैलियो का भी विकास हुआ। बौद्ध विषय अब भी चित्रकारो के लिए लोकप्रिय था। प्रसिद्ध चित्रकारों में चिंग हाओ (Ching-Hao), चू जान (Chu Zan) शू शी (Hsu Hsi), ह्वाग-चुआन (Huan-Chuan) कुं श्यान शी (Kuan Hsin) आदि प्रसिद्ध हैं। शुंग काल (960-1279) के लगभग 300 वर्षो मे कला, साहित्य एवं दर्शन की पर्याप्त उन्नति हुई। यद्यपि इस काल मे चीन पर अनेक बाहरी आक्रमण हुए। मंगोल शासक चंगेज खाँ ने आक्रमण करके चीन मे भारी तबाही मचायी किन्तु कला का विकास अपनी गति से होता रहा। यहाँ नहीं, शुग शासको ने इन आक्रमणो के कारण अपनी पकड़ मजबूत बनायी और कला मे सृजनात्मक तत्त्व का विकास हुआ। नवीं शताब्दी मे छपाई कला का आविष्कार होने के कारण चीन मे पुस्तकों का मुद्रण प्रारम्भ हुआ। इस काल में दृश्य चित्रण अपने सम्पूर्ण निखार के साथ सामने आता है। इस समय प्रकृति के प्रत्येक पक्ष का अध्ययन चित्रकार का नैतिक दायित्व माना गया। इस प्रकार प्रकृति का सावधानी से अध्ययन कर उसके सम्पूर्ण स्वरूप को चित्रित करना उसका मुख्य उद्देश्य रहा अत: दूर-लघुता सिद्धान्त एवं एक दृश्य मे दूसरे को छिपा देना उसने स्वीकार नहीं किया। उसके प्रकृति-चित्रण मे छोटी-सी-छोटी वस्तु उसका महभागी है। उनके दर्शन के अनुसार समस्त वस्तुएँ स्वर्ग से उत्पन्न हुई हैं जिन्हें भूमि पर आकार स्वरूप मिला। इसलिए यहाँ की क्षुद्रतम वस्तु भी तुच्छ नही है। शुग काल के चित्रकारों ने आध्यात्मिक तत्त्वों पर विशेष बल दिया। वे शुद्ध भावना से चित्रण कार्य करते थे। अनिश्चित मन:स्थिति में वे तूलिका छूते तक नहीं थे। इस समय के बहुत-से चित्रकारो ने चीनी कला को समृद्ध किया।

युआन काल (1279-1368) चीन मे बाहरी आक्रमण और उसके आधिपत्य का युग है। चीन पर मंगोलो ने तेरहवी शती के प्रारम्भ से ही आक्रमण आरम्भ कर दिया था। 1210 में चंगेज खाँ ने 'चिन' पर आक्रमण किया और उसकी राजधानी बीजिंग को ध्वस्त कर दिया। 1227 मे झिया राज्य पर आक्रमण कर भयंकर नर सहार किया और वहाँ के 99 प्रतिशत लोगों को मार दिया। 1235 मे दक्षिण चीन पर मंगोलो ने आक्रमण किया और अन्त मे 1279 मे अन्तिम शुग शासक को समाप्त कर कुबलाइ खाँ ने सम्पूर्ण चीन पर 'युआन' के नाम से शासन किया। उसने **अकबर का तरह सहिष्णुता की नीति** धर्म एव कला पर कोई पाबन्दी नहीं लगायी

राजनीतिक कारणों से बौद्ध धर्म को उसने सरक्षण दिया। इटली का मार्कोपोलो 1274 ई मे उसकी सेवा में था जिसने यहाँ की कला का विस्तृत वर्णन किया है। विदेशी शासन के कारण चीनी कलाकार दरबार से अलग रहे किन्तु अपनी प्राचीन परम्परा को जीवित रखने के लिए काम करते रहे। चिन-हिम (Cham-Haim) इस काल का प्रमुख चित्रकार था।

युआन काल में परम्परागत शैली के अनुयायियो ने सुंग के प्रिय विषय बाँस के चित्रण को पुनरुज्जीवित किया। दृश्य चित्रण के क्षेत्र मे इस समय नये प्रयोग किये गये। अनेक चीनी चित्रकार ने मगोल दरबार का बहिष्कार कर दक्षिणी चीन मे शरण ली जहाँ वे प्रकृति के अद्भुत सौन्दर्य के सान्निध्य में आये और यही कारण है उनके प्रकृति-चित्रण मे बडी स्वाभाविकता के साथ सौन्दर्य निखरा है।

1294 मे कुबलाई खाँ की मृत्यु के बाद 1348 ई तक सात शासक बदले और अन्त मे चीन मे विद्रोह आरम्भ हो गया। सन् 1368 ई में अन्तिम मगोल शासक चीन से भाग गया।

मिंगकाल (1368–1644 ई) का आरम्भ 1368 ई में चू-युआन-चांग पेकिंग को अपने कब्जे मे लेकर शासक बन बैठा और अन्तिम युआन शासक को भगा दिया। उसने मिग शासन की नींव रखी और उसके संरक्षण में राज्य मे पर्याप्त समृद्धि हुई। 1417 ई में तीसरे मिंग शासक ने बीजिग मे राजधानी स्थानान्तरित की। मिग शासन भ्रष्ट एवं कलात्मक चेतनाविहीन था इसलिए उसके दरबार में कलाकारो एव कलाकृतियो का कोई महत्त्व नहीं था। फिर भी कुछ पारम्परिक चित्रकार अपनी कलात्मक प्रतिभा को सँजोये हुए थे।

च' इंग वंश का शासन 1644 ई मे प्रारम्भ हुआ। इस काल मे चीनी संस्कृति के पुनरुत्थान पर बल दिया गया। इस होड़ में वे रूढिवादी तत्त्वों के चंगुल में फँस गये और सृजनात्मकता का अभाव दिखायी पडने लगा। उन्नीसवी सदी में विदेशी उपद्रवियों द्वारा चीन की कला को बड़ा आघात लगा।

आधुनिक काल में चीनी चित्रकला को अनेक विरोधों का सामना करना पडा। यूरोपीय तकनीकों के सम्पर्क में आने के बावजूद यहाँ की कला-शैली में कोई विशेष बदलाव नही दिखायी पड़ता। सन् 1949 में एक शक्तिशाली देश के रूप में उभरने के पश्चात् भी यूरोपीय अमूर्त कला को कोई प्रश्रय नही प्राप्त हुआ। चीन के जन-मानस मे परम्परा की जडे बहुत गहरी हैं अत: ऐसा कुछ विशेष परिवर्तन नही दिखता जिस तरह भारत ने अचानक स्वीकार कर लिया। दृश्य-चित्रण एव व्यक्ति-चित्रण मे अभिनव प्रयोग दिखायी पडता है। यथार्थवाद के अन्तर्गत अनावृताओं को भी चित्रण का विषय बनाया गया है। कुछ कलाकारों ने घनवादी शैली को प्रयुक्त कर कला में नवीनता लाने का प्रयत्न भी किया है। आज कला का अन्तर्राष्ट्रीय रूप बन रहा है। विज्ञान की सहायता से एक देश दूसरे देश की कला से शीघ्र ही परिचित हो जाता है। ऐसे मे किसी देश की परम्परा का विशेष आग्रह समीचीन प्रतीत नही होता।

जापानी चित्रकला

जापान का प्राचीन नाम 'निप्पोन' अथवा 'निहोन' था जो लगभग ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी तक प्रचलित रहा। इसका वर्तमान नाम चीनी भाषा के 'जिह-पेन-कुओ' (सूर्योदय का देश) से विकसित हुआ। प्राकृतिक सौन्दर्य के रहस्यमय आवरण से ढँके यहाँ के द्वीप-समूह अपने-आप मे अनेक प्राकृतिक दृश्यावली को सँजोये हुए हैं यही कारण है कि यहाँ की कला में प्राकृतिक छटा का अपूर्व सयोजन दिखायी पडता है

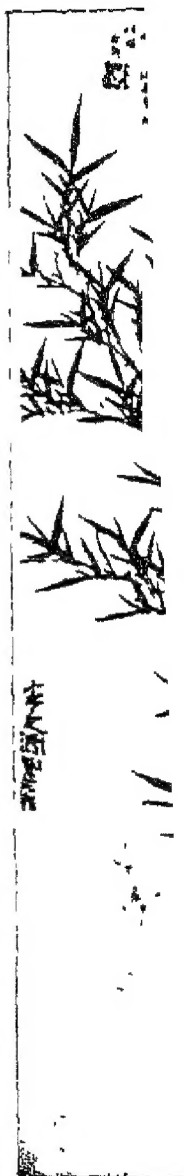
जापानी चित्रकला का इतिहास जापान मे बौद्ध धर्म की स्थापना के साथ-साथ प्रारम्भ होता है। लिखित प्रमाण के अनुसार कोरिया के कुदारा शासक पीक्चे द्वारा सर्वप्रथम बौद्ध धर्म ग्रन्थ, गोतम बुद्ध की प्रतिमा तथा एक पताका जापान के सम्राट् किमई को सन् 538 ई० मे प्राप्त हुआ था। जापानी चित्रकला के प्राचीनतम अवशेष आशुका काल (552-645 ई०) के ही है। इस समय 'सुइको' नामक रानी ने शासन किया था इसलिए इसे सुइको काल भी कहा जाता है। कुछ लोगो की मान्यता है कि कोरियाई धर्म-प्रचार भिक्षुओं द्वारा जापान मे पॉचवी शती के अन्त तक बौद्ध धर्म का पदार्पण हो चुका था।

बौद्ध धर्म के आगमन के पहले यहाँ के निवासी शिन्तो (SHINTO) धर्म के अनुयायी थे जो प्राकृतिक शक्ति के रूप मे देवी-देवताओ की आराधना किया करते थे। इन 'देवताओं के निर्दिष्ट मार्ग' पर चलनेवाले शिन्तो धर्मावलम्बियो ने यद्यपि प्रारम्भ में बौद्ध धर्म का विरोध किया किन्तु कालान्तर में इनका विरोध समाप्त हो गया और बोधिसत्त्वो को प्राचीन शिन्तो देवी-देवताओं का पुनरावतार मानकर इस नये धर्म को आत्मसात् कर लिया।

आसुका युग में बौद्ध धर्म का यहाँ व्यापक प्रचार हुआ। जापान का प्राचीनतम विशाल बौद्ध मदिर 'आसुका देरा' का निर्माण 588 ई० मे हुआ जिसे कोरिया के रास्ते से आये बौद्ध शिल्पियो के सहयोग से शोगा वश द्वारा निर्मित किया गया। इसके बाद अनेक बौद्ध मदिरो का निमाण हुआ। इन बौद्ध उपासना-गृहो को सजाने के लिए अनेक चित्रो एव मूर्तियों का निर्माण किया गया। कुछ कलाकृतियाँ कोरिया और चीन से भी लायी गयीं। जापान मे बौद्ध धर्म की स्थापना के बाद वहाँ बौद्ध मूर्तियों एव त्रित्रो की मांग बहुत अधिक हो गयी जिसे पूरा करने के लिए कोरिया और चीन महाद्वीप से चित्रकारो को बुलाया गया। यहॉ के प्राचीन इतिहास के अनुसार सन् 588 ई० मे कुडारा से 'व्याक्का' नामक चित्रकार को जापान में चित्र-निर्माण के लिए आमन्त्रित किया गया था। सन् 610 मे कोरिया से 'डन्चो' को जापान के चित्रकारों को रंग, स्याही और कागज तैयार करने की विधि सिखाने के लिए बुलाया गया था। इस प्रकार चीन एवं कोरिया की चित्र-शैली का यहाँ व्यापक प्रचार हुआ। जापान की संस्कृति एवं कला को चीनी संस्कृति एव कला का ही विस्तार समझा जाता है जहाँ बौद्ध धर्म के मतावलम्बियों का ही बोल-बाला था। चीन की बौद्ध, टॉग एव शुगकालीन चित्रकला परम्पराओ की छाप जापान की कला पर अत्यधिक दिखायी पडती है। कभी-कभी इस समय के चीनी और जापानी कला में अन्तर करना कठिन हो जाता है। बौद्ध धर्म के प्रभाव से यहाँ की चित्रकला अत्यधिक समुन्नत हुई और अनेक कलाविद एवं रूपविदो ने यहाँ की कला-कृतियों के भाण्डार को समृद्ध किया।

यहाँ के कलाकारो ने अपनी रचनात्मक प्रतिभा के अनुसार भी अनेक उत्कृष्ट चित्र बनाये। 'यमातो-ए' शैली जापानी चित्रकारो की अपनी मौलिक शैली है जो जापान मे नवी शताब्दी मे विकसित हुई। यहाँ के कलाकारो ने अधिक चटक रंगो का प्रयोग किया तथा पशु-पक्षियो एव जीव-जन्तुओ का प्रकृति के साथ सजीव चित्राकन किया। फूल-पत्तियो के चित्रण में जापानी चित्रकारो की मौलिक प्रतिभा को दृष्टिगत किया जा सकता है। जापानी चित्रकार द्वारा चित्रित पुष्प-पल्लव एवं विहग प्रकृति के अनुरूप ही है जो उनके उत्कृष्ट कला-कौशल एव तीव्र अवलोकन शक्ति को प्रदर्शित करते है। प्रकृति का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अध्ययन करके चित्रकार घास की बारीक पत्ती एव पक्षियों के रोम रोम का बड़ा अकन किया है पक्षी रंग बिरगे पुष्प एव मछलियों का अकन जापानी चितेरो का प्रिय विषय है जापान के छापे चित्र विश्व में

प्रसिद्ध हुए हैं। लकडी के छापे से बनाये गये रगीन एव सादे चित्र यहाँ की भाँति जापान मे भी सुलेखन कला को विशेष महत्त्व प्राप्त है।



जापानी चित्रकार मानव आकृति के अकन मे भी अपनी विशिष्टता रखता है। उन्होने नारी आकृति के चित्रण में बडी शालीनता दिखायी है। मानव आकृति के साथ पशुओं का अकन भी बडी कुशलता से किया है। यद्यपि प्राणि विज्ञान की दृष्टि से आकृति पूर्णरूपेण सही नहीं कही जा सकती फिर भी उनकी आकृति सजीव प्रतीत होती है। इन सबके अकन मे जापानी चित्रकार एक क्रम से तूलिका-घात करता है। मानव चित्रण के लिए वह चेहरे के नाक से अकन प्रारम्भ करके अन्य अवयवों का अकन करता हुआ नीचे उतरता है। पक्षी का अंकन चोंच से करता है और वृक्ष का अकन तने से प्रारम्भ करता है। पर्वत-शृंखलाओ का अकन भी एक क्रम से करता है।

जापानी चित्रकार स्याही माध्यम से चित्र बनाना अत्यधिक पसंद करता है जिसे 'सूमि-ए' शैलो की चित्रकारी कहा जाता है। ज्यादातर चित्र कागज या सिल्क पर बनाये जाते हैं। चित्रण के लिए वे पहले से चित्र की रूपरेखा नही सोचते, बल्कि सीधे चित्र-सयोजन करना प्रारम्भ कर देते हैं। उनकी सम्पूर्ण एकाग्रता तूलिका घात की ओर रहती है। उनका विश्वास है कि कलाकार की आत्मा तूलिका घातों से प्रतिध्वनित होती है। ये चित्र जापानी कला की पवित्र आत्मा हैं जो काली स्याही से सँजोये जाते हैं। स्याही के चित्रण से ही जापानी चित्रकार की योग्यता की परख होती है। इसमें पारंगत होना कलाकार का लक्ष्य होता है। जापानी 'सूमी'(काला रंग) एक ठोस तत्त्व होता है जिसे एक विशेष पौधे को जलाकर तथा उसके चूर्ण को गोद में मिलाकर तैयार किया जाता है फिर उसे पानी में घिसकर चित्रण करते है। काली स्याही से चित्रण करना रंगीन चित्रण से अधिक कठिन होता है। प्रसिद्ध चित्रकार कुबोटा रंगों को नापसन्द करता था वह केवल सूमी स्याही से ही चित्र बनाता था।

काली स्याही से चित्रण जापानी कलाकार की पहली रुचि है लेकिन उन्होंने बडी योग्यता एवं कुशलता से चित्रित किया है। जापान मे पाँच मौ माने जाते हैं काला सफेद, नीला पीला एव लाल इन रगो के मिश्रण

बनाकर जापानी चित्रकारों ने अद्वितीय रंगीन चित्रो की रचना की है। रंगीन चित्र बनाने की आठ विशिष्ट विधियाँ यहाँ प्रचलित हैं जिनमे 'गोकू जाई शिकी' विधि को सर्वोत्तम कहा जाता है। इस विधि में चित्रण सतह पर कई बार रंग की तह चढ़ायी जाती है। इसके अतिरिक्त 'चैकू शैकू' (रंगों का सादा प्रयोग), 'तैनसाई' (हल्के रंगो का प्रयोग), बोस्कोत्सू (रूपरेखा को रग के प्रयोग से लुप्त कर देना), गोसो (सम्पूर्ण चित्र पर हल्का भूरा रग चढाना) तथा अन्य विधियाँ ऋतुओं के अकन के लिए प्रयुक्त होती हैं।

जापानी चित्रकार अपने चित्रो मे अपने हृदय की अनुभूतियों को व्यक्त करता है। वह फोटो तुल्य सादृश्य को अपने चित्रो मेंनही दिखाता। जापानी चित्रकार प्रेरणा के लिए प्रकृति की ओर उन्मुख है। इस प्रकार जापानी चित्रकार उल्लास से ओत-प्रोत होता है जो प्राच्य कला की अपनी एक अलग विशेषता है।

जापानी चित्रकला इतिहास को निम्नवत् विभाजित किया गया है।

1. **प्रागैतिहासिक काल (Pre-Historic Period)**
   (i) जोमोन काल
   (ii) यायोई काल
   (iii) यमातो काल
2 **अशुका काल (Ashuka Period)**— 552 से 645 ई० तक
3. **नारा काल (Nara Period)**—710 से 794 ई० तक
4. **हियान काल (Heian Period)**—794 से 1185 ई० तक
5. **कामाकुरा काल (Kama Kura Period)**—1185 से 1338 ई० तक
6 **मोरोमाची काल (Moromachi Period)**—1338 से 1573 ई० तक
7. **मोमोयामा काल (Momoyama Period)**—1573 से 1615 ई० तक
8. **ईडो काल (Edo Period)**—1615 से 1868 ई0 तक
9. **आधुनिक काल (Modern Period)**—1868 से आज तक
   (i) मेजो एवं तेशो काल (Meijo & Taisho Period)—1868 से 1926 तक
   (ii) शोवा काल (Showa Period)—1926 से आगे

इस प्रकार हम देखते है कि प्राच्य कला का विश्व में अपना एक अलग स्थान है और अपनी विशिष्टिताओ के कारण इसे अलग से पहचाना जाता है।

प्राच्य कला से भली-भाँति परिचित न होने वाले लोगों को यहाँ की चित्रकला भले ही संकीर्ण, पारम्परिक विषयों से ग्रस्त एवं इनी-गिनी शैली में निबद्ध प्रतीत हो किन्तु यदि हम पूर्वाग्रहों से युक्त हो इसे हृदयगम करें तो ज्ञात होगा कि उनके चित्रण विषयों और शैलियो मे बड़ी विविधता है और ये परम्परागत शैलियाँ नितनूतन प्रभाव ग्रहण कर नयी शक्ति से आगे बढी हैं।

आज समस्त प्राच्य कला पर पाश्चात्य प्रभाव इतना अधिक है कि इन पूर्वीय देशो की कला अदृश्य होती जा रही है। आज इन देशों का पारम्परिक शैली के चित्रकार भी अपनी कृतियों में शैली का अनुकरण करके प्रगतिशील होने का ढोग करते हैं

योरोपीय चित्रण-सामग्रियो एव तूलिकाओं का प्रयोग करते हैं और आधुनिकता की होड रेखाओ और रंगों के महत्व को भूल चुके है। भारत, चीन, जापान मे ही नहीं सामान्यत य प्रवृत्ति सम्पूर्ण पूर्वी देशों की प्राच्य कला में दिखाई पड़ने लगी है। आज का चित्रकार आधुनिक के विश्वव्यापी प्रभाव से ग्रसित है जिसके फलस्वरूप उनकी कलाकृतियो मे स्वदेशी परम्पराओ की अलौकिक छटा अदृश्य होती जा रही है। अब तो विभिन्न देशों के चित्रकारो क कलाकृतियों मे भेद करना भी कठिन हो गया है।



□□